*Published By* -

**Oriental Human Developent Institute.**
**Allahabad. U.P. -211004**

**Price- Rs. 360/-**

ISSN-2395-7468

Volume 11, Issue 3. Jul-Sep 2025 The Equanimist ISSN : 2395-7468

**Volume 11, Issue 3. July-September 2025** **ISSN : 2395-7468**

# THE Equanimist

A peer reviewed refereed journal

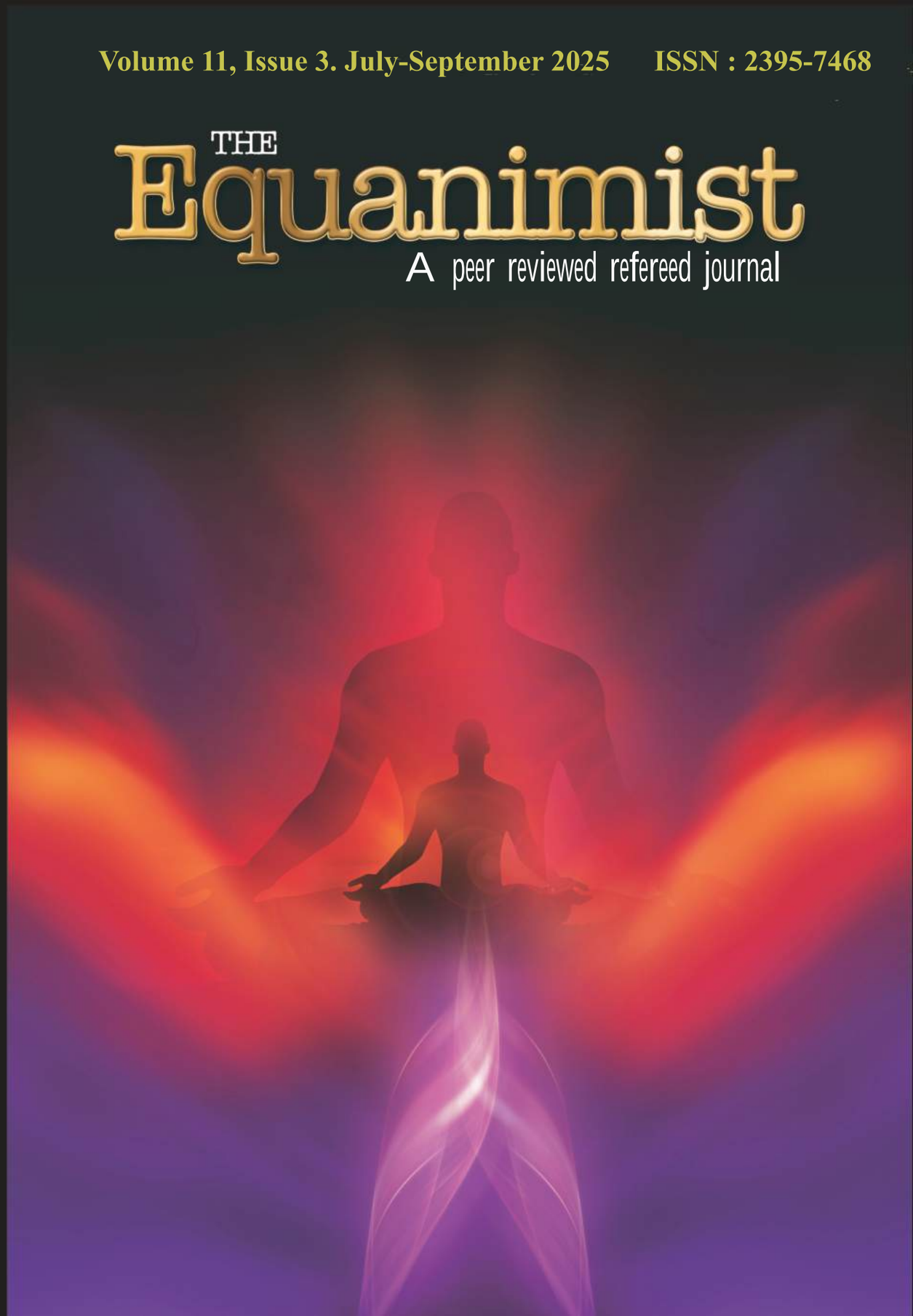

Volume 11, Issue 3. July-September 2025 ISSN : 2395-7468

# THE Equanimist

*A peer reviewed refereed journal*

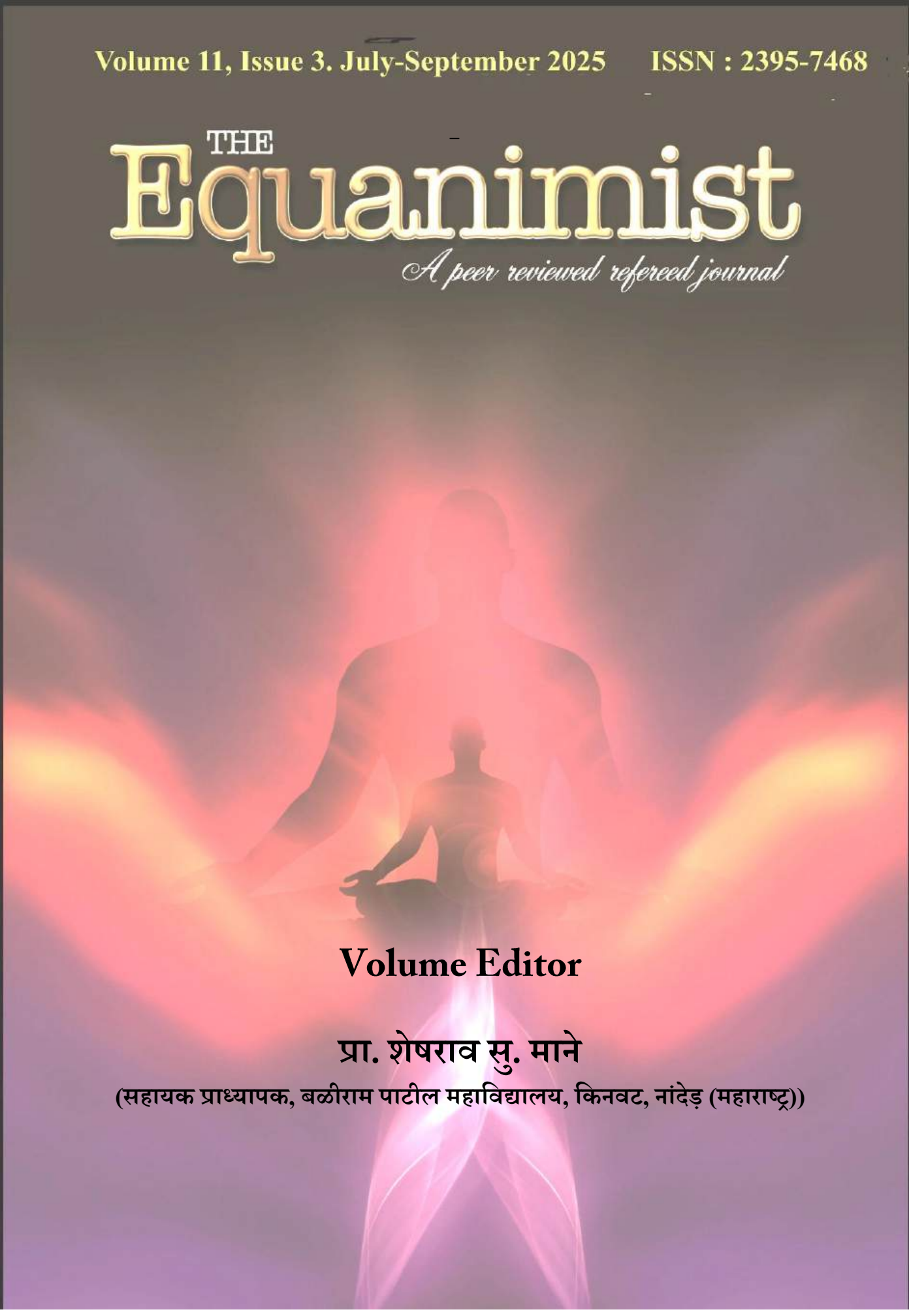

## Volume Editor

**प्रा. शेषराव सु. माने**

**(सहायक प्राध्यापक, बळीराम पाटील महाविद्यालय, किनवट, नांदेड़ (महाराष्ट्र))**

# The Equanimist

… A peer reviewed refereed journal


## Editorial Advisory Board

**Dr. U.S. Rai** (Retd. Prof. University of Allahabad)
**Dr. R.N. Lohkar** (Retd. Prof. University of Allahabad)
**Dr. V.C. Pande** (Retd. Prof. University of Allahabad)
**Dr. D.P. Singh** (Retd. Prof. TISS, Mumbai)
**Dr. Anand Kumar** (Retd. Prof. J.N.U.)
**Dr. D.V. Singh** (Retd. Librarian University of Delhi)
**Prof. D.A.P. Sharma** (University of Delhi)

## Editor in Chief

**Dr. Nisheeth Rai** (M.G.A.H.V., Wardha)

## Associate Editors/Reviewers

**Dr. Manoj Kr. Rai** (M.G.A.H.V., Wardha)
**Dr. Virendra P. Yadav** (M.G.A.H.V., Wardha)
**Dr. Pradeep Kr. Singh** (University of Allahabad)
**Dr. Shailendra K. Mishra** (University of Allahabad)
**Dr. Ehasan Hasan** (Banaras Hindu University)
**Dr. Shiv Singh Baghel** (M.G.A.H.V., Wardha)
**Dr. Ravi S. Singh** (University of Delhi)
**Dr. Roopesh K. Singh** (M.G.A.H.V., Wardha)
**Dr. Ajay Kumar Singh** (Jammu University)

## Editorial/Review Board Members

**Dr. Tarun** (University of Delhi)
**Dr. Dhirendra Rai** (Banaras Hindu University)
**Dr. Shree Kant Jaiswal** (M.G.A.H.V., Wardha)
**Dr. Kuldeep Kumar Pandey** (M.G.A.H.V., Wardha)
**Dr. Abhisekh Tripathi** (Central University of Punjab, Bathinda)
**Dr. Shiv Gopal** (University of Allahabad)
**Dr. Vijay Kumar Kanaujiya** (V.B.S.P.U., Jaunpur)
**Dr. Jitendra** (Odisha State Open University, Sambhalpur)
**Dr. Kamal Kumar** (Pondicherry University, A&N)
**Dr. Shiv Kumar** (K.U., Bhawanipatna)
**Dr. Ambuj Kumar Shukla** (Shri Rawatpura Sarkar University, Raipur)

## Managerial Board

**Mr. K.K. Tripathi** (M.G.A.H.V., Wardha)
**Mr. Rajat Rai** (State Correspondent, U.P. India Today Group)

# The Equanimist

**Volume 11, Issue 3. Jul-Sep 2025**



| S.NO. | Content | Pg. No. |
|---|---|---|
| 1. | हिंदी उपन्यासों में शिक्षा का नव-उदारवादी परिप्रेक्ष्य<br>**शैलेंद्र सिंह यादव** | 01-10 |
| 2. | अमरकांत और बाबाराव मुसळे के उपन्यासों में ग्रामीण समाज का तुलनात्मक अध्ययन<br>**वैशाली विनायकराव भोसकर** | 11-18 |
| 3. | समर्थ रामदास की भक्ति-भावना और रामभक्ति का दार्शनिक स्वरूप<br>**शेषराव सु. माने** | 19-29 |
| 4. | हाड़ौती में मंदिर-कला निर्माण शैली के सिद्धांत<br>**लोकेश गुंजल एवं शिव कुमार मिश्रा** | 30-39 |
| 5. | अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के काव्य में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक बोध<br>**अखिलेश यादव** | 40-48 |
| 6. | गाँधी जी की दृष्टि में हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं<br>**अश्विनी कृष्णराव राऊत** | 49-55 |
| 7. | सूक्ष्म वित्त के माध्यम से वित्तीय समावेशन तथा भारत के ग्रामीण विकास में इसकी भूमिका<br>**देवेंद्र मौर्य** | 56-69 |
| 8. | युवा मतदाता और सोशल मीडिया : भारत में चुनावी भागीदारी का बदलता स्वरूप<br>**दत्तात्रय निवृत्ती रावण एवं अभिषेक सिंह** | 70-77 |
| 9. | मुसहर जाति की सामाजिक समस्याओं एवं उनके पिछड़ेपन के कारणों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण *(उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर जनपद के विशेष संदर्भ में)*<br>**चाँदनी** | 78-87 |
| 10. | भारतीय कला एवं संस्कृति में महिलाओं की भूमिका<br>**सायली गजानन पिपरे** | 88-93 |
| 11. | पर्यावरणीय संवेदनाओं के क्षितिज पर जैन धर्म : एक अवलोकन<br>**कल्पना सिंह** | 94-99 |
| 12. | मणिपुरी महाकाव्य का आधार : 'मोइराङ् शाइओन'<br>**सिनाम तोन्दोन सिंह एवं मयाङ्लम्बम सदानंद सिंह** | 100-111 |
| 13. | पत्रकारिता और भारतीय भाषाओं का संग-साथ<br>**शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय** | 112-120 |
| 14. | राजेशखर कृत बालरामायण का समीक्षात्मक अध्ययन<br>**रबीन्द्र सोरेन** | 121-124 |

***Manuscript Timeline***

***Submitted :*** *July 08, 2025* ***Accepted :*** *July 20, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# हिंदी उपन्यासों में शिक्षा का नव-उदारवादी परिप्रेक्ष्य

**शैलेंद्र सिंह यादव**[1]

## शोध सारांश

*वर्तमान समय में नव-उदारवादी नीतियों का प्रभाव शिक्षा व्यवस्था पर गहराई से दृष्टिगोचर हो रहा है। शिक्षा का उद्देश्य जहाँ एक ओर समावेशी, न्यायपूर्ण और सशक्तिकरण की ओर उन्मुख होना चाहिए था, वहीं दूसरी ओर यह नव-उदारवादी नीतियों के चलते बाज़ार आधारित उत्पाद बनती जा रही है। हिंदी उपन्यास साहित्य ने इस संक्रमण और संघर्ष को न केवल रचनात्मक रूप में चित्रित किया है, बल्कि सामाजिक चेतना का माध्यम बनकर शिक्षा के बदलते स्वरूप पर सवाल भी उठाए हैं। यह शोध पत्र प्रेमचंद, काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, सूर्यबाला और गिरिराज किशोर जैसे प्रमुख उपन्यासकारों के उपन्यासों में शिक्षा से संबंधित विमर्शों का अध्ययन करता है। इन रचनाकारों ने अपने साहित्य में शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त असमानता, वंचना, निजीकरण और अवसरों की असमान उपलब्धता को प्रमुखता से रेखांकित किया है। प्रेमचंद के साहित्य में शिक्षा सामाजिक परिवर्तन और चेतना का माध्यम बनकर उभरती है, वहीं काशीनाथ सिंह और दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में शिक्षा का बाज़ारीकरण, जातिगत भेदभाव और पूंजीवादी प्रभावों की आलोचना मिलती है। सूर्यबाला और गिरिराज किशोर जैसे लेखकों के लेखन में विशेष रूप से महिलाओं, वंचित वर्गों और ग्रामीण समाज के लिए शिक्षा की चुनौती और संभावनाएँ सामने आती हैं।*

*इसका मुख्य उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि हिंदी उपन्यास किस प्रकार नव-उदारवादी शिक्षा नीतियों के संकट को रेखांकित करते हैं, उसमें निहित विरोध के स्वर किस प्रकार अभिव्यक्त होते हैं, और कौन से वैकल्पिक मार्ग प्रस्तावित किए गए हैं। यह अध्ययन हिंदी साहित्य और शिक्षा के अंतर्संबंधों को समकालीन सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में समझने का एक प्रयास है। यह शोध पत्र साहित्यिक आलोचना, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण और नीति विश्लेषण की पद्धति को अपनाते हुए शिक्षा के नव-उदारवादी ढाँचे के भीतर उपस्थित अंतर्विरोधों को रेखांकित करता है। साथ ही यह उपन्यासों में व्यक्त जनतांत्रिक चेतना, समता की आकांक्षा और वैकल्पिक शैक्षिक विचारों को भी सामने लाने का प्रयास करता है। इससे न केवल साहित्य के सामाजिक सरोकारों की समझ विकसित होती है, बल्कि शिक्षा की जनोन्मुखी भूमिका की भी पुनर्समीक्षा संभव होती है।*

***बीज शब्द :*** *हिंदी उपन्यास, नव-उदारवाद, शिक्षा का निजीकरण, सामाजिक विषमता, प्रतिरोध का साहित्य, शैक्षिक नीति, बाज़ारीकरण, प्रेमचंद, काशीनाथ सिंह, वैकल्पिक शिक्षा, समकालीन विमर्श, जनतांत्रिक चेतना*

[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.).
मोबाईल- 9098707159; ईमेल : yadavshail1991@gmail.com

**प्रस्तावना-**

शिक्षा मानव जीवन का एक अनिवार्य और प्रमुख अंग है। यह न केवल व्यक्तियों को ज्ञान और कौशल से संपन्न करती है, बल्कि समाज के नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में भी केंद्रीय भूमिका निभाती है। भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील रहा है। विशेषकर हिंदी साहित्य, और उसमें हिंदी उपन्यासों ने शिक्षा के सामाजिक और राजनीतिक आयामों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रारंभिक दौर के हिंदी उपन्यासकारों ने शिक्षा को समाज सुधार और सामाजिक समानता के लिए एक प्रभावी माध्यम माना। प्रो. आनंद प्रकाश के अनुसार *"नव-उदारवादी नीतियों ने शिक्षा को एक सामाजिक अधिकार के बजाय वस्तु में परिवर्तित कर दिया है, और हिंदी उपन्यासों में यह रूपांतरण गहराई से परिलक्षित होता है।"*[i] मुंशी प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों ने ग्रामीण और शहरी समाज की विसंगतियों के बीच शिक्षा को सामाजिक जागरूकता और नीतिगत परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण उपकरण समझा। उनकी रचनाओं में शिक्षा अज्ञानता, कुरीतियों और जातिगत भेदभाव को समाप्त करने का माध्यम थी।

बीते कुछ दशकों में शिक्षा के क्षेत्र में नव-उदारवादी नीतियों का उदय हुआ, जिसने शिक्षा को एक बाजारू वस्तु में परिवर्तित कर दिया। निजीकरण, प्रतिस्पर्धा, और बाज़ार आधारित शिक्षा प्रणालियों ने शिक्षा के सार्वभौमिक अधिकार के सिद्धांत को चुनौती दी। इसके परिणामस्वरूप शिक्षा की पहुंच असमान होती गई और सामाजिक विभाजन गहरा। रविकांत जी के अनुसार *"शिक्षा के क्षेत्र में नव-उदारवादी हस्तक्षेपों ने सामाजिक असमानताओं को और गहरा किया है, जिसे हिंदी उपन्यासकारों ने छात्रों की असुरक्षा, बेरोजगारी और निजीकरण के ज़रिए चित्रित किया है।"*[ii] हिंदी उपन्यासों में इस नव-उदारवादी शिक्षा के द्वंद्व को काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, सूर्यबाला, और गिरिराज किशोर जैसे लेखकों ने संवेदनशीलता से चित्रित किया। यह शोध पत्र हिंदी उपन्यासों में शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक चित्रण का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य यह समझना है कि कैसे साहित्य ने शिक्षा के प्रारंभिक समाज सुधारवादी दृष्टिकोण से लेकर समकालीन नव-उदारवादी संकटों तक की यात्रा को दर्शाया है। इसके साथ ही, शिक्षा की भूमिका, उसके सामाजिक प्रभाव, नव-उदारवादी नीतियों के प्रभाव, और भविष्य की संभावनाओं पर भी विचार प्रस्तुत किए गए हैं। यह अध्ययन हिंदी साहित्य में शिक्षा के बहुआयामी स्वरूप को समझने और सामाजिक न्याय, समानता, और गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के लिए साहित्य के माध्यम से जागरूकता बढ़ाने में सहायक होगा।

**हिंदी उपन्यासों में शिक्षा का प्रारंभिक समाज सुधारवादी चित्रण-**

भारतीय समाज में शिक्षा को सदैव सामाजिक उन्नति और परिवर्तन का महत्वपूर्ण साधन माना गया है। "नव-उदारवाद ने शिक्षा को उपभोग का विषय बना दिया है, जहाँ व्यक्ति का मूल्य उसकी दक्षता और उत्पादन क्षमता से आँका जाता है – यह संकट उपन्यासों में गहराई से दर्ज है।"[iii] हिंदी उपन्यास के प्रारंभिक दौर के प्रमुख लेखक मुंशी प्रेमचंद ने शिक्षा को केवल व्यक्तिगत ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार का एक शक्तिशाली हथियार समझा। उनकी रचनाओं में शिक्षा का चित्रण समाज में व्याप्त कुरीतियों, अशिक्षा, जाति-पांति, गरीबी और महिला उत्पीड़न के खिलाफ एक संवेदनशील चेतना के रूप में होता है।

**हिंदी उपन्यासों में नव-उदारवादी शिक्षा का चित्रण-**

हिंदी उपन्यासों में नव-उदारवादी शिक्षा व्यवस्था का चित्रण केवल एक शैक्षिक परिदृश्य नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संकट के रूप में सामने आता है। नव-उदारवादी नीतियों के प्रभाव में शिक्षा का निजीकरण, बाज़ारीकरण और व्यावसायीकरण जिस तीव्रता से बढ़ा है, वह उपन्यासों में छात्र, शिक्षक और संस्थान – तीनों के स्तर पर चित्रित होता है। इन उपन्यासों में शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि अवसर और असमानता के बीच की खाई बन जाती है। समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने नव-उदारवादी शिक्षा व्यवस्था के दुष्परिणामों को अपनी रचनाओं में प्रमुखता से दर्शाया है। इनके उपन्यासों में शिक्षा की पहुंच, गुणवत्ता, नैतिकता, और सामाजिक न्याय के संदर्भ में व्यापक द्वंद्व उभरकर आता है।

**प्रेमचंद के उपन्यासों में शिक्षा का महत्व-**

प्रेमचंद के उपन्यास जैसे *गोदान*, *सेवासदन*, और *निर्मला* में शिक्षा का सामाजिक विमर्श प्रमुखता से देखा जाता है। ये उपन्यास न केवल शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति और समाज के बदलाव की संभावनाएं दिखाते हैं, बल्कि शिक्षा के अभाव में उत्पन्न समस्याओं को भी उजागर करते हैं। *गोदान* में होरी का परिवार एक पारंपरिक, जमींदारी आधारित ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ गरीबी और अशिक्षा जीवन को दमनकारी बनाती हैं। *"हम भी पढ़े होते तो आज हल जोत रहे होते?"*[iv] —यह संवाद गोबर का है जो अपने पिता होरी से कहता है। यह शिक्षा के प्रति ग्रामीण युवा वर्ग की आकांक्षा को दर्शाता है। गोदान में प्रेमचंद शिक्षा को ग्रामीण परिवर्तन का माध्यम मानते हैं। गोबर की आकांक्षा शिक्षा के माध्यम से अपनी सामाजिक स्थिति सुधारने की है। लेकिन साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि शिक्षा से वंचित रहकर किस प्रकार एक वर्ग हाशिए पर चला जाता है उपन्यास में प्रेमचंद ने ग्रामीण शिक्षा की कमी और उसकी सामाजिक विषमताओं को उजागर किया है। होरी के पुत्र के लिए शिक्षा ही सामाजिक उन्नति का एकमात्र रास्ता दिखाया गया है, लेकिन आर्थिक तंगी और सामाजिक बंधन उसकी राह में बाधक हैं।

*सेवासदन* में प्रेमचंद ने स्त्री शिक्षा के महत्व को उठाया है। उपन्यास की नायिका सुमित्रा के माध्यम से उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक स्वतंत्रता की आवश्यकता को दर्शाया। *"यदि मुझे पढ़ने का अवसर मिला होता तो क्या मैं इस दशा को पहुँचती?"*[v] यह कथन सुमन का है जब वह वेश्यावृत्ति में फँसने के बाद आत्मविश्लेषण करती है। सेवासदन में सुमन की पीड़ा प्रेमचंद की उस चिंता को उजागर करती है, जो स्त्रियों की शिक्षा से जुड़ी है। प्रेमचंद मानते हैं कि अशिक्षा ही स्त्रियों को सामाजिक अन्याय और उत्पीड़न के चक्रव्यूह में धकेलती है। उपन्यास शिक्षा को स्त्री स्वतंत्रता का मार्ग बनाता है।यह उपन्यास तत्कालीन सामाजिक संरचनाओं और रूढ़िवादिता के खिलाफ एक आवाज़ के रूप में खड़ा होता है, जो शिक्षा को स्त्री मुक्ति का प्राथमिक माध्यम मानता है। *निर्मला* में भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक आयाम देखने को मिलता है, जहाँ शिक्षा के अभाव और सामाजिक पितृसत्ता के जाल में फंसी स्त्री के दु:ख-दर्द को दर्शाया गया है। कालीचरन, निर्मला के पिता से कहता है कि *"लड़की को पढ़ाया नहीं, सो भुगतो... अब पछताने से क्या?"*[vi] —इस संवाद में शिक्षा को लेकर पछताते हैं। निर्मला में प्रेमचंद दर्शाते हैं कि यदि समय पर बेटियों को शिक्षा मिले तो वे अपने

अधिकारों को समझ सकती हैं और पारिवारिक शोषण से बच सकती हैं। निर्मला की त्रासदी इस बात का प्रमाण है कि शिक्षा का अभाव स्त्रियों को कितनी बड़ी सामाजिक पीड़ा दे सकता है।

**काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में शिक्षा का द्वंद्व-**

काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में शिक्षा को सामाजिक बदलाव के एक शक्तिशाली हथियार के रूप में देखते हुए, नव-उदारवादी नीतियों के कारण उत्पन्न असमानताओं और भ्रष्टाचार को भी उजागर किया गया है। उनकी रचनाओं में शिक्षा के निजीकरण के कारण गरीब वर्ग के लिए शिक्षा की पहुंच सीमित हो जाती है, जिससे सामाजिक विभाजन बढ़ता है। उदाहरण के तौर पर, उपन्यास *उत्तरकथावाचक* में शिक्षा के बाज़ारीकरण और भ्रष्टाचार की आलोचना स्पष्ट रूप से की गई है। यहाँ शिक्षक और शैक्षणिक संस्थान अक्सर आर्थिक लाभ के लिए नैतिकता की परवाह नहीं करते, जिससे शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य धूमिल हो जाता है।

**दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में शिक्षा और सामाजिक असमानता-**

दूधनाथ सिंह ने अपने उपन्यासों में नव-उदारवादी शिक्षा के कारण उत्पन्न सामाजिक विषमताओं और वर्ग संघर्ष को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में दिखाया गया है कि शिक्षा के निजीकरण ने कैसे दलित, पिछड़े और गरीब समुदायों को मुख्यधारा से अलग कर दिया है। उनके उपन्यास *टाटका साबुन* में शिक्षा के माध्यम से सामाजिक बदलाव की उम्मीद तो व्यक्त की गई है, लेकिन साथ ही यह भी दिखाया गया है कि कैसे आर्थिक और सामाजिक बाधाएं इस प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। विष्णु बोलता है कि *"तुम्हारी जाति पूछी थी उस अफसर ने... हमको लगा हम तो इंसान हैं, पढ़े-लिखे हैं। पर वहाँ तो जाति ही डिग्री बन गई।"* [vii] यह संवाद जातिगत भेदभाव की उस कड़वी सच्चाई को उजागर करता है जो शिक्षित युवाओं की पहचान और अवसरों को प्रभावित करती है। उपन्यास यह दिखाता है कि शिक्षा, जो बराबरी का वादा करती है, असल में जातिगत और वर्गीय संरचनाओं से मुक्त नहीं है। शिक्षा का बाज़ारीकरण और उसके प्रभाव से उत्पन्न असमानताएं ग्रामीण और शहरी समाज दोनों में गहरे घाव छोड़ती हैं।

**शिक्षा की नैतिकता और बाज़ारूकरण का संघर्ष-**

नव-उदारवादी शिक्षा में बाज़ार की प्राथमिकता के कारण शिक्षा की नैतिकता पर संकट उत्पन्न होता है। हिंदी उपन्यासों में शिक्षा को केवल मुनाफे के साधन के रूप में देखने की प्रवृत्ति का विरोध किया गया है। गिरिराज किशोर जैसे लेखकों ने इसके कारण शिक्षा के गिरते स्तर और नैतिक पतन को उजागर किया है। इससे स्पष्ट होता है कि हिंदी उपन्यासों में नव-उदारवादी शिक्षा को एक दोधारी तलवार के रूप में प्रस्तुत किया गया है—जहां एक ओर शिक्षा के निजीकरण ने उसे व्यापक पहुंच और प्रतिस्पर्धा के नए आयाम दिए हैं, वहीं दूसरी ओर इसने सामाजिक असमानताओं को बढ़ावा दिया है, शिक्षा की गुणवत्ता और नैतिकता को चोट पहुंचाई है। लेखकों ने शिक्षा के इस बदलते स्वरूप की गहरी आलोचना करते हुए उसके सामाजिक और नैतिक पहलुओं पर प्रश्नचिह्न लगाए हैं। इससे यह समझ आता है कि शिक्षा को पुनः एक समावेशी, न्यायसंगत और नैतिक रूप में पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है, ताकि यह समाज के सभी वर्गों के लिए सशक्तिकरण का माध्यम बन सके।

**सूर्यबाला के दृष्टिकोण से स्त्री शिक्षा और सामाजिक चेतना-**

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति सदैव से जटिल रही है। पारंपरिक रूढ़िवादिता, पितृसत्ता, और सामाजिक बंदिशों ने महिलाओं की शिक्षा और स्वतंत्रता के मार्ग में अनेक बाधाएं उत्पन्न की हैं। हिंदी साहित्य में इस संदर्भ में कई लेखिकाओं और लेखकों ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता और उसके सामाजिक प्रभावों पर गहन विमर्श किया है। उनमें से एक प्रमुख नाम हैं—सूर्यबाला, जिन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री शिक्षा को सामाजिक चेतना और समानता के लिए अनिवार्य बताया है। सूर्यबाला 20वीं सदी के मध्यकाल की एक संवेदनशील लेखिका थीं, जिन्होंने भारतीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनके अधिकारों और शिक्षा के महत्व पर केंद्रित रचनाएं दीं। उनकी लेखनी में महिलाओं के दर्द, संघर्ष, और उनके अधिकारों के लिए आवाज़ साफ़ सुनाई देती है। वे शिक्षा को महिलाओं के सामाजिक उत्थान और पारिवारिक संरचनाओं में सकारात्मक बदलाव का प्रमुख कारक मानती हैं।

***स्त्री शिक्षा का स्तंभ: सूर्यबाला का दृष्टिकोण-*** सूर्यबाला के उपन्यासों में स्त्री शिक्षा को केवल ज्ञान प्राप्ति नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता का आधार माना गया है। उन्होंने दिखाया है कि शिक्षा के अभाव में महिलाएं सामाजिक अन्याय, आर्थिक निर्भरता और घरेलू अत्याचार के शिकार बनती हैं। उनकी रचनाओं में शिक्षा महिलाओं को स्वयं की पहचान बनाने, अपने अधिकारों को समझने, और सामाजिक बदलाव में भाग लेने के लिए सशक्त बनाती है। उनके उपन्यास *सूरज की पहली किरण* में नायिका की शिक्षा और उसके परिणामस्वरूप परिवार और समाज में आए परिवर्तन का मार्मिक चित्रण मिलता है। *गौरा की मां, गौरा से कहती है कि "लड़की जात को इतना पढ़ा के क्या करेगी, आखिर चौके-चूल्हे में ही तो जाना है।"*[viii] यह संवाद भारतीय ग्रामीण समाज की उस मानसिकता को प्रकट करता है, जिसमें स्त्री शिक्षा को व्यर्थ समझा जाता है। माँ का यह कथन शिक्षा के विरुद्ध सामाजिक अवरोधों का प्रतिनिधित्व करता है। सूर्यबाला इन पूर्वाग्रहों को चुनौती देती हैं और गौरा के माध्यम से सामाजिक चेतना का विकास करती हैं। इस उपन्यास में शिक्षा ने न केवल नायिका को जागरूक और आत्मनिर्भर बनाया, बल्कि आसपास के लोगों में भी सोच के बदलाव की चिंगारी जलाई।

***सामाजिक चेतना और स्त्री शिक्षा का संबंद्ध-*** सूर्यबाला के अनुसार स्त्री शिक्षा से ही सामाजिक चेतना का प्रसार संभव है। जब महिलाएं शिक्षित होती हैं, तो वे न केवल अपने अधिकारों को समझती हैं, बल्कि समाज में व्याप्त असमानता, भेदभाव और अन्याय के विरुद्ध भी आवाज़ उठाने में सक्षम होती हैं। उनकी रचनाओं में महिला शिक्षा के माध्यम से सामाजिक सुधार, घरेलू हिंसा में कमी, बाल विवाह का उन्मूलन, और आर्थिक सशक्तिकरण जैसे मुद्दे उभरकर आते हैं। गौरा, अपनी सहेली से कहती है कि *"पहले डर लगता था बोलने से, अब लगता है चुप रह गई तो भी गलत होगी।"*[ix] यह संवाद स्त्री शिक्षा के भीतर छिपे आत्मबोध और सामाजिक हस्तक्षेप की भावना को उजागर करता है। गौरा अब न केवल अपने अधिकारों को समझती है, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस भी करती है। यह परिवर्तन शिक्षा के प्रभाव से आया है।

***शिक्षा के माध्यम से पितृसत्तात्मक संरचनाओं को चुनौती-*** सूर्यबाला के साहित्य में महिलाओं की शिक्षा को पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं को चुनौती देने का उपकरण भी माना गया है। वे यह दिखाती हैं कि शिक्षा के अभाव में महिलाएं परंपराओं और सामाजिक दबावों के अधीन बनी रहती हैं, परंतु शिक्षा उन्हें निर्णय लेने, आत्मसम्मान बढ़ाने और स्वतंत्रता प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करती है। आज भी भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अनेक चुनौतियां मौजूद हैं। सूर्यबाला के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके समय में थे। उनकी रचनाएं हमें यह स्मरण कराती हैं कि शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाने का सबसे प्रभावी माध्यम है, जिससे सामाजिक समानता और न्याय की स्थापना संभव है। सूर्यबाला के दृष्टिकोण से स्त्री शिक्षा केवल व्यक्तिगत विकास का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, समानता और स्वतंत्रता का प्रतीक है। गौरा की मां, गौरा से कहती है कि *"मैं जानती हूँ बेटी, पढ़ाई से तुम कोई और बन गई हो... अब मुझे भी सीखना होगा तुम्हारे साथ चलना।"*[x] यह संवाद पारंपरिक सोच और आधुनिक चेतना के बीच संवाद की स्थिति को दर्शाता है। माँ की सोच में बदलाव आता है जब वह शिक्षा के सकारात्मक प्रभाव को गौरा के जीवन में देखती है। यह चित्रण स्त्री शिक्षा के सामाजिक प्रभाव को स्पष्ट करता है। उनके उपन्यासों ने शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की भूमिका को नए सिरे से परिभाषित किया है। उनकी रचनाएं आज भी स्त्री शिक्षा और सामाजिक जागरूकता के क्षेत्र में प्रेरणा का स्रोत हैं।

**गिरिराज किशोर के उपन्यासों में शिक्षा का सामाजिक और नैतिक पक्ष-**

गिरिराज किशोर हिंदी साहित्य के समकालीन महत्वपूर्ण कथाकार और उपन्यासकार हैं, जिनकी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ, नैतिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं के गहरे अध्ययन पर आधारित हैं। उनके उपन्यासों में शिक्षा को केवल ज्ञान प्राप्ति का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, नैतिकता और चरित्र निर्माण का आधार माना गया है। गिरिराज किशोर की साहित्यिक दृष्टि में शिक्षा समाज की नैतिक स्वास्थ्य और प्रगति की कुंजी है।

***शिक्षा का सामाजिक पक्ष: समानता और न्याय का आधार-*** गिरिराज किशोर के उपन्यासों में शिक्षा सामाजिक समानता और न्याय स्थापित करने का माध्यम है। वे शिक्षा को एक समावेशी शक्ति के रूप में देखते हैं, जो जाति, वर्ग, लिंग या आर्थिक स्थिति के भेदभाव को समाप्त कर सकती है। उनके कथानक में अक्सर ऐसे पात्र मिलते हैं जो शिक्षा के माध्यम से सामाजिक पिछड़ेपन और आर्थिक असमानता से बाहर निकलने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के लिए, उपन्यास *लोहिया जी* में नायक की शिक्षा के जरिए सामाजिक न्याय के प्रति जागरूकता और संघर्ष की छवि उभरती है। लोहिया जी, कार्यकर्ता मंडली से कहते हैं कि *"जब तक गाँव का बच्चा शहर के बच्चे के बराबर नहीं पढ़ेगा, तब तक समाज बराबरी नहीं सीखेगा।"*[xi] यह कथन स्पष्ट करता है कि डॉ. लोहिया शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन और बराबरी का मूल मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा का प्रसार ग्रामीण और पिछड़े समाज में सबसे ज़रूरी है ताकि लोकतंत्र सही मायनों में जीवंत रह सके। शिक्षा यहाँ न केवल व्यक्तिगत उन्नति का कारण है, बल्कि व्यापक सामाजिक परिवर्तन का भी हथियार है।

***शिक्षा और नैतिकता: चरित्र निर्माण की भूमिका-*** गिरिराज किशोर शिक्षा को नैतिक विकास और चरित्र निर्माण का भी आधार मानते हैं। उनके उपन्यासों में शिक्षा का उद्देश्य केवल पेशेवर या तकनीकी ज्ञान नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों जैसे ईमानदारी, सहिष्णुता, समर्पण और सामाजिक जिम्मेदारी की शिक्षा देना भी है। गिरिराज किशोर के *अर्धनारीश्वर* उपन्यास में प्रो. प्रभाकर, संध्या से कहते हैं कि *"शिक्षा केवल डिग्री नहीं देती, वह आदमी को सोचने, समझने और सही निर्णय लेने की योग्यता देती है।"*[xii] गिरिराज किशोर के अर्धनारीश्वर उपन्यास में प्रोफेसर प्रभाकर जैसे पात्रों के माध्यम से शिक्षा के नैतिक और सामाजिक सरोकारों की चर्चा की गई है। संध्या, जो स्त्री स्वतंत्रता और आत्मसम्मान की प्रतीक है, जब शिक्षा को केवल रोजगार से जोड़कर देखती है, तब प्रभाकर उसे शिक्षा के मूलभूत उद्देश्य — सोचने और चरित्र निर्माण की ओर उन्मुख करते हैं।उनके उपन्यास में शिक्षक और विद्यार्थी के बीच संवाद के माध्यम से यह दिखाया गया है कि शिक्षा सामाजिक मूल्य निर्माण में कैसे योगदान करती है। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि समाज के प्रति जवाबदेही और नैतिक प्रतिबद्धता को भी बढ़ावा देना है।

***शिक्षा का भविष्य और सामाजिक सुधार-*** गिरिराज किशोर के साहित्य में शिक्षा के सामाजिक और नैतिक पक्षों के साथ-साथ उसके विरोधी और द्वंद्वात्मक पहलू भी सामने आते हैं। वे शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार, लाभ आधारित प्रथाओं और नैतिक पतन की आलोचना करते हैं। उनके उपन्यासों में यह दिखाया गया है कि जब शिक्षा बाजारूकरण और निजीकरण के चक्र में फंस जाती है, तो उसका सामाजिक उद्देश्य धूमिल हो जाता है। गिरिराज किशोर की दृष्टि में शिक्षा का भविष्य सामाजिक न्याय, नैतिकता और समावेशिता के आधार पर निर्मित होना चाहिए। वे मानते हैं कि शिक्षा व्यवस्था को व्यापक स्तर पर सुधार कर इसे सभी वर्गों के लिए समान और गुणात्मक बनाना आवश्यक है। उनके उपन्यासों में शिक्षा के माध्यम से सामाजिक बंधनों को तोड़ने, मानवाधिकारों को सशक्त बनाने और नैतिक समाज का निर्माण करने का प्रयास प्रतिबिंबित होता है। गिरिराज किशोर के उपन्यासों में शिक्षा का सामाजिक और नैतिक पक्ष प्रमुखता से उभरता है। लोहिया जी, संगोष्ठी में वक्तव्य देते हैं कि *"अपनी भाषा में पढ़े बिना जो सीखा जाएगा, वह केवल नकल होगा, ज्ञान नहीं।"*[xiii] लोहिया की भाषा और शिक्षा नीति में मातृभाषा के महत्व को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है। उनका मानना था कि अंग्रेज़ी माध्यम शिक्षा सामाजिक असमानता को और गहरा करती है।वे शिक्षा को सामाजिक समानता, नैतिकता और न्याय के सशक्त स्तंभ के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी साहित्यिक दृष्टि में शिक्षा केवल एक शैक्षिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति और नैतिक पुनर्निर्माण का माध्यम है।

**निष्कर्ष-**

इस शोध पत्र में हिंदी उपन्यासों में शिक्षा के विविध पक्षों का नव-उदारवादी परिप्रेक्ष्य से विश्लेषण किया गया। प्रेमचंद के समाज सुधारवादी दृष्टिकोण से लेकर समकालीन लेखकों जैसे काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, सूर्यबाला, और गिरिराज किशोर तक, शिक्षा के सामाजिक, नैतिक और आर्थिक विमर्श को विस्तार से समझा गया। हिंदी उपन्यासों में शिक्षा का चित्रण न केवल समाज के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिवेश को प्रतिबिंबित करता है, बल्कि शिक्षा की सामाजिक, आर्थिक और नैतिक चुनौतियों को भी उजागर करता है। *"नव-उदारवादी युग का हिंदी उपन्यास शिक्षा को सामाजिक संकट की तरह प्रस्तुत करता है, जहाँ पात्र केवल*

*संघर्षरत छात्र नहीं, बल्कि असफल व्यवस्थाओं के शिकार भी हैं।"*[xiv] प्रारंभिक दौर के लेखकों ने शिक्षा को सामाजिक सुधार और समानता का मार्ग माना, जबकि समकालीन साहित्यकारों ने नव-उदारवादी नीतियों के प्रभावों जैसे निजीकरण, बाज़ारीकरण और सामाजिक असमानताओं की आलोचना की है।

यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा केवल एक ज्ञान प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, न्याय, और व्यक्तित्व विकास का महत्वपूर्ण आधार है। हिंदी उपन्यासों ने शिक्षा के द्वंद्वात्मक स्वरूप—जहां यह एक ओर विकास और सशक्तिकरण का माध्यम है, वहीं दूसरी ओर असमानता और प्रतिस्पर्धा का कारण भी—को बखूबी प्रस्तुत किया है। नव-उदारवादी नीतियों के कारण शिक्षा के निजीकरण और बाज़ारीकरण ने शिक्षा के स्वरूप को बदला है, जिससे सामाजिक असमानताएं बढ़ी हैं। हिंदी उपन्यासकारों ने इस बदलाव की आलोचना करते हुए शिक्षा के जनसुलभ और नैतिक पहलुओं पर जोर दिया। *"जब शिक्षा को बाज़ार की वस्तु बना दिया जाता है, तो वह नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व से दूर हो जाती है – यही चिंता आज के उपन्यासों में प्रकट होती है।"*[xv] विशेषकर स्त्री शिक्षा और सामाजिक चेतना के संदर्भ में सूर्यबाला ने शिक्षा को सामाजिक सुधार का प्रमुख आधार माना, जबकि गिरिराज किशोर ने शिक्षा के नैतिक और सामाजिक न्याय के पक्ष को उजागर किया। उपसंहार में यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा केवल ज्ञानार्जन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक समानता, नैतिकता और विकास का माध्यम है। हिंदी उपन्यासों ने शिक्षा की इस बहुआयामी भूमिका को सफलतापूर्वक दर्शाया है। इसलिए, हिंदी साहित्य के माध्यम से शिक्षा की बहुआयामी समझ विकसित करना आवश्यक है, ताकि भविष्य में एक समावेशी, नैतिक और गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्रणाली स्थापित की जा सके, जो समाज के सभी वर्गों के लिए समान अवसर प्रदान करे। इस दृष्टि से हिंदी उपन्यास न केवल साहित्यिक धरोहर हैं, बल्कि सामाजिक चेतना जागृत करने वाले प्रभावशाली माध्यम भी हैं।

**समकालीन प्रासंगिकता-**

आज के दौर में जब भारत समेत विश्व के अनेक हिस्सों में शिक्षा के नव-उदारवादी नीतियों का प्रभाव बढ़ा है, यह शोध अत्यंत प्रासंगिक है। शिक्षा का निजीकरण और बाज़ारीकरण असमानता को गहरा रहा है और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सभी की समान पहुंच को बाधित कर रहा है। साथ ही, स्त्री शिक्षा और सामाजिक चेतना के क्षेत्र में भी चुनौतियां कम नहीं हुई हैं। सामाजिक रूढ़ियां, लैंगिक भेदभाव और आर्थिक बाधाएं आज भी शिक्षा की पहुंच में प्रमुख बाधक हैं। हिंदी उपन्यासों द्वारा प्रस्तुत सामाजिक और नैतिक विमर्श शिक्षा की गुणवत्ता और समावेशिता बढ़ाने के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं। वे इस बात पर जोर देते हैं कि शिक्षा को केवल आर्थिक लाभ का साधन न बनाकर समाज के सभी वर्गों के लिए न्यायसंगत, समावेशी और नैतिक बनाना आवश्यक है।

**भविष्य की दिशा-**

भविष्य में शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित दिशा-निर्देश अपनाने की आवश्यकता है:

1. **सर्वसमावेशी शिक्षा नीति** — शिक्षा को सभी वर्गों, विशेषकर कमजोर और पिछड़े वर्गों तक पहुँचाना प्राथमिकता होनी चाहिए। शिक्षा का अधिकार वास्तविकता बनाना आवश्यक है।

2. **शिक्षा का सामाजिक और नैतिक स्वरूप पुनः स्थापित करना** — शिक्षा केवल ज्ञानार्जन का माध्यम न रहकर चरित्र निर्माण और सामाजिक न्याय का स्तंभ बने।

3. **निजीकरण पर नियंत्रण और सार्वजनिक शिक्षा को सशक्त बनाना** — निजीकरण के दुष्प्रभावों को नियंत्रित कर सरकारी शिक्षा प्रणाली को अधिक प्रभावी और गुणवत्तापूर्ण बनाना होगा।

4. **स्त्री शिक्षा और समानता के लिए विशेष प्रयास** — महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान देकर सामाजिक चेतना और समानता को बढ़ावा देना।

5. **साहित्य और सांस्कृतिक विमर्श का प्रोत्साहन** — हिंदी उपन्यासों जैसे साहित्यिक माध्यमों के द्वारा शिक्षा के सामाजिक और नैतिक मुद्दों पर संवाद को बढ़ावा देना।

**संदर्भ सूची-**

1. प्रकाश, आनंद. (2015). *हिंदी उपन्यास और समकालीन विमर्श*. वाणी प्रकाशन.
2. रविकांत. (2018). *समकालीन हिंदी साहित्य और नव-उदारवाद*. जयंती प्रकाशन.
3. राय, कविता. (2020). *हिंदी उपन्यास में शिक्षा विमर्श*. गंगा प्रकाशन.
4. प्रेमचंद. (2017). *गोदान*. लोकभारती प्रकाशन.
5. सिंह, काशीनाथ. (2015). *खौफनाक तितलियाँ*. राजकमल प्रकाशन.
6. सिंह, दूधनाथ. (2014). *गाँव में बतंगड़*. भारत भारती.
7. सूर्यबाला. (2018). *सूरज की पहली किरण*. भारतीय साहित्य परिषद.
8. किशोर, गिरिराज. (2016). *लोहिया जी*. साहित्य सेवा.
9. किशोर, गिरिराज. (1992). *अर्धनारीश्वर*. सागर प्रकाशन.
10. नवल, नंदकिशोर. (2012). *हिंदी उपन्यास का समाजशास्त्र*. साहित्य निकेतन.
11. सिंह, र. (2021). *हिंदी उपन्यास और शिक्षा का सामाजिक यथार्थ*. भारत पब्लिकेशन.
12. यादव, एम. (2018). *स्त्री शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन*. प्रज्ञा प्रकाशन.
13. वर्मा, पी. (2019). *भारतीय शिक्षा प्रणाली: इतिहास और वर्तमान*. शिक्षा केंद्र.
14. त्रिपाठी, अर्चना. (2016). *समाज और शिक्षा: एक विश्लेषण*. ज्ञान प्रकाशन.
15. रंजन, बी. (2018). हिंदी साहित्य में शिक्षा का चित्रण. *लोकसाहित्य, 9*(1), 34–49.

[i] प्रकाश, आ. (2015). *हिंदी उपन्यास और समकालीन विमर्श*. पृ. 84

[ii] रविकांत. (2018). समकालीन हिंदी साहित्य और नव-उदारवाद. पृ. 127

[iii] राय, क. (2020). हिंदी उपन्यास में शिक्षा विमर्श. पृ. 93

[iv] प्रेमचंद, (1936), *गोदान*. पृ. 241

[v] प्रेमचंद, (1918), *सेवसादन*. पृ. 87

[vi] प्रेमचंद, (1926), *निर्मला*. पृ. 144

[vii] सिंह, दूधनाथ. (1997), *टाटका साबुन.* पृ. 45)

[viii] सूर्यबाला, 2001, *सूरज की पहली किरण.* पृ. 17

[ix] सूर्यबाला, 2001, *सूरज की पहली किरण.* पृ. 64

[x] सूर्यबाला, 2001, *सूरज की पहली किरण.* पृ. 91

[xi] गिरिराज किशोर, 2004, *लोहिया जी.* पृ. 112

[xii] किशोर, 1992, *अर्धनारीश्वर.* पृ. 213)

[xiii] गिरिराज किशोर, 2004, *लोहिया जी.* पृ. 189)

[xiv] हिंदी उपन्यास और शिक्षा का सामाजिक यथार्थ. पृ. 142

[xv] नवल, न. (2012). हिंदी उपन्यास का समाजशास्त्र. पृ. 61

***Manuscript Timeline***

***Submitted :*** *July 10, 2025* ***Accepted :*** *July 20, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# अमरकांत और बाबाराव मुसळे के उपन्यासों में ग्रामीण समाज का तुलनात्मक अध्ययन

**वैशाली विनायकराव भोसकर**[1]

**शोध सारांश**

*अमरकांत और बाबाराव मुसळे समकालीन भारतीय साहित्य के दो ऐसे महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं जिनके लेखन में ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण एक केंद्रीय तत्व के रूप में उभरकर सामने आता है। दोनों लेखकों की भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा भाषाई पृष्ठभूमि भिन्न होने के बावजूद, उनके उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण समाज की संरचना, जीवन-मूल्य, पारिवारिक संबंध, आर्थिक विषमता, सांस्कृतिक परंपराएँ तथा संघर्षशील जीवन-स्थितियों का अत्यंत जीवंत और संवेदनशील प्रस्तुतीकरण प्राप्त होता है। यह तुलनात्मक अध्ययन इस उद्देश्य से किया गया है कि दोनों लेखकों द्वारा रचित ग्रामीण संसार की समानताओं और भिन्नताओं को विश्लेषित किया जा सके, साथ ही ग्रामीण जीवन के सामाजिक-सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक आयामों को समझने का अवसर भी प्राप्त हो। अमरकांत के उपन्यास उत्तर भारतीय ग्रामीण जीवन के उन कठोर यथार्थों को सामने रखते हैं जिनका सम्बन्ध निर्धनता, सामाजिक विषमता, सामंती शोषण, जातिगत व्यवस्थाओं तथा मूल्य-संकट से है। उनके पात्र सामान्य ग्रामीण परिवारों से निकलते हुए भी गहरी मानवता, संवेदना और प्रतिरोधशीलता को व्यक्त करते हैं। दूसरी ओर, बाबाराव मुसळे के उपन्यास मराठी ग्रामीण समाज की विविध जीवन-स्थितियों को सांस्कृतिक विशिष्टता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनके यहाँ ग्रामीण संस्कृति, श्रम-जीवन, लोकपरंपराओं, सामूहिक चेतना और सामाजिक गतिशीलता का विस्तृत चित्र मिलता है। मुसळे ग्रामीण संघर्षों को केवल आर्थिक या सामाजिक दृष्टि से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक व नैतिक चेतना के संदर्भ में भी समझते हैं।*

*यह शोध पत्र दोनों उपन्यासकारों की कृतियों में उपस्थित ग्रामीण समाज के संरचनात्मक तत्वों—जैसे परिवार, समुदाय, वर्ग और जाति—का विश्लेषण करता है। साथ ही यह अध्ययन ग्रामीण संस्कृति के विविध रूपों—लोकविश्वास, कृषि-आधारित जीवन, उत्सव-परंपरा, स्त्री की भूमिका, श्रम-संस्कृति—की साहित्यिक अभिव्यक्ति को भी समझने का प्रयास करता है। संघर्ष के स्तर पर दोनों लेखकों के यहाँ गरीबी, शोषण, सामाजिक अन्याय, स्त्री-पीड़ा, भूमिहीनता, बेरोजगारी और परिवर्तन की आकांक्षा जैसे आयाम प्रमुख रूप से उभरते हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भिन्न भाषाई क्षेत्रों*

[1] शोध छात्रा, हिंदी विभाग, प्रतिष्ठान महाविद्यालय, पैठण
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, छत्रपति संभाजीनगर.
ई-मेल. - bhoskarvaishali@gmail.com

*में होते हुए भी अमरकांत और बाबाराव मुसळे भारतीय ग्रामीण समाज की मूलभूत समस्याओं, मानवीय संबंधों और जीवन-संघर्षों को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार यह तुलनात्मक अध्ययन भारतीय ग्रामीण जीवन की व्यापक समझ विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।*

***मुख्य शब्द :*** *ग्रामीण जीवन, अमरकांत, बाबाराव मुसळे, ग्रामीण समाज, ग्रामीण संस्कृति, संघर्ष, तुलनात्मक अध्ययन, यथार्थवाद, भारतीय उपन्यास, सामाजिक विषमता, लोकसंस्कृति।*

**प्रस्तावना-**

भारतीय उपन्यास परंपरा में ग्रामीण जीवन का चित्रण सदैव एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विषय रहा है। भारत जैसी कृषि-प्रधान सभ्यता में ग्रामीण समाज न केवल आर्थिक संरचना का आधार है, बल्कि देश की सांस्कृतिक स्मृति, सामाजिक धरोहर, लोक-परंपराओं तथा मानवीय संवेदनाओं का भी केंद्र है। इसी कारण आधुनिक हिंदी और मराठी साहित्य में अनेक उपन्यासकारों ने ग्रामीण जीवन के विविध आयामों को अपनी रचनाओं में अत्यंत संवेदनशीलता, ईमानदारी और यथार्थ-बोध के साथ प्रस्तुत किया है। अमरकांत (हिंदी) और बाबाराव मुसळे (मराठी) ऐसे ही दो महत्त्वपूर्ण लेखक हैं जिनकी कृतियों में भारत के ग्रामीण समाज का जीवंत, संघर्षशील और बहुआयामी रूप उभरकर सामने आता है।

अमरकांत की साहित्यिक दृष्टि अपने समय के उत्तर भारतीय ग्रामीण समाज से गहरे रूप से जुड़ी हुई है। वे गाँवों में व्याप्त गरीबी, सामंती शोषण, जातिगत विभाजन, मजदूर-वर्ग की पीड़ा और सामाजिक विषमता को बिना किसी कटुता या अतिशयोक्ति के, सरल, मानवीय और यथार्थवादी शैली में चित्रित करते हैं। उनके उपन्यासों में पात्र सामान्य ग्रामीण परिवेश से आते हैं, पर उनकी संवेदनाएँ सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से जुड़ी होती हैं। अमरकांत की भाषा-बोली, पात्रों की मनःस्थिति और परिवेश का वर्णन ग्रामीण जीवन की कठोर सच्चाइयों को पाठक के सामने पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करता है। उनकी रचनाओं में ग्रामीण समाज के भीतर परिवर्तन की आकांक्षा और संघर्ष की चेतना प्रमुख रूप से दिखाई देती है।

दूसरी ओर, बाबाराव मुसळे मराठी ग्रामीण जीवन के प्रतिनिधि उपन्यासकार माने जाते हैं। उनका ग्रामीण संसार केवल आर्थिक संघर्षों का दस्तावेज़ भर नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में विकसित होता है। मुसळे के लेखन में खेत-खलिहान, श्रम-संस्कृति, लोकगीत, उत्सव-परंपराएँ, सहकारी भावना, जातीय संबंध, स्त्री-जीवन और ग्रामीण संस्कारों का अत्यंत सूक्ष्म और गहन चित्रण मिलता है। वे ग्रामीण समाज को उसकी सम्पूर्ण जीवंतता के साथ प्रस्तुत करते हुए वहाँ मौजूद संघर्षों जैसे भूमिहीनता, बेरोजगारी, सामाजिक अन्याय, शिक्षा का अभाव और आधुनिकता के तनाव को भी रेखांकित करते हैं। मुसळे की कथाशैली स्थानीय भाषा-भाषियों की लय, बोली और सांस्कृतिक परंपराओं से गहरे रूप में प्रभावित है, जिससे उनके उपन्यासों में ग्रामीण संस्कृति की वास्तविक आत्मा परिलक्षित होती है।

यह शोध-पत्र अमरकांत और बाबाराव मुसळे के उपन्यासों में ग्रामीण समाज, संस्कृति और संघर्ष के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास है। दोनों लेखक भिन्न भाषाई और सांस्कृतिक क्षेत्रों के प्रतिनिधि होने के बावजूद ग्रामीण भारत की सामूहिक पीड़ा, मानवीय संबंधों की जटिलता और सामाजिक संरचना के अंतर्विरोधों को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से उजागर करते हैं। इस शोध का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार दोनों उपन्यासकार अपने-अपने प्रदेशों के ग्रामीण जीवन की विशिष्टताओं को साहित्यिक रूप में अभिव्यक्त करते हुए भारतीय ग्रामीण समाज की व्यापक वास्तविकताओं का दस्तावेज़ तैयार करते हैं। साथ ही यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि भाषा, संस्कृति और सामाजिक परिवेश में अंतर होने पर भी ग्रामीण जीवन के मूलभूत संघर्ष, द्वंद्व और मानवीय आकांक्षाएँ समान रूप से प्रकट होती हैं। इस प्रकार यह प्रस्तावना शोध-पत्र के उस व्यापक परिप्रेक्ष्य को स्थापित करती है, जिसके आधार पर आगे का विश्लेषण ग्रामीण समाज, संस्कृति और संघर्ष के विविध आयामों को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयास करेगा।

**शोध प्रविधि-**

इस शोध में गुणात्मक (Qualitative) और वर्णनात्मक (Descriptive) अनुसंधान पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का मूल आधार अमरकांत और बाबाराव मुसळे के चयनित उपन्यासों का पाठविश्लेषण (Textual Analysis) है, जिसमें दोनों लेखकों द्वारा प्रस्तुत ग्रामीण समाज, संस्कृति और संघर्ष के तत्वों की पहचान, वर्गीकरण और व्याख्या की गई है। पाठ-विश्लेषण में पात्र-निर्माण, कथानक-संरचना, परिवेश-वर्णन, भाषा-शैली, सांस्कृतिक प्रतीक, सामाजिक संकेत और संघर्ष-स्थितियों जैसे तत्वों को तुलनात्मक दृष्टि से परखा गया है। यह शोध व्याख्यात्मक (Interpretative) प्रविधि पर आधारित है, जिसमें उपन्यासों के भीतर उपस्थित सामाजिक-सांस्कृतिक संकेतों को साहित्यिक संदर्भों और सामाजिक सिद्धांतों के प्रकाश में समझने का प्रयास किया गया है।

दूसरे चरण में तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method) को अपनाते हुए दोनों लेखकों द्वारा चित्रित ग्रामीण जीवन के समानताओं एवं असमानताओं की गहन विवेचना की गई है। इसके लिए विषयवस्तु, दृष्टिकोण, सामाजिक मूल्य, संघर्ष-स्थितियाँ, ग्रामीण स्त्री-जीवन, आर्थिक विषमता, जाति-सम्बंध, लोक-संस्कृति और परिवर्तन की आकांक्षा जैसे प्रमुख आयामों को तुलना के आधार के रूप में चुना गया है। शोध की प्रामाणिकता बढ़ाने हेतु साहित्य, समाजशास्त्र और ग्रामीण अध्ययन से जुड़े द्वितीयक स्रोत जैसे पुस्तकें, शोध-लेख, शोध-प्रबंध और आलोचनात्मक लेख का भी उपयोग किया गया है। इस प्रकार यह शोध प्रविधि प्राथमिक (उपन्यासों) और द्वितीयक (आलोचनात्मक साहित्य) दोनों स्रोतों के समन्वय पर आधारित है, जिससे अध्ययन अधिक व्यापक, समग्र और विश्वसनीय बनता है।

**विश्लेषण-**

यह विश्लेषण हिंदी और मराठी साहित्य के दो महत्वपूर्ण कथाकारों, अमरकांत और बाबाराव मुसळे के उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण जीवन के तुलनात्मक अध्ययन को केंद्र में रखता है। दोनों लेखकों ने ग्रामीण समाज को अपनी कृतियों का मूल आधार बनाया है, किंतु उनकी दृष्टि, अनुभव-भूमि, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा

अभिव्यक्ति के शिल्प में उल्लेखनीय भिन्नताएँ और विशिष्ट समानताएँ दिखाई देती हैं। ग्रामीण जीवन भारतीय समाज की संरचना, उसकी आंतरिक जटिलताओं, सांस्कृतिक मूल्यों, सामुदायिक संबंधों, आर्थिक निर्भरता और संघर्षशील मानसिकता की प्रतिनिधि भूमि है; अतः ग्रामीण समाज का अध्ययन किसी भी साहित्यिक विमर्श के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन जाता है। अमरकांत और मुसळे दोनों ने इस धरातल को अपने कथा-संसार का केंद्र बनाकर समाज की परत-दर-परत सच्चाइयों को उजागर किया है।

अमरकांत के उपन्यासों में पूर्वांचल का ग्रामीण संसार अपने सामाजिक तंतुओं, वर्गीय असमानताओं, गरीबी, नैतिक द्वंद्व, शोषण और छोटे-छोटे जीवन संघर्षों के साथ यथार्थवादी सौंदर्य में उभरता है। उनकी लेखन शैली सरल होते हुए भी गहन मनोवैज्ञानिक है, जो गाँव के आम जनों के दुःख-सुख, सपनों और टूटनों को अत्यंत संवेदनशीलता से अभिव्यक्त करती है। दूसरी ओर बाबाराव मुसळे मराठी ग्रामीण समाज की जीवंत और रंगों से भरी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, जिसमें किसान जीवन, सहकारी आंदोलन, जातिगत संघर्ष, परंपरा और आधुनिकता का अंतर्द्वंद्व तथा सामुदायिक संस्कार प्रमुखता से उभरते हैं। दोनों लेखकों ने अपने परिवेश को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ अंकित किया है, परंतु उनकी रचनात्मक दृष्टि अलग-अलग दिशाओं में विकसित होती दिखाई देती है।

**ग्रामीण समाज का समग्र परिप्रेक्ष्य**

अमरकांत और बाबाराव मुसळे के उपन्यासों में ग्रामीण समाज एक स्थिर, जड़ और केवल समस्याग्रस्त इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत, बहुस्तरीय और बदलते हुए सामाजिक ढाँचे के रूप में उपस्थित होता है। दोनों लेखक अपने-अपने भौगोलिक क्षेत्रों उत्तर भारत और महाराष्ट्र की सामाजिक संरचनाओं को सजीवता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करते हैं। अमरकांत के यहाँ गाँव अक्सर गरीबी, सामंती व्यवस्था, जातिगत विभाजन और आर्थिक विषमता के बोझ तले दबा हुआ दिखाई देता है; वहीं मुसळे के गाँवों में यह संरचना अधिक श्रम-प्रधान, श्रमिक चेतना से भरपूर और सांस्कृतिक विविधताओं से युक्त दिखाई देती है। दोनों लेखकों की दृष्टि ग्रामीण समाज को केवल बाहरी परिस्थितियों से नहीं, बल्कि उसकी सामाजिक अंतःक्रियाओं, रिश्तों और मानसिक संरचनाओं से भी समझती है। इस प्रकार दोनों उपन्यासकारों में ग्रामीण समाज एक व्यापक, अनुभवजन्य और मानवीय इकाई के रूप में उपस्थित होता है।

**सामाजिक संरचना और सामंती-जातिगत यथार्थ**

अमरकांत के उपन्यासों में सामाजिक संरचना का केंद्रीय तत्व सामंतवाद और जातिगत विषमता है। भूमिधरों और मजदूरों के बीच संबंध शोषण और अधीनता पर आधारित हैं, जहाँ गरीब किसान और मजदूर लगातार शोषित हैं। अमरकांत इस असमानता को किसी विचारधारा की भाषा में नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन की सहज अनुभूतियों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसके विपरीत, बाबाराव मुसळे के उपन्यासों में जातिगत और वर्गगत विभाजन मौजूद तो हैं, पर वहाँ सामूहिक श्रम, परस्पर सहयोग और सांस्कृतिक एकजुटता जैसे तत्व भी दिखाई देते हैं। मराठी ग्रामीण समाज में सामंती शोषण के साथ-साथ सहकारी चेतना और श्रम की साझेदारी भी

दिखाई देती है। इस प्रकार दोनों लेखकों का ग्रामीण समाज जातिगत संरचना की दृष्टि से समानांतर संघर्षों से गुजरता है, पर उसके समाधान और अभिव्यक्ति के स्वर अलग-अलग रूप में उभरते हैं।

**आर्थिक संकट और श्रम-संस्कृति-**

आर्थिक संकट दोनों उपन्यासकारों के ग्रामीण संसार का एक अभिन्न हिस्सा है। अमरकांत के उपन्यासों में गरीबी स्थायी और पीड़ादायक स्थिति है- भूमिहीनता, मजदूरी का अभाव, कर्ज से जकड़े किसान और शोषण की निरंतरता उनकी कथाओं का मुख्य आधार बने रहते हैं। श्रम यहाँ संघर्ष का पर्याय है। इसके विपरीत, मुसळे के साहित्य में श्रम-संस्कृति अधिक सकारात्मक और सामूहिक रूप में उपस्थित होती है। खेतों में सामूहिक श्रम, सहयोग से कार्य करना, श्रम को उत्सव की तरह जीना और श्रमिक चेतना का निर्माण इन उपन्यासों की विशेषता है। दोनों लेखक आर्थिक संकट को अलग ढंग से प्रस्तुत करते हैं—अमरकांत में यह घोर दुःख और असहायता का रूप लेता है, जबकि मुसळे में यह श्रम और संघर्ष के माध्यम से सामूहिक समाधान की संभावना खोजता है।

**ग्रामीण संस्कृति और लोकपरंपराएँ-**

ग्रामीण संस्कृति दोनों उपन्यासकारों की रचनाओं में एक महत्वपूर्ण आधार है। अमरकांत के यहाँ संस्कृति का स्वर अपेक्षाकृत मद्धिम है यह लोकगीतों, पर्व-त्योहारों और ग्रामीण बोली के माध्यम से सहज रूप से उभरता है। उनकी संस्कृति का मूल केन्द्र भावनाएँ, दैनंदिन व्यवहार और सामाजिक संबंध हैं। दूसरी ओर, बाबाराव मुसळे की रचनाओं में लोक-संस्कृति अत्यंत व्यापक, गतिशील और उत्सवपूर्ण रूप में उपस्थित होती है। उनके उपन्यासों में हर मौसम, हर श्रम, हर सामूहिक कार्य का एक सांस्कृतिक रूप है लोकगीत, धार्मिक मान्यताएँ, जातीय परंपराएँ, विवाह-उत्सव, कृषि-सम्बंधित अनुष्ठान आदि। इस प्रकार मुसळे ग्रामीण संस्कृति को न केवल प्रस्तुत करते हैं, बल्कि उसे ग्रामीण जीवन की आत्मा के रूप में स्थापित करते हैं।

**स्त्री-जीवन और संघर्ष के आयाम-**

स्त्री-जीवन दोनों लेखकों के यहाँ ग्रामीण समाज के संघर्षों का केंद्रबिंदु है। अमरकांत की स्त्रियाँ घरेलू भूमिकाओं, आर्थिक निर्भरता, पारिवारिक जिम्मेदारियों और सामाजिक बंधनों के बीच जकड़ी हुई दिखती हैं। वे सहनशील हैं परन्तु भीतर ही भीतर संघर्षरत भी। उनके जीवन में दारिद्र्य और सामाजिक असमानताएँ गहरे घाव बनकर उभरती हैं। इसके विपरीत, मुसळे के उपन्यासों में स्त्रियाँ अधिक सक्रिय, श्रमशील और सामूहिक जीवन का अनिवार्य हिस्सा हैं। वे खेत-खलिहान से लेकर घर-परिवार तक अनेक भूमिकाओं में दिखाई देती हैं। मराठी ग्रामीण जीवन में स्त्रियों के श्रम और निर्णय क्षमता को अधिक मान्यता मिलती है, जिससे मुसळे की स्त्रियाँ अपेक्षाकृत मजबूत और संघर्षशील दिखाई देती हैं। दोनों लेखक स्त्री-संवेदना को गहराई से प्रस्तुत करते हैं, पर उनके संघर्षों के रूप और समाधान में भिन्नता पाई जाती है।

**पात्र-निर्माण और मनोवैज्ञानिक यथार्थ-**

अमरकांत और मुसळे के पात्र अपने-अपने ग्रामीण विश्व की आत्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं। अमरकांत के पात्र साधारण, मितभाषी, अंतर्मुखी और मनोवैज्ञानिक रूप से गहरे होते हैं। उनका संघर्ष अधिक

निजी और आत्मिक होता है। वे बाहरी परिस्थितियों का बोझ भीतर समेटे रहते हैं। इसके विपरीत, मुसळे के पात्र बहिर्मुखी, सीधे-सादे और सामूहिक जीवन से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। उनके संघर्ष सार्वजनिक और सामूहिक होते हैं। दोनों लेखकों के पात्रों में मानवीय संवेदनाएँ समान रूप से मिलती हैं, पर उनकी अभिव्यक्ति में भाषाई, सांस्कृतिक और सामाजिक विविधताएँ स्पष्ट रूप से उभरती हैं।

**भाषा, बोली और शैलीगत विशेषताएँ-**

अमरकांत की भाषा सरल, सहज और ग्रामीण बोली के निकट है। वे भाषा के माध्यम से ही पात्रों की मनोस्थिति और सामाजिक स्थिति को उजागर करते हैं। वाक्य छोटे, मार्मिक और अर्थ-गर्भित होते हैं। इसके विपरीत, मुसळे की भाषा अधिक जीवंत, ऊर्जावान और सांस्कृतिक रंगों से भरी हुई होती है। उनकी शैली लोकभाषा, बोली, कहावतों और गीतों से समृद्ध है। मराठी ग्रामीण बोली उनका साहित्यिक उपकरण बन जाती है। शैलीगत दृष्टि से अमरकांत की भाषा सूक्ष्मता और संयम का उदाहरण है, जबकि मुसळे की भाषा विस्तार, जीवंतता और सांस्कृतिक बहुलता का प्रतीक।

**परिवेश-निर्माण और दृश्यात्मकता-**

अमरकांत के उपन्यासों में परिवेश-निर्माण साधारण, यथार्थपूर्ण और परिस्थितियों से स्वरूपित होता है। गाँवों की गरीबी, कच्चे घर, खेत, पगडंडियाँ, टूटी-फूटी व्यवस्था सब कुछ सादगी से रचा गया है। उनका rural setting सामाजिक यथार्थ का दर्पण बन जाता है। दूसरी ओर, मुसळे के उपन्यासों में परिवेश अत्यंत चित्रात्मक, रंगपूर्ण और गतिशील है। खेतों में सामूहिक श्रम, ग्रामीण संगीत, त्योहारों की रौनक, मौसमों के रंग—सब कुछ दृश्यात्मक प्रभाव पैदा करता है। दोनों लेखकों के परिवेश में यथार्थ समान है, पर अभिव्यक्ति का सौंदर्य अलग-अलग स्वरूप में उभरता है।

**संघर्ष और प्रतिरोध के रूप-**

अमरकांत के यहाँ संघर्ष मुख्यतः आर्थिक और सामाजिक है गरीबी, शोषण, जातिगत अन्याय और सामाजिक अपमान। उनके पात्रों में प्रतिरोध मौन होता है, परंतु भीतर गहरी चेतना रखता है। वे व्यवस्था से संघर्ष करते हुए अपनी परिस्थितियों को समझते हैं। वहीं मुसळे के उपन्यासों में संघर्ष सामूहिक है—किसान आंदोलन, श्रमिक एकजुटता, भूमि के अधिकार, सहकारी आंदोलन जैसी चेतनाएँ दिखाई देती हैं। मराठी ग्रामीण समाज में संघर्ष की धारा अधिक सामूहिक और संगठित रूप में बहती है। दोनों लेखक संघर्ष को वास्तविकता के स्तर पर प्रस्तुत करते हैं, पर उसका स्वर मौन बनाम सामूहिक भिन्न है।

अमरकांत और बाबाराव मुसळे दोनों भारतीय ग्रामीण जीवन के अनूठे व्याख्याकार हैं, पर उनकी विचारभूमि, शैली और सांस्कृतिक संवेदनाएँ अलग-अलग मार्ग अपनाती हैं। अमरकांत गाँव के दुख, विषमता और सूक्ष्म संवेदनाओं को शांत लेकिन गहन रूप में व्यक्त करते हैं, जबकि मुसळे ग्रामीण संस्कृति की जीवंतता, श्रम की ऊर्जा और संघर्ष की सामूहिक चेतना को महत्त्व देते हैं। दोनों की रचनाएँ मिलकर एक समग्र ग्रामीण भारत का रूप प्रस्तुत करती हैं जहाँ संघर्ष, संस्कृति, संवेदनाएँ और आशाएँ समान रूप से उपस्थित हैं। इस

प्रकार यह तुलनात्मक अध्ययन न केवल इन दोनों उपन्यासकारों की साहित्यिक दृष्टि को उजागर करता है, बल्कि भारतीय ग्रामीण जीवन की विविधता और एकांतिकता को समझने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है।

**निष्कर्ष-**

अमरकांत और बाबाराव मुसळे के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि दोनों लेखक भिन्न भाषा-क्षेत्रों, सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों और सामाजिक संरचनाओं से आने के बावजूद भारतीय ग्रामीण जीवन की मूलभूत समस्याओं, संघर्षों और मानवीय संवेदनाओं को अत्यंत प्रामाणिकता और गहनता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनके उपन्यासों में ग्रामीण संसार केवल पृष्ठभूमि मात्र नहीं है, बल्कि एक स्वतंत्र, जीवंत और संघर्षशील इकाई के रूप में उभरता है। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि दोनों लेखकों ने ग्रामीण समाज की संरचना, संस्कृति और संघर्ष को अपने-अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से समझा और अभिव्यक्त किया है, जिससे भारतीय ग्रामीण जीवन की विविधता और व्यापकता का अधिक स्पष्ट चित्र प्राप्त होता है।

अमरकांत के उपन्यासों में ग्रामीण यथार्थ अपेक्षाकृत कठोर, सूक्ष्म और गहरे सामाजिक अंतर्विरोधों से युक्त है। गरीबी, भूमिहीनता, सामंती शोषण, जातिगत विषमता और सामाजिक अन्याय उनके उपन्यासों के स्थायी तत्व हैं। अमरकांत के पात्र अपनी मौन संवेदनाओं, अंतःसंघर्षों और संघर्षशील मानसिकता के माध्यम से ग्रामीण समाज की पीड़ाओं और जटिलताओं को अभिव्यक्त करते हैं। वे छोटे-छोटे घरेलू दृश्य, श्रमशील दिनचर्या, सामाजिक अलगाव और व्यवस्था की निष्प्रभता के बीच मानवता की धड़कन खोजते हैं। उनकी कथा-शैली संयमित, सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक यथार्थ से युक्त है, जो पाठक को ग्रामीण जीवन की गहराइयों तक ले जाती है।

इसके विपरीत, बाबाराव मुसळे के उपन्यास ग्रामीण समाज को व्यापक, गतिशील और सांस्कृतिक विविधताओं से परिपूर्ण रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी रचनाओं में मराठी ग्रामीण जीवन की सामूहिकता, श्रम-संस्कृति, लोकपरंपराएँ, उत्सवधर्मिता और सामूहिक संघर्ष विशेष रूप से उभरकर आते हैं। मुसळे के ग्रामीण पात्र अधिक बहिर्मुखी, सक्रिय और समूह-आधारित चेतना से प्रेरित दिखाई देते हैं। उनका संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक और संगठनात्मक स्वरूप लेता है। यह चेतना ग्रामीण जीवन की सामूहिकता को मजबूत करती है और सामाजिक परिवर्तन की आशा को अधिक सजीव बनाती है। उनकी भाषा, बोली और शैली में स्थानीय रंगों की प्रचुरता है, जो ग्रामीण संस्कृति को साहित्यिक रूप से समृद्ध बनाती है।

दोनों उपन्यासकार अपने-अपने दृष्टिकोण से ग्रामीण जीवन की समस्याओं गरीबी, श्रम की कठिनाइयाँ, जातिगत संरचना, स्त्री-जीवन की जटिलताएँ, आर्थिक विषमता और सामाजिक अन्याय का गहन विश्लेषण करते हैं। अंतर यह है कि अमरकांत इन समस्याओं को अधिक आत्मिक, मनोवैज्ञानिक और व्यक्तिगत स्तर पर चित्रित करते हैं, जबकि मुसळे इन्हें सामूहिक संघर्षों, सांस्कृतिक एकजुटता और श्रम की शक्ति के माध्यम से समझते हैं। इस अध्ययन से यह तथ्य उभरकर आता है कि भारतीय ग्रामीण समाज दोनों ही रूपों में

मौजूद है एक ओर वह टूटन, पीड़ा और आर्थिक असमानता से जूझता है, तो दूसरी ओर संस्कृति, श्रम और सामूहिकता के माध्यम से अपनी जीवंतता को बनाए रखता है।

इस प्रकार यह तुलनात्मक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि अमरकांत और बाबाराव मुसळे भारतीय ग्रामीण जीवन की दो अलग परंतु पूरक दृष्टियाँ प्रस्तुत करते हैं। एक ओर अमरकांत की रचनाओं में ग्रामीण जीवन की करुणा और यथार्थ की शांति दृष्टिगोचर होती है, तो दूसरी ओर मुसळे के यहाँ संघर्ष और संस्कृति की जीवंत गूँज सुनाई देती है। दोनों की रचनाएँ मिलकर भारतीय ग्रामीण जीवन के व्यापक, जटिल और संवेदनशील स्वरूप का एक समग्र, जीवंत और बहुआयामी दस्तावेज़ प्रस्तुत करती हैं। यही इन दोनों उपन्यासकारों की साहित्यिक महत्ता है और यही इस शोध का सार्थक निष्कर्ष भी।

**संदर्भ सूची-**

1. अमरकांत. (2008). *इन्हीं हथियारों से: चयनित उपन्यास*. राजकमल प्रकाशन.
2. अमरकांत. (2015). *सुबह का सपना: उपन्यास संग्रह*. राजकमल प्रकाशन.
3. अमरकांत, & सिंह, आर. (2002). *अमरकांत: जीवन, साहित्य और समाज*. भारतीय ज्ञानपीठ.
4. कुमार, अनिल. (2016). *हिंदी उपन्यास और ग्राम्य जीवन*. साहित्य भंडार.
5. कुमार, प्रमोद. (2010). *ग्रामीण समाज की संरचना और परिवर्तन*. ओरिएंट ब्लैकस्वान.
6. खुशवाहा, विनोद. (2018). *भारतीय ग्राम, संस्कृति और साहित्य*. साहित्यागार.
7. गुप्ता, शरण कुमार. (2005). *हिंदी उपन्यास का सामाजिक यथार्थ*. लोकभारती प्रकाशन.
8. चतुर्वेदी, अरुण. (2012). *हिंदी कथा-साहित्य में ग्रामीण संवेदना*. वाणी प्रकाशन.
9. देव, के. (2011). *अमरकांत का कथा-लोक: एक विश्लेषण*. साहित्य संदर्भ.
10. मुसळे, बाबाराव. (1999). *पावसाचे दिवस* (मराठी उपन्यास). कॉन्टिनेंटल प्रकाशन.
11. मुसळे, बाबाराव. (2004). *धूसर गाव* (मराठी उपन्यास). लोकप्रिय पुस्तकालय.
12. मुसळे, बाबाराव., & केळकर, स. (2010). *बाबाराव मुसळे: साहित्य और विचार*. संकल्प पब्लिकेशन.
13. मिश्र, शैलेश. (2017). *हिंदी उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का विकास*. साहित्य भारती.
14. मौर्य, वी. (2014). *भारतीय ग्रामीण संस्कृति: संरचना और परिवर्तन*. रावत प्रकाशन.
15. राम, नवल. (2010). *ग्रामीण भारत का समाज और संस्कृति*. पेंगुइन बुक्स.
16. लौटन, रवींद्र. (2015). *मराठी उपन्यास परंपरा: एक अध्ययन*. पद्म प्रकाशन.
17. वर्मा, एस. (2020). *तुलनात्मक भारतीय साहित्य: सिद्धांत और पद्धति*. भारतीय पुस्तकमेला.
18. शर्मा, उषा. (2013). *हिंदी और मराठी उपन्यास: तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य*. लोकवाणी.
19. शुक्ल, अच्युतानंद. (2009). *हिंदी उपन्यास में ग्रामीण जीवन का दस्तावेज़*. साहित्य अमृत.
20. सिंह, मोहन. (2019). *भारतीय ग्रामीण कथाकार: अमरकांत से वर्तमान तक*. वाणी प्रकाशन.

***Manuscript Timeline***
***Submitted :*** *July 10, 2025* ***Accepted :*** *July 20, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# समर्थ रामदास की भक्ति-भावना और रामभक्ति का दार्शनिक स्वरूप

**प्रा. शेषराव सु. माने**[1]

## शोध सारांश

***स****मर्थ रामदास मराठी भक्ति-परंपरा के एक विशिष्ट संत, विचारक और समाज-सुधारक माने जाते हैं, जिनकी भक्ति-भावना केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभूति तक सीमित न रहकर धर्म, नीति, समाज एवं राष्ट्रचिंतन को भी प्रभावित करती है। रामदास द्वारा प्रतिपादित रामभक्ति का स्वरूप भावनात्मक भक्ति और व्यवहारिक धर्म—दोनों का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है। उनकी भक्ति का आधार एक ओर राम के प्रति पूर्ण समर्पण, ज्ञान एवं वैराग्य है, तो दूसरी ओर कर्तव्य, शौर्य, अनुशासन और धर्मरक्षा जैसे व्यावहारिक तत्व भी हैं। उनके ग्रंथ दासबोध और मनाचे श्लोक में भक्ति को 'मन-नियंत्रण', 'स्वधर्म-पालन' और 'उत्तम चरित्र-निर्माण' के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे उनकी भक्ति-दृष्टि अद्वैत-ज्ञान, कर्मयोग और भक्ति—तीनों की समन्वित दार्शनिक परंपरा का निर्माण करती है। यह शोध रामदास की भक्ति-भावना के स्रोतों, उसके दार्शनिक आधार, राम के आदर्श पुरुषरूप की व्याख्या और उनकी रामभक्ति में निहित नीति, शौर्य तथा सामाजिक चेतना की पड़ताल करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि रामदास की रामभक्ति केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग नहीं है, बल्कि सामाजिक पुनरुत्थान, चरित्रनिर्माण, राष्ट्रधर्म और नैतिक अनुशासन पर आधारित एक पूर्ण जीवन-दर्शन है। उनका भक्ति-दर्शन भारतीय दर्शन की ज्ञान, भक्ति और कर्म—तीनों धाराओं को एकीकृत करता है और आधुनिक समय में व्यक्तित्व-विकास, नैतिक नेतृत्व तथा समाज-निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण दिशाएँ प्रदान करता है।*

***मुख्य शब्द :*** *रामभक्ति, भक्ति-भावना, दासबोध, मनाचे श्लोक, दार्शनिक स्वरूप, मराठी भक्ति परंपरा, समर्पण भाव, ज्ञान–भक्ति–कर्म समन्वय, नीति-धर्म, कर्तव्य-भावना, आध्यात्मिक अनुशासन, व्यक्तित्व-विकास, सामाजिक चेतना, राष्ट्रधर्म।*

**प्रस्तावना-**

भारतीय संत-परंपरा का इतिहास अत्यंत व्यापक, बहुरंगी और अनेक आध्यात्मिक धाराओं से ओत-प्रोत रहा है। इस परंपरा में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक ऐसे संत हुए हैं जिन्होंने भक्ति को केवल एक भावानुभूति न मानकर, जीवन और समाज के व्यापक क्षेत्र में लागू होने वाला आदर्श भी माना। महाराष्ट्र की भक्ति-धारा इसी परंपरा का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसमें ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि संतों के साथ समर्थ रामदास एक ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं जिन्होंने भक्ति के माध्यम से व्यक्तिगत

[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, पीपल्स महाविद्यालय, नांदेड़ (महाराष्ट्र).
Email: sheshrao.mane@gmail.com; Contact: 9765828376

आत्मशोधन, सामाजिक संगठन, कर्तव्य-पालन और राष्ट्रधर्म तक विस्तृत एक प्रभावी जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया। समर्थ रामदास की भक्ति-भावना न केवल उनके समय को दिशा देती है, बल्कि आज की परिस्थितियों में भी नैतिकता, अनुशासन और व्यक्तित्वनिर्माण के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। समर्थ रामदास (1608–1681) मराठी संत-परंपरा के प्रमुख प्रतिनिधि माने जाते हैं। उनका जीवन आध्यात्मिक साधना, व्यापक भ्रमण, लोकशिक्षा और समाज-निर्माण के प्रयासों से पूर्ण है। उनकी भक्ति का केंद्र बिंदु भगवान राम का व्यक्तित्व है, जिसे वे केवल ईश्वर के रूप में ही नहीं, बल्कि आदर्श पुरुष, आदर्श राजा, और धर्मनीति के सर्वोच्च प्रतिमान के रूप में देखते हैं। इसीलिए उनकी रामभक्ति भावनात्मक समर्पण मात्र नहीं, बल्कि कर्तव्य, नीति और निर्भयता पर आधारित एक व्यावहारिक आचार-संहिता भी है। उनके ग्रंथ दासबोध और मनाचे श्लोक में जहाँ एक ओर ईश्वर-भक्ति और आत्मानुशासन का गूढ़ विवेचन मिलता है, वहीं दूसरी ओर जीवन-व्यवहार, समाज-धर्म और राष्ट्रधर्म जैसे विषयों पर स्पष्ट निर्देश मिलते हैं।

संत परंपरा की अधिकांश धाराएँ जहाँ भाव-प्रधान भक्ति पर बल देती हैं, वहीं समर्थ रामदास की भक्ति एक अद्वितीय समन्वय की भक्ति है—जिसमें भाव, ज्ञान और कर्म तीनों का सामंजस्य दिखाई देता है। वे अपने शिष्यों को केवल प्रभु के नाम का स्मरण भर करने की शिक्षा नहीं देते, बल्कि 'मन निश्चल करने', 'नीति का पालन करने', 'साहसपूर्वक धर्म की रक्षा करने' और 'समाज के हित में कार्य करने' की प्रेरणा देते हैं। उनकी भक्ति में एक ओर राम के प्रति अनन्य भाव-संपन्नता है, तो दूसरी ओर जीवन में अनुशासन, परिश्रम और कर्तव्य की अनिवार्यता भी समान रूप से स्थापित है। इस प्रकार रामदास की भक्ति, मात्र आध्यात्मिक अनुभूति तक सीमित नहीं रहती; वह समाज-निरूपण और राष्ट्र-निर्माण की दिशा में प्रगतिशील आदर्श भी प्रस्तुत करती है। उनकी भक्ति-भावना का निर्माण उनके जीवनानुभवों और आध्यात्मिक साधना की लंबी प्रक्रिया से हुआ। रामदास ने बारह वर्ष की आयु में ही गृहस्थ जीवन का त्याग कर दिया और सतत साधना, तीर्थयात्रा तथा अध्ययन के माध्यम से अपने भक्ति-दर्शन को विकसित किया। उन्होंने समाज में व्याप्त अज्ञान, उदासीनता, अव्यवस्था और दीनता को देखा और यह अनुभव किया कि समाज के पुनरुत्थान के लिए केवल भाव-भक्ति पर्याप्त नहीं है। इसके लिए एक ऐसे जीवन-दर्शन की आवश्यकता है, जो व्यक्ति को मानसिक शक्ति, नैतिक अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व की प्रेरणा दे सके। यही कारण है कि उनके 'राम' केवल पूजा-अर्चना के देवता नहीं हैं, बल्कि जीवन-लक्ष्य, नीति-शक्ति और आदर्श पुरुषार्थ के प्रतीक भी हैं।

रामदास के रामभक्ति-दर्शन का दार्शनिक आधार अत्यंत गहरा और बहुआयामी है। एक ओर इसमें अद्वैत वेदांत की छाया दिखाई देती है, जहाँ आत्मा और परमात्मा का संबंध आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से स्थापित होता है; वहीं दूसरी ओर इसमें कर्मयोग का बल भी अत्यधिक है, जिसमें कर्तव्य-पालन, कर्म में निष्ठा और समर्पण के माध्यम से जीवन-सिद्धि का मार्ग बताया गया है। इसके अतिरिक्त, भक्तियोग की सहज भावधारा भी उनसे अलग नहीं होती—उनकी रचनाओं में ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम, समर्पण और श्रद्धा निरंतर प्रवाहित होती रहती है। इस प्रकार रामदास का भक्ति-दर्शन भारतीय आध्यात्मिक चिंतन की तीनों प्रधान धाराओं—

ज्ञान, भक्ति और कर्म—का समन्वय है। यही समन्वय उनकी भक्ति को विशेष बनाता है और दासबोध जैसे ग्रंथों को जीवनोपयोगी बनाता है।

समर्थ रामदास की भक्ति-भावना का एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू 'मन' का नियंत्रण है। वे मन को साधना का केंद्र मानते हैं और भक्ति का प्रारंभ भी मन की शुद्धि और नियमन से करते हैं। मनाचे श्लोक का मूल स्वर ही मन की चंचलता पर नियंत्रण और उसे सत्य, धर्म, नीति और भक्ति की ओर प्रवृत्त करना है। उनके लिए भक्ति कोई बाह्य अनुष्ठान नहीं, बल्कि एक आंतरिक अनुशासन है। इस अनुशासन के माध्यम से व्यक्ति आत्मबल, विवेक और स्थिरता प्राप्त करता है। आधुनिक मनोविज्ञान के संदर्भ में देखें तो 'मनाचे श्लोक' आत्म-नियमन, सकारात्मक चिंतन, आत्म-प्रेरणा और व्यवहारिक नैतिकता के अनेक सिद्धांतों से मेल खाते हैं। इस प्रकार रामदास की भक्ति आधुनिक मनोवैज्ञानिक विमर्श से भी अप्रासंगिक नहीं, बल्कि अनेक स्तरों पर उसके साथ संवाद करती है।

समर्थ रामदास के भक्ति-दर्शन में 'धर्मरक्षा' और 'कर्तव्यपालन' को भी उच्च स्थान प्राप्त है। वे रामराज्य को केवल आध्यात्मिक कल्पना नहीं मानते, बल्कि एक व्यावहारिक आदर्श के रूप में देखते हैं, जिसमें न्याय, नीति, अनुशासन, साहस और लोक कल्याण जैसे तत्व प्रमुख हैं। यही कारण है कि उन्होंने शिवाजी महाराज जैसे राष्ट्र निर्माताओं को न केवल प्रेरणा दी, बल्कि उनके राजनीतिक संघर्षों में नैतिक समर्थन भी प्रदान किया। इस दृष्टि से रामदास की भक्ति-भावना समाज और राष्ट्र की संरचना से जुड़ी हुई है। उनकी दृष्टि में भक्ति का अंतिम उद्देश्य केवल मोक्ष प्राप्ति नहीं, बल्कि धर्म, समाज और राष्ट्र के कल्याण की दिशा में सक्रिय होना भी है। रामदास का दार्शनिक व्यक्तित्व उनके ग्रंथों में स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है। दासबोध ज्ञान, विवेक, चरित्रनिर्माण और नीतिधर्म का प्रामाणिक ग्रंथ है। इसमें जीवन के विविध आयामों पर विशद विवेचन है—आध्यात्मिक साधना से लेकर राजनीति, समाज, व्यापार, नेतृत्व, मित्रता, वैराग्य, धर्म-अधर्म, और आत्म-सुरक्षा तक। यह विस्तार बताता है कि रामदास की भक्ति किसी संकीर्ण अवधारणा पर आधारित नहीं, बल्कि समग्र और सर्वांगीण जीवन-दर्शन है। मनाचे श्लोक व्यक्ति की आंतरिक यात्रा का मार्गदर्शन करते हैं; वहीं श्रीमारुति स्तोत्र, करुणाष्टक, सुंदर वचन आदि रचनाएँ भक्ति-भाव, श्रद्धा और भावनात्मक दृढ़ता को व्यक्त करती हैं। इस प्रकार उनकी रचनाएँ व्यक्ति के अंदर–बाहर दोनों आयामों को विकसित करने का काम करती हैं।

समर्थ रामदास की भक्ति का दार्शनिक स्वरूप आधुनिक संदर्भ में और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। आज का समाज भौतिक प्रगति के बावजूद मानसिक अशांति, नैतिक संकट, आचारहीनता और आत्म-नियंत्रण के अभाव से पीड़ित है। ऐसे समय में रामदास की भक्ति-भावना, जो मनोबल, आत्मानुशासन और कर्तव्य के पालन पर बल देती है, मार्गदर्शक के रूप में उभरती है। उनकी रामभक्ति में विद्यमान अनुशासन, परिश्रम और नीति-आधारित जीवन-दर्शन व्यक्ति को न केवल आध्यात्मिक दृष्टि देता है, बल्कि मानसिक दृढ़ता, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व का भी बोध कराता है। अंततः कहा जा सकता है कि समर्थ रामदास की भक्ति-भावना, रामभक्ति और उनके दार्शनिक चिंतन का स्वरूप अत्यंत व्यापक, गहरा और जीवनोपयोगी है। उनकी भक्ति एक ओर ईश्वर की ओर उन्मुख भक्ति है, तो दूसरी ओर मानव-जीवन को सम्यक् मार्ग पर ले जाने वाली

नीति और अनुशासन की शिक्षा भी है। उनकी रामभक्ति भाव, ज्ञान, कर्म, नीति और समाजधर्म का ऐसा समन्वय प्रस्तुत करती है, जो भारतीय दर्शन और भक्ति-परंपरा दोनों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। यह शोध इस बात की पड़ताल करता है कि रामदास की भक्ति-भावना किस प्रकार व्यक्तिगत आत्मिक उन्नति, सामाजिक संगठन और राष्ट्रचेतना का सूत्रपात करती है तथा आज के समय में नैतिक और व्यवहारिक जीवन के लिए नई दिशाएँ प्रदान करती है।

**शोध पद्धति-**

समर्थ रामदास की भक्ति-भावना और रामभक्ति के दार्शनिक स्वरूप के अध्ययन के लिए इस शोध में गुणात्मक (Qualitative) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धति को अपनाया गया है। शोध के प्रथम चरण में समर्थ रामदास के प्रमुख ग्रंथों—दासबोध, मनाचे श्लोक, करुणाष्टक, आरती संग्रह तथा अन्य स्तोत्र-साहित्य—का गहन पाठ (Close Reading) किया गया। इनके माध्यम से रामदास की भक्ति-दृष्टि, साधना-मूल्य, दार्शनिक आधार तथा आध्यात्मिक अवधारणाओं का तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक अध्ययन किया गया। साथ ही, उनके समकालीन भक्ति-आंदोलन, दासोपदेश परंपरा, एवं 17वीं शताब्दी के सामाजिक-धार्मिक संदर्भों को समझने के लिए ऐतिहासिक-विधि (Historical Method) का उपयोग किया गया। मूल ग्रंथों के साथ-साथ उपलब्ध टीकाओं, भाष्यों, संस्करणों तथा रामदासी परंपरा की व्याख्याओं का अध्ययन कर उनके विचारों की व्यापकता और प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया। शोध के द्वितीय चरण में समर्थ रामदास के साहित्य और भक्ति-दर्शनों पर उपलब्ध द्वितीयक स्रोतों—शोध ग्रंथ, शोध-लेख, प्रामाणिक इतिहास-ग्रंथ, मराठी एवं हिंदी के संत-साहित्य अध्ययन—का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया। विषय की स्पष्टता के लिए वर्णनात्मक (Descriptive), तुलनात्मक (Comparative) तथा hermeneutic textual analysis की तकनीकों का उपयोग किया गया, जिससे रामभक्ति की दार्शनिक परतों—निर्गुण-सगुण समन्वय, कर्म-योग, भक्ति-योग, निर्भयता-भाव, चारित्रिक निर्माण—को समझा जा सके। शोध प्रक्रिया में डेटा संग्रहण पुस्तकालयीय संसाधनों, डिजिटल आर्काइव, शोध डेटाबेस एवं प्रकाशित संस्करणों से किया गया। इस प्रकार यह शोध-पद्धति समर्थ रामदास की भक्ति-भावना को उसकी दार्शनिक जड़ों, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और सामाजिक प्रभावों सहित एक समग्र एवं वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करती है।

**समर्थ रामदास का जीवन और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि-**

समर्थ रामदास का जन्म 1608 ई. में महाराष्ट्र के जांब (जिलाः औरंगाबाद) में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनका प्रारंभिक नाम नारायण था। बाल्यकाल से ही उनमें तेजस्विता, जिज्ञासा और धार्मिक संस्कार विद्यमान थे। शिक्षा के दौरान उन्होंने वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण और नीति-शास्त्र का गहन अध्ययन किया। किशोरावस्था में ही उनका झुकाव आध्यात्मिकता, संयम और आत्मअनुशासन की ओर बढ़ने लगा। कहा जाता है कि विवाह-मंडप में ही उन्हें आत्मज्ञान का तीव्र आह्वान हुआ और वे गृहस्थ जीवन का त्याग कर तपस्या के पथ पर अग्रसर हुए। इस घटना ने उनके जीवन को दिशा दी और उन्होंने संन्यास ग्रहण कर अपने जीवन का लक्ष्य आत्मकल्याण तथा लोककल्याण स्पष्ट किया। संन्यास-धर्म ग्रहण करने के बाद रामदास ने

नासिक, पंचवटी, रामेश्वर, तिरुपति, हिमालय आदि तीर्थों की विस्तृत यात्रा की। इन यात्राओं के दौरान उन्होंने द्वैत–अद्वैत, भक्ति–ज्ञान, संयम–साधना और धर्म–नीति से संबंधित विभिन्न दर्शन परंपराओं को आत्मसात किया। अनेक वर्षों की तपस्या और ध्यान-योग ने उनकी आध्यात्मिक दृष्टि को प्रखर बनाया। कहते हैं कि पंचवटी में उन्हें 'राम-तत्त्व' का अद्भुत अनुभव प्राप्त हुआ और वहीं से उनके जीवन का मूल आध्यात्मिक स्वरूप विकसित हुआ। इस वैराग्यपूर्ण साधना ने उनके भीतर न केवल आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार किया, बल्कि व्यक्तिगत मुक्ति से आगे जाकर लोकमंगल की भावना को भी दृढ़ किया। इसी काल में 'मनाचे श्लोक' जैसे प्रेरक साहित्य की रचना का आरंभ हुआ।

समर्थ रामदास ने अपने आध्यात्मिक अनुभवों और जीवन-दर्शन को जनता तक पहुँचाने के लिए धर्मोपदेश, प्रवचन, संकीर्तन और संत-संवाद की परंपरा को विकसित किया। उन्होंने उपदेश को लोकभाषा मराठी में प्रस्तुत किया, जिससे सामान्य जन भी आत्मशक्ति, कर्तव्य, संयम और सत्कर्म की राह पर चल सके। 'दासबोध' जैसे ग्रंथों में उन्होंने जीवन के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक और व्यावहारिक पक्षों का विस्तृत विवेचन किया, जिसे आज भी मार्गदर्शन का विश्वसनीय स्रोत माना जाता है। उनके प्रवचनों में भक्ति के साथ-साथ वीरता, धर्म-रक्षा, जनकल्याण और सदाचार को केंद्रीय स्थान दिया गया। इस प्रकार उनके आध्यात्मिक अनुभव व्यवहार-धर्म से जुड़े हुए थे, न कि केवल रहस्यवाद तक सीमित। रामदास ने समाज को एक अनुशासित, नैतिक और धर्मनिष्ठ दिशा देने के लिए रामदासी संप्रदाय की स्थापना की। इस संप्रदाय का उद्देश्य केवल भक्ति-विस्तार नहीं, बल्कि चरित्र-निर्माण, राष्ट्र-जागरण, सेवा-भाव और शक्ति-उपासना था। उन्होंने हनुमान मंदिरों का व्यापक निर्माण कराया, क्योंकि वे हनुमान को शक्ति, निष्ठा, कर्तव्य और आत्मसंयम का आदर्श मानते थे। शिवाजी महाराज के राज्य-निर्माण के दौरान रामदास की शिक्षाओं ने राजनीतिक-सामाजिक चेतना को धार दी। उन्होंने युवाओं को हिम्मत, साहस, परोपकार और समाज-सेवा का संदेश दिया। इस प्रकार समाज सुधार, आत्मबल, नीति-धर्म और आध्यात्मिक शुचिता पर आधारित उनका कार्यक्षेत्र मराठी समाज में एक व्यापक परिवर्तन का आधार बना।

**रामदास की भक्ति-भावना-**

समर्थ रामदास की भक्ति-भावना का मूल आधार राम-तत्त्व है, जो उनके लिए केवल ईश्वर का नाम नहीं, बल्कि धर्म, कर्तव्य, नीति, साहस और आदर्श मनुष्यत्व का प्रतीक है। उनकी भक्ति वैयक्तिक भावनाओं या केवल भावुकता पर आधारित न होकर अनुशासित, संयमित और कर्तव्यपरायण जीवन-दृष्टि पर आधारित है। वे भक्ति को साधना, आत्म-शक्ति और चरित्र-निर्माण का मार्ग मानते हैं। रामदास की भक्ति में प्रार्थना, श्रद्धा और समर्पण तो है ही, साथ ही उसमें वीर-भाव, निर्भयता, आत्मबल और लोकमंगल का बोध भी प्रमुख रूप से उपस्थित है। उनकी भक्ति का स्वरूप कर्मयोग से गहराई से जुड़ा हुआ है। वे मानते हैं कि भक्त केवल ध्यान या तपस्या में नहीं, बल्कि समाज में सक्रिय रहकर धर्म की रक्षा और लोककल्याण के कार्यों द्वारा भी ईश्वर की सेवा कर सकता है। 'मनाचे श्लोक' और 'दासबोध' में भक्ति को मन की पवित्रता, साहस, विवेक, सदाचार और सत्कर्मों से जोड़ा गया है। रामदास भक्ति को व्यक्तिगत मोक्ष के साथ-साथ समाज सुधार और राष्ट्रचेतना

का माध्यम भी मानते हैं। इस प्रकार उनकी भक्ति-भावना भावनात्मक, दार्शनिक और व्यावहारिक—तीनों स्तरों पर संतुलित, प्रेरणादायी तथा गतिशील दिखाई देती है।

**रामभक्ति का दार्शनिक आधार-**

समर्थ रामदास की रामभक्ति का दार्शनिक आधार सगुण और निर्गुण दोनों रूपों के समन्वय पर आधारित है। वे राम को एक ओर परमात्मा का सगुण रूप मानते हैं—मर्यादा, नीति, धर्म, करुणा और आदर्श पुरुषार्थ का प्रतीक; वहीं दूसरी ओर राम को ज्ञान, आत्मशक्ति, विवेक और अद्वैत चेतना का निर्गुण स्वरूप भी स्वीकार करते हैं। इस प्रकार रामदास के विचार में राम-तत्त्व केवल देवता नहीं, बल्कि मनुष्य के आंतरिक विकास, नैतिक उत्थान और आध्यात्मिक साधना का मार्गदर्शक सिद्धांत है। उनके यहाँ रामभक्ति का आधार किसी चमत्कारवाद पर नहीं, बल्कि धैर्य, आत्मानुशासन, निष्ठा और चरित्रबल पर टिका हुआ है।

रामभक्ति के दार्शनिक स्वरूप में कर्मयोग और भक्ति-योग का अद्वितीय समन्वय दिखाई देता है। रामदास कहते हैं कि केवल उपासना, पूजा या जप ही भक्ति नहीं, बल्कि कर्तव्य का पालन भी भक्ति है। उनकी दृष्टि में रामभक्ति मनुष्य को आलस्य से निकालकर सक्रियता, साहस, सेवा, परोपकार और धर्मधर्मिता की ओर प्रेरित करती है। यह दृष्टिकोण गीता-प्रदत्त कर्मयोग की परंपरा से प्रभावित है, जहाँ भक्ति और कर्म एक-दूसरे के पूरक हैं। इसलिए रामदास की भक्ति स्थिर, कर्मप्रधान और लोकमंगल की भावनाओं से संपृक्त है। उनकी भक्ति में भावुकता नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण जीवन-दर्शन और मानसिक दृढ़ता प्रधान रूप से उपस्थित है। रामदास की रामभक्ति का दार्शनिक आधार आत्मशुद्धि और मनःसंस्कार की अवधारणा पर भी टिका है। 'मनाचे श्लोक' में वे मन को नियंत्रित करने की प्रक्रिया को भक्ति का अनिवार्य तत्व मानते हैं, क्योंकि मन की शुचिता ही सच्चे आध्यात्मिक अनुभव का द्वार है। उनका आग्रह है कि भक्ति केवल बाहरी प्रदर्शन नहीं, बल्कि भीतरी परिवर्तन है—विवेक जागरण, अहंकार-नाश, साहस-विकास और सत्य के प्रति प्रतिबद्धता। उनके यहाँ रामभक्ति का अर्थ है—मनुष्य को निर्भय, संयमी, परिश्रमी, धर्मनिष्ठ और कर्तव्यनिष्ठ बनाना। इस प्रकार रामदास की रामभक्ति एक संपूर्ण दार्शनिक प्रणाली प्रस्तुत करती है जो आध्यात्मिकता, नीतिशास्त्र, कर्मयोग और लोकधर्म को एक ही सूत्र में पिरोती है।

**दासबोध और मनाचे श्लोक का विश्लेषण-**

समर्थ रामदास मराठी संत-परंपरा के ऐसे दार्शनिक, समाजसुधारक और तपस्वी साधक हैं जिन्होंने भक्ति को केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित न रखकर उसे समाज-उन्नति, नैतिक निर्माण और चरित्रबल से जोड़ा। उनके दो महान ग्रंथ—'दासबोध' और 'मनाचे श्लोक'—इस दृष्टि के सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। ये ग्रंथ न केवल मराठी साहित्य की धरोहर हैं, बल्कि भारतीय भक्ति-दर्शन, नीति-चिंतन और आध्यात्मिक अनुशासन के अमूल्य दस्तावेज भी हैं। दोनों ग्रंथों का विश्लेषण समर्थ रामदास के विचारों की व्यापकता, गहराई और व्यावहारिकता को स्पष्ट करता है।

**1. दासबोध का स्वरूप और उद्देश्य-**

'दासबोध' समर्थ रामदास का सबसे महत्त्वपूर्ण और व्यापक ग्रंथ है। यह 20 दशक (अध्याय) और 207 समासों (उप-अध्यायों) में विभाजित है। यह ग्रंथ केवल आध्यात्मिक उपदेशों का संकलन नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन-दर्शन का व्यावहारिक मार्गदर्शक है। 'दासबोध' का लक्ष्य मनुष्य को ज्ञान, विवेक, साहस, नीति, आत्मशक्ति और लोकसेवा की ओर प्रेरित करना है। रामदास ने इस ग्रंथ को गुरु–शिष्य संवाद शैली में प्रस्तुत किया है, जिससे यह व्यवहारिक और आत्मीय दोनों बन जाता है। यह ग्रंथ जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श करता है—धर्म, अर्थ, नीति, नीति-शास्त्र, सदाचार, राजनीति, समाज, कर्तव्य, आध्यात्मिकता और लौकिक जीवन। 'दासबोध' का प्रमुख संदेश यह है कि मनुष्य को अपने जीवन का निर्माण स्वयं करना चाहिए। ईश्वर पर विश्वास रखते हुए भी रामदास कर्म, परिश्रम और आत्मबल को सर्वोपरि मानते हैं। वे किसी भी प्रकार की आलस्य, अज्ञानता, भय, मिथ्याचार, दम्भ और छल को भक्ति का विरोधी मानते हैं। इस प्रकार 'दासबोध' का उद्देश्य केवल मोक्ष-प्राप्ति नहीं, बल्कि कर्तव्य-परायण, निर्भय, विवेकशील, समाजोपयोगी और आत्मनिर्भर मनुष्य का निर्माण है।

**2. दासबोध का दार्शनिक और आध्यात्मिक दर्शन-**

'दासबोध' में रामदास कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग—तीनों मार्गों को समायोजित करते हैं। उनका दार्शनिक दृष्टिकोण व्यवहारवादी है। वे बताते हैं कि जीवन में सफलता और आध्यात्मिक उन्नति दोनों के लिए मजबूत मन, दृढ़ चरित्र और बुद्धि का जागरण आवश्यक है। रामदास अद्वैत का समर्थन करते हैं, परंतु वे भक्ति को भी उतना ही महत्त्व देते हैं। उनका मत है कि मनुष्य को भक्ति के साथ-साथ समाज और परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों को भी निभाना चाहिए। यह संत परंपरा में एक अत्यंत प्रगतिशील विचार है। दासबोध में प्रमुख दार्शनिक अवधारणाएँ हैं— मन पर नियंत्रण, सत्य और विवेक, धर्म और नीति का पालन, निर्भयता और साहस, समाजसेवा और लोकमंगल, आत्मबल और आत्मनिर्भरता। रामदास के अनुसार, भक्ति का उद्देश्य मनुष्य को कर्तव्य-निष्ठ और नैतिक बनाना है। ईश्वर-भक्ति तब ही सार्थक है जब वह मनुष्य को जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा दे।

**3. दासबोध: सामाजिक और नैतिक दृष्टि-**

समर्थ रामदास का समय राजनीतिक अस्थिरता, आंतरिक संघर्षों और सामाजिक अव्यवस्था का दौर था। 'दासबोध' इसी संदर्भ में सामाजिक अनुशासन और नैतिक जागृति का स्वर बनकर उभरता है। रामदास समाज में सदाचार, सत्य, कर्तव्य, परिश्रम और जनकल्याण को सर्वोपरि रखते हैं। वे जनता को नैतिक बल, आत्मविश्वास और संगठित शक्ति प्रदान करना चाहते थे। उनके उपदेशों में समाज-सुधारक दृष्टि स्पष्ट दिखाई देती है— व्यसन-त्याग, अनुशासन, चरित्र-निर्माण, श्रम का सम्मान, देश, समाज और धर्म की रक्षा। 'दासबोध' का यह सामाजिक स्वर शिवाजी महाराज जैसे नेतृत्व को भी प्रभावित करता है। इस तरह यह ग्रंथ समाज-निर्माण और राष्ट्रचेतना की धारा में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

**4. मनाचे श्लोक का स्वरूप और महत्व-**

'मनाचे श्लोक' रामदास का एक अत्यंत प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथ है, जिसमें 205 श्लोक शामिल हैं। यह ग्रंथ मूलतः मन को उपदेश देने का प्रयास है। रामदास मन को साधने को आध्यात्मिक साधना का प्रथम चरण मानते हैं।

'मनाचे श्लोक' का उद्देश्य है—

- मन को पवित्र और संयमित करना
- मन में उदारता, साहस और स्पष्टता जगाना
- नकारात्मक प्रवृत्तियों को दूर करना
- मनुष्य को सत्कर्म, परिश्रम और नैतिकता की ओर ले जाना

इन श्लोकों की भाषा सरल, लयात्मक और सहज है, जिससे ये जनमानस में अत्यंत लोकप्रिय हैं। रामदास बार-बार मन से कहते हैं— "हे मन, तू सदाचारी बन, सत्य पर टिक, साहस रख, विवेक को अपनाकर आगे बढ़।" इस प्रकार 'मनाचे श्लोक' आत्मा और मन दोनों के शोधन का सूत्र प्रस्तुत करता है।

**5. मनाचे श्लोक: मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक अर्थ-**

'मनाचे श्लोक' केवल नैतिक उपदेशों का ग्रंथ नहीं, बल्कि मनुष्य के आंतरिक जगत को समझने वाली एक गहरी मनोवैज्ञानिक रचना है। रामदास मन को न केवल मनोवैज्ञानिक शक्ति मानते हैं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति का केंद्र भी बताते हैं।

**श्लोकों में मिलने वाले मुख्य भाव—**

- मन का शोधन
- विचारों की शुद्धि
- भय से मुक्ति
- कर्म के प्रति निष्ठा
- लोभ, क्रोध, मोह और अहंकार पर नियंत्रण

रामदास कहते हैं कि मन नियंत्रित हो जाए तो जीवन स्वतः ही सुव्यवस्थित और शांत हो जाता है। नियंत्रणहीन मन मनुष्य को भ्रमित करता है, जबकि संयमित मन आध्यात्मिक अनुभव का मार्ग प्रशस्त करता है। दर्शन के स्तर पर, मनाचे श्लोक भक्ति, ज्ञान, नीति और मनोविज्ञान का सुंदर समन्वय है। यह व्यक्ति को निरंतर आत्मचिंतन और आत्मसुधार के लिए प्रेरित करता है।

**6. दासबोध और मनाचे श्लोक: तुलनात्मक अध्ययन-**

दोनों ग्रंथों के उद्देश्य और स्वभाव अलग होते हुए भी एक-दूसरे को पूरक हैं। दासबोध बाहरी जगत को संभालने का मार्ग है, जबकि मनाचे श्लोक भीतरी जगत को नियंत्रित करने का उपाय। दोनों मिलकर समर्थ रामदास की पूर्ण आध्यात्मिक-दार्शनिक दृष्टि को पूरा करते हैं। दासबोध और मनाचे श्लोक समर्थ रामदास की भक्ति, दर्शन और समाजदृष्टि की पराकाष्ठा हैं। 'दासबोध' मनुष्य को समाज, जीवन और कर्तव्य के प्रति जागरूक करता है, जबकि 'मनाचे श्लोक' उसके भीतर की शक्तियों को जाग्रत करने का मार्ग दिखाता है। दोनों ग्रंथ संयम, साहस, विवेक, सत्य, भक्ति, परिश्रम और लोकमंगल पर आधारित हैं। इन ग्रंथों को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि रामदास की भक्ति केवल ईश्वर-स्मरण नहीं, बल्कि आत्मनिर्भर, नैतिक और समाजोपयोगी जीवन की संरचना है। इस प्रकार, 'दासबोध' और 'मनाचे श्लोक' संत साहित्य में ऐसे स्तंभ हैं जो आज भी मनुष्य को आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक उत्थान की ओर प्रेरित करते हैं।

**समर्थ रामदास की रामभक्ति का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव-**

समर्थ रामदास की भक्ति-दृष्टि, जीवन-दर्शन और सामाजिक कार्यों ने महाराष्ट्र तथा व्यापक भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव डाला। उनका समय राजनीतिक अस्थिरता, मुगल अत्याचार, सामाजिक विभाजन और नैतिक संकटों का दौर था। ऐसे परिवेश में रामदास ने भक्ति को केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना का मार्ग नहीं माना, बल्कि समाज पुनर्निर्माण का सशक्त साधन बनाया। उनकी भक्ति में निहित साहस, आत्मसंयम, कर्तव्य, परोपकार और राष्ट्रचेतना के तत्व समाज पर दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ते हैं। समाज में नैतिक शिथिलता और अव्यवस्था को देखते हुए रामदास ने 'दासबोध' और 'मनाचे श्लोक' के माध्यम से चरित्र-निर्माण की एक नई धारा प्रवाहित की। उन्होंने साधारण जनमानस को सत्य, सदाचार, परिश्रम और संयम अपनाने के लिए प्रेरित किया। उनके उपदेशों में जीवन का दर्शन अत्यंत व्यावहारिक था—व्यसनमुक्ति, श्रम का सम्मान, समय का मूल्य, अनुशासन और आत्मबल का विकास। इससे मराठी समाज में नैतिक चेतना का एक व्यापक वातावरण तैयार हुआ। विशेष रूप से युवाओं के लिए उनके संदेश—'धैर्य रख, मन को काबू में रख, सत्य पर टिके रह'—ने मानसिक शक्ति और आत्मविश्वास को मजबूती प्रदान की। रामदास के विचारों ने सामाजिक एकता और संगठन को भी बढ़ावा दिया। उन्होंने समाज को जाति-भेद, ऊँच-नीच और आडंबरों से मुक्त करने का संदेश दिया। हनुमान को शक्ति और अनुशासन का प्रतीक मानते हुए उन्होंने महाराष्ट्र में अनेक हनुमान मंदिर स्थापित किए। इन मंदिरों को उन्होंने केवल पूजा-स्थल नहीं, बल्कि सामाजिक संगठन, शिक्षा, व्यायाम और सामूहिक प्रशिक्षण के केंद्र के रूप में विकसित किया। इससे समाज में शारीरिक और मानसिक क्षमता का विकास हुआ तथा लोगों में सुरक्षा, निडरता और आत्मनिर्भरता की भावना बढ़ी।

रामदास की विचार-धारा ने महाराष्ट्र के राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन पर भी गहरा प्रभाव डाला। शिवाजी महाराज को दिए गए उनके उपदेशों ने राज्य-निर्माण के आदर्शों को दिशा दी। रामदास ने शिवाजी को धर्मसंरक्षण, प्रजा-पालन और न्याय की नीति पर दृढ़ रहने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार उनकी भक्ति में निहित वीर-भाव और राष्ट्रचेतना मराठा राज्य के उभार में एक आध्यात्मिक बल बनकर उभरी।

समकालीन समाज में भी रामदासी संप्रदाय ने शिक्षा, कर्तव्य, अनुशासन और सेवा-भाव की परंपराओं को मजबूत किया। सांस्कृतिक स्तर पर रामदास की रचनाओं—'दासबोध', 'मनाचे श्लोक', आरतियाँ, स्तोत्र—ने जनजीवन में आध्यात्मिकता, भाषा, संगीत और साहित्य की एक नई ऊर्जा भरी। उनकी कृतियों ने मराठी भाषा को जनसाधारण की बोली में एक सशक्त अभिव्यक्ति दी। उनकी शैली सरल, प्रेरणादायक और लयात्मक थी, जिसने भक्ति-साहित्य में एक नई परंपरा स्थापित की। लोकनृत्यों, कीर्तन परंपरा, प्रवचन शैली और भक्ति-संगीत पर उनका स्पष्ट प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। अंततः, समर्थ रामदास की भक्ति-दृष्टि ने समाज में एक पूर्ण परिवर्तनकारी चेतना उत्पन्न की—जो धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक सभी स्तरों पर दिखाई देती है। उनकी भक्ति का मुख्य संदेश यह था कि भक्त वही है जो समाज, राष्ट्र और धर्म के लिए समर्पित होकर कर्म करता है। इसलिए रामदास का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव आज भी प्रेरणास्रोत है और आधुनिक संदर्भों में भी अत्यंत प्रासंगिक बना हुआ है।

**निष्कर्ष-**

समर्थ रामदास की आध्यात्मिक साधना, रामभक्ति की दार्शनिक व्याख्या, समाज-सुधार की दृष्टि और राष्ट्र-निर्माण का व्यापक चिंतन—इन सभी का समन्वित रूप उनके विचार-संसार को अत्यंत विशिष्ट बनाता है। वे ऐसे संत, दार्शनिक और कर्मयोगी थे, जिन्होंने भक्ति को केवल ईश्वर-आराधना तक सीमित न रखते हुए उसे जीवन-निर्माण, चरित्र-संस्कार और लोकमंगल का माध्यम बनाया। रामदास की भक्ति-भावना वैयक्तिक मुक्ति से अधिक सामूहिक चेतना को जागृत करती है। उनके अनुसार राम केवल उपासना के देव नहीं, बल्कि मर्यादा, नीति, साहस, संयम और शक्ति के प्रतीक हैं, जिन्हें जीवन में धारण करके मनुष्य समाज और राष्ट्र—दोनों को दिशा दे सकता है। दासबोध और मनाचे श्लोक जैसे ग्रंथों में उन्होंने भक्ति और ज्ञान का अद्वैत प्रस्तुत किया, जहाँ आत्मानुशासन, विवेक, सत्संग, नीतिपाठ, भय-निवारण और कर्तव्य-पालन को आध्यात्मिक उन्नति का आधार माना गया है। ये ग्रंथ जनसाधारण की भाषा और शैली में रचित हैं, इसलिए इनका प्रभाव महाराष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन, लोकधर्म, संत-परंपरा और राष्ट्रीय चेतना पर अत्यंत गहरा पड़ा। शिवाजी और स्वराज्य-आंदोलन के संदर्भ में रामदास का मार्गदर्शन यह स्पष्ट करता है कि उनकी भक्ति–दृष्टि सामाजिक और राजनीतिक जागरण से पृथक नहीं थी, बल्कि उसका आधार ही आत्मशक्ति और समाज-निर्माण था। इस प्रकार समर्थ रामदास का साहित्य और चिंतन भारतीय भक्तिधारा में एक अद्वितीय सेतु का कार्य करता है—जहाँ अध्यात्म कर्मयोग से जुड़ता है, भक्ति विवेक से समर्थ होती है, और धर्म लोककल्याण की दिशा में अग्रसर होता है। उनके विचार आज भी आध्यात्मिक अनुशासन, नैतिक नेतृत्व, राष्ट्रचेतना और मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए प्रेरणास्रोत बने हुए हैं।

**संदर्भ-सूची-**

1. बेन्द्रे, एस. (2010). *समर्थ रामदास: जीवन और उपदेश*. पुणे: कॉन्टिनेंटल प्रकाशन.
2. देशपांडे, एम. (2008). *समर्थ रामदास का दर्शन*. मुंबई: पॉपुलर प्रकाशन.

3. गोक्हले, एस. (2015). *महाराष्ट्र का भक्तिकाल: सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य*. पुणे: वरदा प्रकाशन.
4. जोशी, आर. (2002). *समर्थ रामदास: आध्यात्मिक दृष्टि और सामाजिक चिंतन*. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
5. कदम, एस. (2011). *दासबोध: पाठ-विश्लेषण और व्याख्यात्मक अध्ययन*. पुणे: महाराष्ट्र ग्रंथोत्तेजक संस्था.
6. कुलकर्णी, ए. (1999). *मराठी संत-साहित्य: अध्यात्म, समाज और सुधार*. मुंबई: डायमंड पब्लिकेशंस.
7. लाल, बी. (संपा.). (2017). *मध्यकालीन भारतीय भक्ति साहित्य: आलोचनात्मक निबंध*. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी.
8. ओक, वी. (2003). *रामदासी परंपरा और उसका सांस्कृतिक प्रभाव*. पुणे: समर्थ प्रकाशन.
9. पालंदे, वी. (1989). *समर्थ रामदास और मराठा आंदोलन*. मुंबई: पॉपुलर प्रकाशन.
10. पाठक, एस. (2012). *भक्ति, शक्ति और समाज: समर्थ रामदास पर अध्ययन*. दिल्ली: आनंदिका पब्लिकेशंस.
11. रणाडे, आर. डी. (1983). *महाराष्ट्र का अध्यात्मवाद: वारकरी और रामदासी परंपरा*. बॉम्बे: बॉम्बे विश्वविद्यालय प्रकाशन.
12. साने, पी. (2005). *मराठी संत-साहित्य: परंपरा और समीक्षा*. पुणे: मराठी साहित्य परिषद.
13. शर्मा, टी. (2016). *मध्यकालीन भारत में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद*. जयपुर: रावत पब्लिकेशंस.
14. ठाकुर, बी. (2020). *मनाचे श्लोक: नैतिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ*. दिल्ली: आदित्य प्रकाशन.
15. वर्मा, के. (2014). *रामदासी संप्रदाय और भारतीय संस्कृति में उसका योगदान*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.

***Manuscript Timeline***

***Submitted :*** *July 12, 2025* ***Accepted :*** *July 30, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# हाड़ौती में मंदिर-कला निर्माण शैली के सिद्धांत

**लोकेश गुंजल**[1]

**डॉ. शिव कुमार मिश्रा**[2]

**शोध सारांश**

***हा****ड़ौती क्षेत्र, जिसमें बूंदी, कोटा, झालावाड़ तथा बारां शामिल हैं राजस्थान की मंदिर स्थापत्य परंपरा का एक विशिष्ट और समृद्ध भू-भाग है। यहाँ के मंदिरों में कला, शिल्प, प्रतीकवाद, संरचनात्मक तकनीक तथा स्थानीय सांस्कृतिक चेतना का अद्वितीय संगम दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य हाड़ौती में विकसित मंदिर कला एवं निर्माण शैली के सिद्धांतों का गहन विश्लेषण करना है, ताकि यह समझा जा सके कि किन सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने इस स्थापत्य परंपरा को आकार दिया। शोध में प्राचीन, मध्यकालीन और उत्तर–मध्यकालीन कालखंडों में निर्मित मंदिरों की स्थापत्य विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। गर्भगृह, मंडप, शिखर, अंर्तनाल, गवाक्ष, आमलक, कीर्तिमुख, अलंकरण, मूर्तिकला तथा उत्कीर्णन की शैलीगत विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए यह रेखांकित किया गया है कि हाड़ौती के शिल्पी किस प्रकार उत्तर भारतीय नागर शैली के अंतर्गत अपनी स्थानीय विशेषताओं जैसे पीले बलुआ-पत्थर का प्रयोग, सरोवर आधारित मंदिर-योजना तथा सूक्ष्म कारीगरी को विकसित करते हैं। राजपूत–मुगल संपर्क के प्रभाव, स्थानीय राजवंशों के संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों, लोकविश्वासों तथा धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन ने यहाँ की कला-दृष्टि को गहराई से प्रभावित किया। शोध में मंदिरों की सांस्कृतिक-समाजशास्त्रीय भूमिका जैसे सामाजिक संगठन, उत्सव-परंपरा, सामूहिकता, कला-शिक्षा एवं स्मृति-निर्माण का भी विस्तृत अध्ययन किया गया है। निष्कर्षतः, हाड़ौती की मंदिर-निर्माण परंपरा सांस्कृतिक निरंतरता एवं क्षेत्रीय विविधता का उत्कृष्ट प्रमाण है, जो उत्तर भारतीय मंदिर कला के व्यापक परिदृश्य को समृद्ध करती है। यह शोध न केवल स्थापत्य कला के इतिहास को समझने में सहायक है, बल्कि क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान को भी पुनर्परिभाषित करता है।*

***बीज शब्द (Keywords)*** *: हाड़ौती, मंदिर स्थापत्य, नागर शैली, शिखर निर्माण, गर्भगृह, मंडप योजना, आमलक, गवाक्ष, कीर्तिमुख, उत्कीर्णन कला, त्रिभुजाकार शिखर, राजपूत–मुगल प्रभाव, शिल्प-परंपरा, बलुआ-पत्थर, कला सिद्धांत, स्थापत्य तकनीक, मूर्तिकला, प्रादेशिक शैली*

[1] शोधार्थी, इतिहास विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा. मोबाइल : 9001310000

[2] प्रोफेसर, इतिहास, इग्नू, दिल्ली. ई-मेल. - shivkumarmishra@ignou.ac.in

**प्रस्तावना-**

भारतीय उपमहाद्वीप में मंदिर स्थापत्य एक जीवंत सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में विकसित हुआ है, जिसमें धर्म, दर्शन, कला, शिल्प, तकनीक और सामाजिक संरचनाएँ बहुआयामी रूप से अंतर्निहित हैं। भारत का प्रत्येक भू-भाग अपने ऐतिहासिक अनुभवों, प्राकृतिक संसाधनों, सामुदायिक विश्वासों और राजनीतिक-सांस्कृतिक विकासक्रम के आधार पर अपनी अलग स्थापत्य पहचान निर्मित करता है। राजस्थान का हाड़ौती क्षेत्र—जिसमें कोटा, बूंदी, बारां और झालावाड़ जनपद सम्मिलित हैं—ऐसी ही एक विशिष्ट सांस्कृतिक भूमि है, जिसकी मंदिर कला और निर्माण शैली न केवल स्थानीय सौंदर्यबोध का प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि भारतीय मंदिर स्थापत्य की विविधता, निरंतरता और क्षेत्रीय विशिष्टताओं को भी विस्तार देती है।

हाड़ौती अपनी भौगोलिक बनावट, जलस्रोतों की प्रचुरता, वनसमृद्धि तथा पीले-भूरे बलुआ-पत्थर जैसी उपलब्ध निर्माण सामग्री के कारण निर्माण-परंपराओं का एक अनूठा केंद्र रहा है। यह क्षेत्र मालवा तथा मेवाड़ के मध्य एक सांस्कृतिक संगम-स्थल के रूप में भी उभरता है, जहाँ विभिन्न कला-प्रवाहों का मिलन हुआ। प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल और उत्तर–मध्यकाल तक इस क्षेत्र में अनेक राजवंशों—जैसे हाड़ा राजपूतों, परमारों, चौहानों और बाद में मुगल शासन के अप्रत्यक्ष प्रभाव—ने मंदिर निर्माण को संरक्षण दिया। इससे यहाँ की स्थापत्य शैली में एक ओर तो परंपरागत नागर शैली की निरंतरता दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर स्थानीय शिल्पियों की सृजनात्मकता और प्रयोगधर्मिता भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। भारतीय मंदिर परंपरा का मूल उद्देश्य केवल पूजा-अर्चना का स्थान निर्मित करना नहीं रहा, बल्कि यह एक सांस्कृतिक केंद्र, सामाजिक संवाद, शिक्षा, कलाओं के संरक्षण तथा सामूहिक चेतना के निर्माण का भी प्रमुख स्थल रहा है। हाड़ौती के मंदिर इसी परिप्रेक्ष्य में देखे जाएँ तो वे केवल धार्मिक संरचनाएँ नहीं, बल्कि बहुस्तरीय सांस्कृतिक दस्तावेज प्रतीत होते हैं। इन मंदिरों में गर्भगृह, मंडप, शिखर, आमलक, गवाक्ष, कीर्तिमुख, जंघा, शिल्प-बन्ध, देव-प्रतिमाएँ तथा विविध अलंकरण—सभी एक सुव्यवस्थित स्थापत्य-तत्वों का समूह प्रस्तुत करते हैं, जो इस क्षेत्र की कला-दृष्टि, सौंदर्यशास्त्र और धार्मिक मानस को रेखांकित करते हैं।

हाड़ौती क्षेत्र में नागर शैली का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है, जिसमें शिखर का ऊर्ध्वाभिमुख आरोह, त्रिरथ एवं पंचरथ योजना, ललाट-बिम्बों की सजावट और जटिल पत्थर-कारीगरी प्रमुख हैं। यहाँ की कारीगरी में सूक्ष्मता, गहराई और प्राकृतिक आकृतियों—जैसे बेल-बूटे, पुष्प-लताएँ, पशु-आकृतियाँ, मिथकों और स्थानीय लोक कथाओं के दृश्य—का अत्यंत कलात्मक उपयोग मिलता है। यह स्थानीय कलाकारों की दक्षता, सांस्कृतिक ज्ञान और धार्मिक प्रतीकवाद की समझ का प्रमाण है। इसके अतिरिक्त, हाड़ौती के मंदिरों में जल स्रोतों के समीप निर्माण की परंपरा भी उल्लेखनीय है। अनेक मंदिर सरोवरों, बावड़ियों या जलाशयों के किनारे बनाए गए हैं, जिससे वे केवल स्थापत्य कृतियाँ ही नहीं, बल्कि पर्यावरणीय दृष्टि से भी बुद्धिमत्तापूर्ण और समन्वित संरचनाएँ बन जाते हैं। जल–मंदिर–वनस्पति की यह त्रयी हाड़ौती के मंदिरों की पहचान और जीवन-चक्र का अनिवार्य अंग रही है। यह विशेषता न केवल वास्तुशास्त्रीय सिद्धांतों से प्रेरित है, बल्कि स्थानीय भौगोलिक आवश्यकताओं एवं सांस्कृतिक धारणाओं से भी जुड़ी है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य हाड़ौती क्षेत्र की इसी बहुआयामी मंदिर-निर्माण परंपरा का गहन अध्ययन प्रस्तुत करना है। यह अध्ययन केवल स्थापत्य रूपरेखा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भी समझने का प्रयास करता है कि इस क्षेत्र की कला-प्रवृत्तियों को किन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कारकों ने प्रभावित किया। उदाहरण के लिए, 16वीं से 18वीं शताब्दी के बीच राजपूत–मुगल संपर्क ने स्थापत्य निर्माण में कुछ नई तकनीकों और अलंकरणों को जन्म दिया। इससे शिल्प में अधिक नक्काशी, जाली-कार्य, मेहराबीय प्रभाव, तथा परंपरागत नागर शैली में कुछ संयोजित परिवर्तन दिखाई देते हैं। इसके विपरीत प्राचीन और मध्यकालीन मंदिरों में अपेक्षाकृत सरल लेकिन अत्यधिक सांकेतिक शिल्प-शैली का विकास हुआ, जो धर्म, प्रकृति और समाज के बीच संतुलन को व्यक्त करती है। इसी प्रकार, उत्तर–मध्यकाल और औपनिवेशिक काल में मंदिर निर्माण की गति अवश्य धीमी पड़ी, परंतु संरक्षण और पुनरुद्धार कार्यों ने इस परंपरा को पुनर्जीवित किया।

हाड़ौती के मंदिरों का अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह क्षेत्र राजस्थान के उन हिस्सों में आता है जहाँ कला-परंपराओं पर मेवाड़, मारवाड़ और मालवा तीनों का सांस्कृतिक प्रभाव एक साथ दिखाई देता है। ये प्रभाव स्थानीय शिल्प-कौशल से मिलकर एक विशिष्ट हाड़ौती शैली का निर्माण करते हैं, जिसे भारतीय मंदिर कला के सामान्य प्रतिमानों के साथ-साथ क्षेत्रीय विशिष्टताओं के रूप में देखा जा सकता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में मंदिर स्थापत्य की मूल संरचना—गर्भगृह, मंडप, शिखर, अंर्तनाल आदि—का विश्लेषण करने के साथ-साथ शिल्प–अलंकरण, मूर्तिकला, प्रतीकवाद, वास्तु-सिद्धांतों, निर्माण-तकनीक, प्रयुक्त सामग्री और सौंदर्यशास्त्रीय तत्त्वों का भी विस्तार से अध्ययन किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हाड़ौती की मंदिर-निर्माण शैली केवल "नागर शैली का एक स्थानीय संस्करण" नहीं है, बल्कि यह अपने भीतर विकास की एक स्वतंत्र और समृद्ध परंपरा को समेटे हुए है। इस शोध का उद्देश्य हाड़ौती की मंदिर कला को भारतीय स्थापत्य इतिहास की मुख्यधारा में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करना है। यह अध्ययन न केवल कला और स्थापत्य के विद्यार्थियों एवं शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी है, बल्कि उन सभी के लिए भी महत्त्वपूर्ण है जो सांस्कृतिक-सामाजिक अध्ययनों, इतिहास-लेखन, क्षेत्रीय पहचान और विरासत संरक्षण में रुचि रखते हैं। हाड़ौती के मंदिर भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण भाग हैं, और इनका अध्ययन हमारे लिए इतिहास, कला और समाज के मध्य गहरे संबंधों को समझने का अवसर प्रदान करता है।

**हाड़ौती की प्राचीन व प्रारम्भिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-**

हाड़ौती क्षेत्र—जिसमें वर्तमान कोटा, बूंदी, बारां और झालावाड़ जिलों का भूभाग सम्मिलित है—अत्यंत प्राचीन सभ्यताओं एवं सांस्कृतिक प्रवाहों का केंद्र रहा है। पुरातात्त्विक साक्ष्य बताते हैं कि यह क्षेत्र सभ्यता के प्रारम्भिक विकासकाल से ही मानव बस्तियों से युक्त था। चम्बल, परवन और कालीसिंध नदियाँ इस भूभाग को सिंचित करती रही हैं, जिसने कृषि, व्यापार और बसावट के प्रारम्भिक रूपों को संभव बनाया। मालवा और मेवाड़ के संगम-स्थल के रूप में यह क्षेत्र प्राचीन वाणिज्य मार्गों पर स्थित था, जिसके कारण यहाँ सांस्कृतिक आदान–प्रदान तीव्र रहा। मौर्य, शक, कुशाण, गुप्त और प्रतिहार जैसे साम्राज्यों के साथ इस क्षेत्र का परोक्ष संपर्क रहा, जिसने सभ्यता, कला और स्थापत्य के विकास की मजबूत नींव रखी।

**हाड़ौती का मध्यकालीन राजनीतिक-सांस्कृतिक विकास-**

मध्यकाल में हाड़ौती हाड़ा चौहानों की सत्ता का केंद्र बना, जिन्होंने बूंदी और कोटा रियासतों की स्थापना कर क्षेत्र को राजनीतिक स्थिरता प्रदान की। हाड़ा शासकों की कला-संरक्षण नीति के कारण यहाँ किलों, प्रासादों और विशेष रूप से मंदिर स्थापत्य का उल्लेखनीय विकास हुआ। यद्यपि इस काल में इस्लामी शासन का प्रसार उत्तर भारत में व्यापक था, परंतु हाड़ौती ने अपनी सांस्कृतिक पहचान और धार्मिक परंपराएँ सुरक्षित रखीं। राजपूत–मुगल संबंधों के सौहार्दपूर्ण चरणों में स्थापत्य में कुछ सौंदर्यगत नई प्रवृत्तियाँ दिखाई देने लगीं, जैसे जाली-कार्य, मेहराबी प्रभाव, तथा भित्तिचित्रों में रंग संयोजन की नवीनता। स्थानीय शिल्पियों ने इन प्रभावों को नागर परंपरा के साथ संतुलित किया, जिससे एक अनूठी मिश्रित शैली का विकास हुआ।

**हाड़ौती की क्षेत्रीय संस्कृति, लोक-परंपराएँ और कलात्मक प्रवृत्तियाँ-**

हाड़ौती की सांस्कृतिक पहचान लोकगीतों, लोकनृत्यों, वेशभूषा और धार्मिक परंपराओं से निर्मित होती है। यहाँ के लोकविश्वास, पर्व-त्योहार, व्रत-कथाएँ और भक्ति परंपराएँ आज भी सामाजिक जीवन का आधार हैं। विशेषतः शिव, विष्णु और देवी उपासना के रूपों ने मंदिर निर्माण और मूर्तिकला की विषय-वस्तु को दिशा दी। कलात्मक दृष्टि से यह क्षेत्र सूक्ष्म नक्काशी, वास्तुशास्त्र के अनुपालन और प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों के लिए प्रसिद्ध रहा। बलुआ-पत्थर की उपलब्धता ने यहाँ की शिल्प-परंपरा को विशेष रूप से समृद्ध किया। मंदिरों में बेल-बूटों, पशु-आकृतियों, यक्ष-यक्षिणियों तथा मिथकीय दृश्यों का प्रयोग न केवल सजावट, बल्कि सांस्कृतिक संदेशों का भी वाहक है।

**हाड़ौती का आधुनिक काल और सांस्कृतिक निरंतरता-**

औपनिवेशिक काल में यद्यपि मंदिर-निर्माण की गति मंद पड़ी, परन्तु हाड़ौती की धार्मिक-सांस्कृतिक निरंतरता बाधित नहीं हुई। 19वीं–20वीं शताब्दी में कुछ प्रमुख मंदिरों के संरक्षण, पुनरुद्धार और पुनर्निर्माण का कार्य स्थानीय समाज, दानियों और रियासतों द्वारा पुनः आरम्भ हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् इस क्षेत्र के मंदिर न केवल धार्मिक केंद्र रहे, बल्कि सांस्कृतिक पर्यटन, कला-अध्ययन और विरासत संरक्षण के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण बन गए। वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभावों के बावजूद यहाँ की लोक-संस्कृति और परंपरागत स्थापत्य तकनीकों ने अपनी विशिष्टता बनाए रखी। आज हाड़ौती की मंदिर कला भारतीय सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो अतीत की जड़ों, वर्तमान की चेतना और भविष्य की संभावनाओं को एक साथ धारण किए हुए है।

**हाड़ौती में मंदिर निर्माण की परंपरा : विकास-क्रम-**

हाड़ौती क्षेत्र में मंदिर निर्माण की परंपरा प्राचीन काल से ही निरंतर विकसित होती रही है। इस क्षेत्र की भौगोलिक संरचना, चम्बल-परवन-कालीसिंध जैसी नदी घाटियाँ, बलुआ-पत्थर की प्रचुरता और सांस्कृतिक विविधता ने मंदिर स्थापत्य को विशेष रूप से समृद्ध किया। यहाँ के मंदिर केवल पूजा-स्थल नहीं रहे, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के केंद्र के रूप में भी विकसित हुए। हाड़ौती के मंदिर

निर्मित हुए तो नागर शैली की व्यापक धारा से, परंतु शिल्प-कौशल, अलंकरणों, योजना-बद्धता और शैलीगत प्रयोगों ने इन्हें विशिष्ट स्थानीय स्वरूप प्रदान किया।

**प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकाल : निर्मित परंपराओं का आधार-**

प्राचीन काल में इस क्षेत्र के मंदिर अपेक्षाकृत सरल संरचनाओं वाले थे। पुरातात्त्विक साक्ष्य संकेत करते हैं कि 6वीं–9वीं शताब्दी के बीच हाड़ौती में मंदिर निर्माण का प्रारम्भिक विस्तार हुआ, जिसमें स्थानीय कारीगरों ने नागर शैली की मूल योजना—गर्भगृह, मंडप और शिखर—को अपनाया। इन मंदिरों में पत्थर-कटाई की तकनीक अभी आरम्भिक अवस्था में थी, इसलिए संरचनाएँ सरल परंतु प्रतीकात्मक थीं। जांगिड़, सोमपुरा और स्थानीय कारीगरों ने धीरे-धीरे नक्काशी की तकनीकों को विकसित किया। 8वीं–10वीं शताब्दी में देव-प्रतिमाओं के उभार, जंघा पर ललाट-बिम्बों का प्रयोग और आधारभाग पर अलंकरणों का क्रमशः विस्तार हुआ।

**मध्यकाल : हाड़ा शासकों का संरक्षण और स्थापत्य का उत्कर्ष-**

11वीं–15वीं शताब्दी के दौरान राजस्थान के अन्य क्षेत्रों की तरह हाड़ौती में भी मंदिर निर्माण ने गति पकड़ी। परमारों और चौहानों के शासनकाल में कई महत्वपूर्ण मंदिरों का निर्माण हुआ। इस काल में मंदिरों की योजना अधिक जटिल हुई—गर्भगृह के आगे अन्तराल, साधारण मंडप के स्थान पर स्तंभयुक्त मंडप, तथा कभी-कभी सभामंडप और नृत्यमंडप का विन्यास देखा जाता है। 15वीं शताब्दी के बाद, विशेषकर हाड़ा चौहानों की सत्ता स्थापित होने के बाद, मंदिर निर्माण को नए आयाम मिले। हाड़ा राजपूतों ने न केवल प्रशासनिक संरचनाओं का विस्तार किया, बल्कि धार्मिक स्थापत्य को भी संरक्षण दिया। सूक्ष्म नक्काशी, प्रतिमाओं के आयामों का परिष्कार, तथा शिखर-रचना की जटिलता इसी काल की देन है।

**16वीं–18वीं शताब्दी: राजपूत–मुगल संपर्क और मिश्रित शैली का विकास-**

मध्यकाल के उत्तरार्ध में मुगल सत्ता के साथ राजपूत राज्यों के संबंधों के परिणामस्वरूप स्थापत्य कला में नई संवेदनाएँ आईं। बूंदी और कोटा के महलों में जो भित्तिचित्र परंपरा, जाली-कार्य और मेहराबी संरचनाएँ परिलक्षित होती हैं, उनका प्रभाव कुछ हद तक मंदिर निर्माण पर भी पड़ा। हालाँकि मंदिरों में मूल रूप से नागर शैली ही कायम रही, परंतु अलंकरणों में सूक्ष्मता, स्तंभों की नक्काशी में पेच, तथा गर्भगृह के द्वार-लLintels पर चित्रांकन में नई प्रवृत्तियाँ उभरने लगीं। इस काल में मंदिर अधिक ऊँचे, विस्तृत और बहु-अध्यायी संरचनाओं में विकसित हुए। अध्यात्म और भक्ति आंदोलन ने भी इस दौर में मंदिर निर्माण को प्रेरणा दी, जिसके कारण विष्णु, कृष्ण और शिव उपासना से जुड़े मंदिर बड़ी संख्या में निर्मित हुए।

**19वीं–20वीं शताब्दी: पुनरुद्धार, संरक्षण और आधुनिक दृष्टिकोण-**

औपनिवेशिक शासन के दौरान यद्यपि नए मंदिर निर्माण में कमी आई, परंतु पुराने मंदिरों के संरक्षण का कार्य स्थानीय समाज और राजपरिवारों द्वारा जारी रहा। इस काल में कई मंदिरों का पुनरुद्धार हुआ—कभी संरचनात्मक रूप से, तो कभी प्रतीकात्मक रूप से। स्वतंत्रता के बाद, पुरातत्व विभाग और राज्य सरकारों ने

हाड़ौती क्षेत्र के मंदिरों को संरक्षित धरोहर के रूप में मान्यता दी। कोटा और बूंदी में कई मंदिर पर्यटन के प्रमुख केंद्र बने, जिसके कारण इनका संरक्षण, पुनर्स्थापन और दस्तावेजीकरण और अधिक संगठित हुआ।

**समकालीन परिप्रेक्ष्य : परंपरा और आधुनिकता का सह-अस्तित्व-**

आज हाड़ौती में मंदिर निर्माण सीमित है, परंतु उनकी सांस्कृतिक भूमिका और सामाजिक महत्त्व अभी भी गहरा है। स्थानीय समाज मंदिरों को केवल धार्मिक केंद्र नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक एकता के प्रतीक के रूप में देखता है। आधुनिक तकनीकों के उपयोग के बावजूद परंपरागत स्थापत्य-सिद्धांतों—विशेषतः दिशा-निर्धारण, ऊर्ध्वमुखी शिखर-विन्यास, तथा मूर्ति-विधान—का पालन अभी भी अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है। पर्यटन, सांस्कृतिक अध्ययन और विरासत संरक्षण के बढ़ते प्रयासों ने हाड़ौती की मंदिर परंपरा को एक नए जीवन चक्र में प्रवेश कराया है, जहाँ इतिहास, परंपरा और आधुनिक दृष्टि एक साथ विकसित हो रही है।

**हाड़ौती क्षेत्र में प्रयुक्त प्रमुख निर्माण सामग्री एवं शिल्प-परंपराएँ-**

हाड़ौती क्षेत्र की मंदिर स्थापत्य परंपरा अपने विशिष्ट निर्माण-सामग्रियों, स्थानीय भूगोल और शिल्प-कौशल की अद्वितीयता के कारण व्यापक रूप से समृद्ध मानी जाती है। यहाँ प्रयुक्त पत्थर, लकड़ी, धातु और चूना-मिश्रण केवल निर्माण सामग्री भर नहीं रहे, बल्कि इन्होंने मंदिरों के सौंदर्यशास्त्र, स्थायित्व और रचनात्मकता के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हाड़ौती की शिल्प-परंपराएँ स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित तकनीकों और धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यताओं से जुड़ी हुई हैं, जिससे मंदिर निर्माण यहाँ केवल एक वास्तु–प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक कर्मकांड बन जाता है।

**बलुआ-पत्थर : हाड़ौती स्थापत्य की मूल धुरी-**

हाड़ौती क्षेत्र विशेष रूप से अपने पीले-भूरे बलुआ-पत्थर के लिए प्रसिद्ध है, जो यहाँ की पर्वतीय संरचनाओं और नदी घाटियों में स्वाभाविक रूप से उपलब्ध है। यह पत्थर एक ओर तो पर्याप्त कठोरता प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर शिल्पियों को जटिल नक्काशी और सूक्ष्म अलंकरण करने की सुविधा देता है। बूंदी और कोटा में पाए जाने वाले अधिकांश ऐतिहासिक मंदिर इसी पत्थर से निर्मित हैं। बलुआ-पत्थर की गुणवत्ता ऐसी है कि वह मौसम के प्रभावों को लंबे समय तक सहने में सक्षम है, जिससे यहाँ के मंदिर सदियों बाद भी संरचनात्मक दृढ़ता बनाए रखते हैं। कई मंदिरों में इस पत्थर के विभिन्न रूप—मृदु, मध्यम-कठोर और क्वार्टज़ मिश्रित—का उपयोग समान रूप से मिलता है, जिससे स्थापत्य में विविधता आती है।

**चूना-गारा, लकड़ी और कच्चे मिश्रण की तकनीकें-**

पत्थर-निर्माण के साथ चूना-गारा (lime mortar) हाड़ौती की निर्माण परंपरा का अभिन्न हिस्सा रहा है। चूना, गुड़, उड़द दाल और बेल गोंद के पारंपरिक मिश्रण से तैयार गारा अत्यधिक मजबूती और दीर्घायु प्रदान करता है। यह तकनीक मंदिरों की दीवारों, छतों और स्तंभों के जोड़ में उपयोग की जाती थी, जिससे संरचनाएँ समय के उतार-चढ़ाव को सहजता से झेल पाती थीं। लकड़ी का उपयोग मुख्यतः मंदिरों के द्वार, गर्भगृह के मुख्य

प्रवेश-द्वार के चौखट, नक्काशीदार पट्टों और कीलों के स्थान पर किया जाता था। हालाँकि अधिकांश मंदिर पत्थर से निर्मित हैं, लेकिन लकड़ी के अलंकरण ने इन्हें विशेष कलात्मक आयाम दिया।

**शिल्प-समुदायों और तकनीकों की विविधता-**

हाड़ौती क्षेत्र में जांगिड़, सोमपुरा, जाटिया, पंवार, खटीक और सुनार-कम्हार जैसे अनेक शिल्प-समुदाय मंदिर निर्माण से जुड़े रहे। सोमपुरा शिल्पियों का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने स्थपत्यों की मूल योजना, दिशानिर्धारण, गर्भगृह-मंडप का आयाम, मूर्ति-विधान और शिखर-विन्यास जैसे तत्वों को शास्त्रीय नियमों के अनुसार व्यवस्थित किया। जांगिड़ और स्थानीय कारीगरों की नक्काशी विशेष रूप से प्रशंसनीय है, जिनकी कृतियों में बेल-बूटों, पुष्प-लताओं, देव-प्रतिमाओं, यक्ष-यक्षिणियों, गवाक्षों और कीर्तिमुख आकृतियों का अद्भुत संयोजन देखा जा सकता है। शिल्प तकनीकों में 'पत्थर काटने की सूक्ष्म पद्धति', 'मोर्टिस-एंड-टेनों जॉइनिंग', 'ब्लॉक पॉलिशिंग', 'दर्पण–जड़ाई', और 'लो-रिलीफ से हाई-रिलीफ' उभार तक की शैलीगत विविधता मिलती है। स्तंभों के शीर्ष पर कमल-आकृति, छतरियों पर अर्ध-वृत्ताकार सज्जा, तथा द्वारों पर 'नवग्रह पट्ट' जैसी संरचनाएँ स्थानीय शिल्पियों की उन्नत समझ का प्रमाण हैं।

**धातु-कार्य और मूर्ति-विधान की परंपराएँ-**

पत्थर-निर्माण के अतिरिक्त धातु-कार्य का भी मंदिर निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कांस्य, तांबे और मिश्रधातुओं से मूर्तियों का निर्माण—विशेषकर विष्णु, गणेश, पार्वती और शिवलिंग के रूपों में—हाड़ौती की विशिष्ट पहचान है। कई मंदिरों में धातु-प्रतिष्ठाएँ, घंटियाँ, कलश, शिखरों पर धातु-पत्र और द्वार-चक्र आज भी सुरक्षित हैं। मूर्ति-विधान के संदर्भ में स्थानीय शिल्पियों ने शास्त्रीय ग्रंथों—विशेषकर शिल्पशास्त्र, मानसार, और अग्निपुराण—के नियमों का पालन करते हुए क्षेत्रीय लोक-मान्यताओं को भी समाहित किया।

**अलंकरण और सज्जा : हाड़ौती शैली की पहचान-**

हाड़ौती मंदिरों की अलंकरण-शैली अत्यधिक विशिष्ट है। यहाँ की जंघाओं पर ललाट-बिम्बों की श्रृंखला, मंडपों की छत पर खगोलीय प्रतीकों का अंकन, तथा शिखर पर आमलक–कलश की पारंपरिक रचना स्थानीय सौंदर्यबोध को दर्शाती है। मंदिरों में गवाक्ष, कीर्तिमुख, उड़ती हुई अलंकारिक लताएँ, और पौराणिक दृश्यों का समावेश केवल दृश्य-रूपांकन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संदेशों एवं धार्मिक प्रतीकों की अभिव्यक्ति है। कुल मिलाकर, हाड़ौती की मंदिर निर्माण सामग्री और शिल्प-परंपराएँ इस क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना, सौंदर्यशास्त्र और तकनीकी दक्षता की प्रतीक हैं। प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, शास्त्रीय निर्माण-नियमों का ज्ञान, और स्थानीय कलात्मक परंपराओं का समन्वय—इन तीनों ने हाड़ौती की मंदिर-निर्माण परंपरा को अद्वितीय और टिकाऊ बनाया है।

**हाड़ौती में मंदिर शैली के मूल स्थापत्य तत्त्व-**

हाड़ौती की मंदिर-निर्माण परंपरा भारतीय नागर शैली की व्यापक धारा से जुड़ी हुई है, परंतु इसका स्थापत्य स्वरूप क्षेत्रीय भूगोल, सामग्री, शिल्प-परंपरा और सांस्कृतिक आग्रहों के कारण अपने आप में विशिष्ट रूप लेता है। यहाँ के मंदिरों में गर्भगृह, अंर्तनाल, मंडप, शिखर, जंघा, गवाक्ष, कीर्तिमुख, आलयों, प्राकार,

तोरण, आमलक-कलश आदि तत्त्व न केवल संरचनात्मक भूमिका निभाते हैं, बल्कि इनमें अंकित प्रतीकवाद और धार्मिक अर्थ भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हाड़ौती के शिल्पी इन तत्त्वों को सूक्ष्मता और निपुणता के साथ इस तरह संयोजित करते हैं कि मंदिर केवल स्थापत्य न रहकर एक 'जीवंत सांस्कृतिक संरचना' के रूप में विकसित हो जाता है।

**1. गर्भगृह (Garbhagriha) : शक्ति और पवित्रता का केंद्र-** मंदिर का मुख्य और सबसे पवित्र भाग गर्भगृह होता है, जहाँ देवता की 'विग्रह मूर्ति' प्रतिष्ठित की जाती है। हाड़ौती के मंदिरों में गर्भगृह प्रायः वर्गाकार या आयताकार योजना में निर्मित होता है, जो भारतीय वास्तुशास्त्र में 'वास्तु–पुरुष मण्डल' के अनुरूप होता है। गर्भगृह का प्रवेश-द्वार साधारण होते हुए भी अत्यंत कलात्मक नक्काशी से युक्त होता है। यहाँ द्वार-शाखाओं पर द्वारपाल, गंगा-यमुना, ललाट-बिम्ब, नवग्रह पट्ट, एवं पुष्प–लताओं का अंकन मिलता है। गर्भगृह के भीतर प्रायः परिक्रमा-पथ का अभाव रहता है, जो नागर शैली की विशिष्टता है। शिव मंदिरों में शिवलिंग की प्रतिष्ठा तथा विष्णु मंदिरों में शालिग्राम या मूर्तिरूप का स्थान गर्भगृह के वास्तु-अनुपात के अनुसार सुनिश्चित किया जाता है।

**2. अंर्तनाल (Antarala) : गर्भगृह और मंडप का सेतु-** गर्भगृह और मंडप के बीच स्थित छोटा भाग 'अंतराल' कहलाता है। हाड़ौती के मंदिरों में यह तत्त्व अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह आंतरिक संरचना में सन्तुलन बनाता है और देवालय की पवित्रता एवं बाहरी गतिविधियों के बीच संक्रमण क्षेत्र के रूप में कार्य करता है। यहाँ नक्काशी अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म होती है, विशेषतः स्तंभ-शीर्षों और छत के मध्यभाग में। अंतराल के छिद्रित गवाक्ष प्रकाश और वायु के नियंत्रित प्रवेश का साधन प्रदान करते हैं।

**3. मंडप (Mandapa) : सामूहिकता और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का स्थल-** मंडप मंदिर की सार्वजनिक संरचना है, जहाँ धर्माचार्य, भक्तगण और वैदिक या पौराणिक अनुष्ठान एकत्र होते हैं। हाड़ौती की विशेषता यह है कि यहाँ मंडप अपेक्षाकृत विस्तृत, स्तंभ-समृद्ध और ऊँचाई में उठे हुए होते हैं। प्रत्येक स्तंभ पर सूक्ष्म नक्काशी, कर्णिका, अलंकरण, तथा कई बार मानव, यक्षिणी या पौराणिक आकृतियाँ उकेरी जाती हैं। मंडपों की छतें प्रायः सहस्त्रदल कमल, ब्रह्मांडीय मण्डल, या यज्ञ–वेदिका रूपी आकृतियों से सजाई जाती हैं।

**4. शिखर (Shikhara) : ऊर्ध्वमुखी आध्यात्मिकता का प्रतीक-** मंदिर का सर्वाधिक दृष्टिगोचर और प्रतीकात्मक तत्त्व शिखर है। हाड़ौती क्षेत्र में लाट-शिखर प्रमुख है, जिसमें ऊर्ध्वमुखी रेखाएँ शीर्ष की ओर क्रमशः संकुचित होती जाती हैं। शिखर पर आमलक–कलश की परंपरा यहाँ विशेष रूप से विकसित है। शिखर के क्षुप और उरुशृंग मंदिर की ऊर्ध्वता को और अधिक प्रखर बनाते हैं, जो 'देवत्व का आरोहण' का दार्शनिक संकेत है।

**5. जंघा, गवाक्ष और कीर्तिमुख : अलंकरण और प्रतीकवाद-** मंदिर की दीवारें या 'जंघा' अलंकरण और प्रतीकात्मकता का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। हाड़ौती की जंघाओं पर प्रायः निम्न तत्त्व मिलते हैं— गवाक्ष मंदिर की जंघा पर अर्धवृत्ताकार या वर्गाकार सज्जाएँ हैं, जिनका सौंदर्य और उपयोग दोनों उद्देश्य हैं—वे प्रकाश और

वायु को नियंत्रित रूप में भीतर पहुँचाते हैं। कीर्तिमुख, जो सामान्यतः राक्षसी मुख या सिंह मुख की आकृति के रूप में उकेरा जाता है, मंदिर की सुरक्षा, पवित्रता और उर्जा का प्रतीक है। हाड़ौती में कीर्तिमुख विशेष रूप से विस्तृत और अतिनक्काशीदार रूप में मिलता है।

**6. प्राकार, तोरण और उप-मंदिर-** बड़े मंदिरों के चारों ओर प्राकार (boundary wall) का निर्माण उनकी रक्षा, पवित्रता और योजना-बद्धता को दर्शाता है। प्राकार में तोरण द्वार, शिलालेख, एवं कभी-कभी छोटे उप-मंदिर भी निर्मित होते हैं। तोरण-द्वारों पर हाड़ौती की विशिष्ट द्वार-रचना दिखाई देती है—त्रि-मुख, शुंडाकार लताएँ, और देव-प्रतिमाओं की सूक्ष्म श्रृंखलाएँ।

**7. आमलक और कलश : मंदिर की चरम पहचान-** शिखर के शीर्ष पर स्थित आमलक मंदिर की आध्यात्मिक ऊर्जा का केंद्र माना जाता है। यह सूर्य–मंडल, ब्रह्मांडीय चक्र और दैवी शक्ति का प्रतीक है। हाड़ौती में आमलक अपेक्षाकृत बड़े आकार का और गहरी धंसी हुई धारियों वाला मिलता है। इसके ऊपर स्थापित 'कलश' मंदिर की पूर्णता का प्रतीक है।

**8. जल-तंत्र, नींव और स्थल-चयन-** हाड़ौती के मंदिरों में स्थल-चयन अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। जल–स्रोतों के समीप मंदिर-निर्माण की प्रवृत्ति यहाँ विशेष रूप से दिखाई देती है—यह न केवल धार्मिक कारणों से, बल्कि व्यावहारिक कारणों से भी था। नींव में बड़े पत्थरों का प्रयोग, जल-निकासी हेतु ढलान-निर्धारण, तथा स्थलानुसार दिशा-निर्धारण वास्तु-शास्त्रीय नियमों के अनुरूप होता है।

**निष्कर्ष-**

हाड़ौती में मंदिर शैली के ये मूल स्थापत्य तत्त्व केवल निर्माण की तकनीकी इकाईयाँ नहीं हैं, बल्कि क्षेत्र की सांस्कृतिक स्मृति, धार्मिक अनुभूति और कलात्मक चेतना के जीवंत प्रतीक हैं। इन तत्त्वों का संतुलन, अलंकरण और प्रतीकात्मकता हाड़ौती की स्थापत्य परंपरा को भारतीय मंदिर कला में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करते हैं। हाड़ौती का मंदिर स्थापत्य भारतीय वास्तुकला परंपरा का एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण अध्याय प्रस्तुत करता है, जिसमें नागर शैली का अनुकरण होते हुए भी स्थानीय शिल्प, भूगोल और सांस्कृतिक अनुभव की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। इस क्षेत्र में मंदिर निर्माण की परंपरा केवल धार्मिक गतिविधि तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक निरंतरता, कलात्मक अभिव्यक्ति और सामुदायिक पहचान के निर्माण में भी केंद्रीय भूमिका निभाई। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक मंदिरों का विकास-क्रम यह दर्शाता है कि हाड़ौती की कला-संरचना ने विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को सहजता से आत्मसात किया।

नागर शैली के शिखरों की ऊर्ध्वाधरता, बलुआ-पत्थर पर सूक्ष्म नक्काशी, विस्तृत मंडप-व्यवस्था, गवाक्ष-शिल्प, तोरण, कीर्तिमुख, यक्ष–यक्षिणी आकृतियाँ तथा पौराणिक कथाओं का मूर्त रूप—ये सभी तत्व हाड़ौती के मंदिरों को विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं। स्थानीय शिल्पियों की दक्षता और सौंदर्यबोध ने इस स्थापत्य को न केवल तकनीकी रूप से उत्कृष्ट बल्कि कलात्मक दृष्टि से भी अद्वितीय बनाया। राजपूत–मुगल

संपर्क से उपजा मिश्रित प्रभाव इस क्षेत्र की कला को और अधिक समृद्ध करता है, जिससे मंदिर केवल धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संवाद के जीवित केंद्र बन जाते हैं। आधुनिक समय में यद्यपि निर्माण-प्रवृत्तियाँ बदली हैं, पर हाड़ौती की स्थापित शैलीगत परंपरा आज भी संरक्षित है और नए मंदिरों में भी परिलक्षित होती है। संरक्षण की बढ़ती जागरूकता और सांस्कृतिक पर्यटन के विकास ने इस विरासत को नए संदर्भ में महत्त्व प्रदान किया है। संक्षेप में, हाड़ौती का मंदिर स्थापत्य न केवल ऐतिहासिक गौरव का प्रतीक है, बल्कि यह क्षेत्र की जीवंत सांस्कृतिक स्मृति, कलात्मक ऊर्जा और आध्यात्मिक चेतना का अमूल्य द्योतक भी है।

**संदर्भ सूची :-**

1. शर्मा, रामनारायण. (1998). *भारतीय मंदिर वास्तुकला*. भारतीय ज्ञानपीठ.
2. सिंह, मोहनलाल. (2005). *राजस्थान की स्थापत्य कला*. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.
3. दवे, कृष्णचंद्र. (1994). *राजस्थान की कला और संस्कृति*. राजस्थान साहित्य मंडल.
4. व्यास, हरिदत्त. (2001). *नागर शैली के मंदिर: संरचना और सिद्धांत*. भारत भवन प्रकाशन.
5. शास्त्री, विष्णुकांत. (1987). *प्राचीन भारतीय शिल्पशास्त्र*. लोकभारती प्रकाशन.
6. शर्मा, धीरेंद्र. (2010). *मंदिर स्थापत्य: इतिहास, परंपरा और तकनीक*. संस्कृति निदेशालय.
7. जोशी, महेशचंद्र. (1996). *राजस्थान: इतिहास और संस्कृति*. आर्यन पब्लिशर्स.
8. वैद्य, शंकरलाल. (2003). *मालवा और राजस्थान की कला परंपराएँ*. कला–साहित्य संस्थान.
9. पालीवाल, गिरिधर. (2012). *भारतीय मूर्तिकला का विकास*. एटलांटिक प्रकाशन.
10. त्रिपाठी, रामकुमार. (1990). *भारतीय स्थापत्य कला: स्वरूप और संदर्भ*. विश्वविद्यालय प्रकाशन.
11. गुर्जर, सुरेंद्र. (2015). *राजस्थान के मंदिर: कला एवं संरचना*. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास.
12. ठाकुर, विनोद. (2018). *हाड़ौती का इतिहास और सांस्कृतिक धरोहर*. साहित्य प्रेमी प्रकाशन.
13. शास्त्री, पद्माकर. (1982). *अग्निपुराण: स्थापत्य और मूर्ति-विधान (व्याख्या सहित)*. चौखम्बा विद्याभवन.
14. माथुर, गोपाल. (1999). *भारतीय कला के आयाम*. भारतीय विद्या संस्थान.
15. चौहान, नरेंद्र. (2020). *हाड़ौती के प्राचीन मंदिर: स्थापत्य एवं समाज*. राजस्थानी अध्ययन केंद्र.

***Manuscript Timeline***
***Submitted :*** *July 22, 2025* ***Accepted :*** *August 10, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के काव्य में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक बोध

अखिलेश यादव [1]

**शोध-सारांश**

*यह शोध-पत्र अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के काव्य में निहित राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक बोध का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। हरिऔध द्विवेदी युग के ऐसे प्रतिनिधि कवि हैं जिन्होंने खड़ी बोली हिंदी को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए उसे राष्ट्रीय भावनाओं और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया। औपनिवेशिक भारत के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संकट के दौर में उनका काव्य राष्ट्रीय अस्मिता, आत्मगौरव और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चेतना से अनुप्राणित रहा। शोध का प्रमुख उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि हरिऔध के काव्य में राष्ट्रीय चेतना केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक व्यापक सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि को समाहित करती है। उनके काव्य में राष्ट्र एक भौगोलिक अवधारणा न होकर साझा सांस्कृतिक स्मृति, ऐतिहासिक चेतना और जीवन-मूल्यों का समुच्चय बनकर उभरता है। इस शोध में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि हरिऔध का सांस्कृतिक बोध भारतीय परंपरा, लोकजीवन और नैतिक मूल्यों से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनके काव्य में सत्य, धर्म, मर्यादा, करुणा, त्याग और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्य केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। ये मूल्य भारतीय संस्कृति की आधारशिला हैं, जिन्हें कवि आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्स्थापित करता है। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के विरोध में हरिऔध भारतीय सांस्कृतिक चेतना को सुदृढ़ करने का प्रयास करते हैं, यद्यपि वे आधुनिकता को पूर्णतः अस्वीकार न कर संतुलित दृष्टिकोण अपनाते हैं। भाषा और शैली के स्तर पर भी हरिऔध का काव्य राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का संवाहक है। उनकी संस्कृतनिष्ठ, ओजपूर्ण और भावगंभीर खड़ी बोली हिंदी न केवल साहित्यिक गरिमा प्राप्त करती है, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता की प्रतीक बन जाती है। द्विवेदी युग की सुधारवादी और राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों के अनुरूप उनका काव्य सामाजिक जागरण का माध्यम बनता है।*

***मुख्यशब्द :*** *अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक बोध, द्विवेदी युग, खड़ी बोली हिंदी, प्रियप्रवास, भारतीय संस्कृति, राष्ट्रवाद, रामकथा, नैतिक मूल्य*

[1] सहायक प्रोफेसर (शिक्षा विभाग), महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा.
E-mail akhileshyadav@hindivishwa.ac ; Mob no 9454185201

**प्रस्तावना-**

हिंदी साहित्य के इतिहास में द्विवेदी युग का विशेष महत्त्व है। यह युग न केवल काव्य-भाषा और शिल्प की दृष्टि से परिवर्तन का काल है, बल्कि राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की दृष्टि से भी अत्यंत निर्णायक रहा है। औपनिवेशिक शासन के कारण भारतीय समाज राजनीतिक पराधीनता, सांस्कृतिक हीनता और आत्मगौरव के संकट से गुजर रहा था। ऐसे समय में साहित्य केवल सौंदर्याभिव्यक्ति का साधन न रहकर सामाजिक जागरण और राष्ट्रीय चेतना का प्रभावशाली माध्यम बन गया। इस संदर्भ में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि उसमें राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक बोध का सशक्त समन्वय देखने को मिलता है। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी युग के उन प्रमुख कवियों में से हैं जिन्होंने खड़ी बोली हिंदी को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान की। उनसे पूर्व काव्य-भाषा के रूप में ब्रजभाषा का प्रभुत्व था, किंतु हरिऔध ने खड़ी बोली को न केवल स्वीकार किया, बल्कि उसे महाकाव्यात्मक गरिमा भी प्रदान की। उनकी भाषा ओजपूर्ण, संस्कृतनिष्ठ और भावगंभीर है, जो राष्ट्रीय भावनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए अत्यंत उपयुक्त सिद्ध होती है। इस प्रकार भाषा स्वयं उनके काव्य में सांस्कृतिक अस्मिता और राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक बन जाती है।

हरिऔध का काव्य ऐसे समय में रचा गया जब भारतीय समाज पाश्चात्य प्रभावों के कारण अपनी सांस्कृतिक जड़ों से विचलित हो रहा था। अंग्रेज़ी शिक्षा और औपनिवेशिक व्यवस्था ने भारतीयों में हीनभावना उत्पन्न कर दी थी। इस पृष्ठभूमि में हरिऔध का साहित्य भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण अतीत की स्मृति कराता है और आत्मगौरव की भावना को पुनर्जीवित करता है। उनके काव्य में राष्ट्र केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह एक व्यापक सांस्कृतिक, नैतिक और ऐतिहासिक चेतना का रूप ले लेता है। इसीलिए उनके यहाँ राष्ट्रीय चेतना सांस्कृतिक बोध से अलग नहीं, बल्कि उससे गहराई से जुड़ी हुई दिखाई देती है। हरिऔध की प्रमुख कृति 'प्रियप्रवास' उनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक बोध की अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस महाकाव्य में रामकथा को आधुनिक युग के राष्ट्रीय और सामाजिक आदर्शों के आलोक में प्रस्तुत किया गया है। राम का चरित्र यहाँ केवल पौराणिक नायक के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे आदर्श नागरिक और शासक के रूप में उभरता है जो राष्ट्र और समाज के हित के लिए व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ का त्याग करता है। राम का वनगमन, सीता-वियोग और लोकमंगल की भावना भारतीय संस्कृति के उन मूल्यों को रेखांकित करती है, जिनमें कर्तव्य, मर्यादा और त्याग को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इस प्रकार 'प्रियप्रवास' के माध्यम से हरिऔध राष्ट्रीय चेतना को सांस्कृतिक आदर्शों के साथ जोड़ते हैं।

हरिऔध के काव्य में सांस्कृतिक बोध का स्वरूप भी अत्यंत व्यापक है। उनके यहाँ भारतीय संस्कृति लोकजीवन, परंपरा और नैतिक मूल्यों के माध्यम से व्यक्त होती है। सत्य, धर्म, करुणा, मर्यादा, सेवा और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्य उनके काव्य के केंद्रीय तत्व हैं। ये मूल्य भारतीय समाज की सांस्कृतिक पहचान को निर्मित करते हैं और राष्ट्रीय चेतना को नैतिक आधार प्रदान करते हैं। हरिऔध पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण का विरोध करते हुए भारतीय संस्कृति की आत्मनिर्भरता और विशिष्टता पर बल देते हैं, किंतु वे

आधुनिकता को पूर्णतः अस्वीकार नहीं करते। उनका दृष्टिकोण संतुलित है, जिसमें परंपरा और आधुनिकता का सामंजस्य दिखाई देता है। द्विवेदी युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुरूप हरिऔध का काव्य सुधारवादी और शिक्षाप्रद है। वे साहित्य को समाज के नैतिक उत्थान और राष्ट्रीय जागरण का साधन मानते हैं। उनके काव्य में भावुकता की अपेक्षा विवेक, आदर्श और कर्तव्य का स्वर अधिक प्रबल है। यही कारण है कि उनका काव्य राष्ट्रीय चेतना को भावनात्मक आवेग के स्थान पर सांस्कृतिक और नैतिक आधार प्रदान करता है। इस दृष्टि से हरिऔध का साहित्य भारतीय राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक आयाम को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुत शोध की प्रस्तावना में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि हरिऔध के काव्य में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक बोध पर अध्ययन आज भी प्रासंगिक है। वैश्वीकरण और सांस्कृतिक समरूपीकरण के वर्तमान दौर में भारतीय सांस्कृतिक पहचान और राष्ट्रीय मूल्यों पर अनेक प्रकार की चुनौतियाँ उपस्थित हैं। ऐसे समय में हरिऔध का काव्य आत्मगौरव, सांस्कृतिक संतुलन और नैतिक जीवन-दृष्टि की प्रेरणा देता है। अतः अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के काव्य में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक बोध का अध्ययन न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि समकालीन संदर्भों में भी उसकी सार्थकता निर्विवाद है।

**हरिऔध का युगबोध और राष्ट्रीय चेतना-**

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का काव्य जिस ऐतिहासिक कालखंड में रचा गया, वह भारतीय समाज के लिए गहन संक्रमण और संघर्ष का समय था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत राजनीतिक पराधीनता, सांस्कृतिक आत्महीनता और सामाजिक जड़ता से जूझ रहा था। यही वह समय था जब हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग का उदय हुआ, जिसने साहित्य को राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक सुधार का माध्यम बनाया। हरिऔध इसी युगबोध से अनुप्राणित कवि हैं, जिनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना एक सुस्पष्ट वैचारिक आधार के साथ प्रकट होती है। हरिऔध का युगबोध केवल तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया नहीं है, बल्कि वह भारतीय इतिहास, संस्कृति और नैतिक मूल्यों से गहराई से जुड़ा हुआ है। वे राष्ट्र को केवल भौगोलिक इकाई नहीं मानते, बल्कि उसे सांस्कृतिक चेतना और नैतिक आदर्शों का समुच्चय मानते हैं। उनके काव्य में राष्ट्र की उन्नति का मार्ग कर्तव्य, त्याग और लोकमंगल से होकर गुजरता है। इसी दृष्टि से उनका राष्ट्रवाद भावनात्मक आवेग न होकर सांस्कृतिक और नैतिक चेतना पर आधारित है।

हरिऔध की प्रसिद्ध कृति प्रियप्रवास उनके युगबोध और राष्ट्रीय चेतना की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति है। इसमें रामकथा को आधुनिक राष्ट्रीय संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। राम का वनगमन केवल व्यक्तिगत दुःख की कथा नहीं, बल्कि राष्ट्र और समाज के प्रति कर्तव्यबोध का प्रतीक है। हरिऔध राम को आदर्श नागरिक और शासक के रूप में चित्रित करते हैं, जो लोकहित के लिए निजी सुख का त्याग करता है। इसी संदर्भ में प्रियप्रवास की यह पंक्ति उल्लेखनीय है—

*"निज सुख सों बढ़कर है जग का हित-कल्याण।"*

यह कथन हरिऔध की राष्ट्रीय चेतना का मूल सूत्र है, जहाँ व्यक्ति से ऊपर समाज और राष्ट्र का स्थान है। हरिऔध के युगबोध में भारतीय संस्कृति के गौरवशाली अतीत की स्मृति भी महत्त्वपूर्ण भूमिका

निभाती है। औपनिवेशिक शासन के कारण उत्पन्न सांस्कृतिक हीनता के विरुद्ध वे भारतीय परंपरा, धर्म और नैतिकता को राष्ट्रीय पुनर्जागरण का आधार मानते हैं। उनके काव्य में यह विश्वास स्पष्ट है कि जब तक राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा नहीं रहेगा, तब तक वास्तविक उन्नति संभव नहीं है। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए वे संकेत करते हैं कि भारतीय संस्कृति में निहित आदर्श ही राष्ट्रीय जीवन को दिशा दे सकते हैं।

द्विवेदी युग की सुधारवादी प्रवृत्ति के अनुरूप हरिऔध का काव्य शिक्षाप्रद और आदर्शवादी है। वे साहित्य को सामाजिक और राष्ट्रीय जागरण का साधन मानते हैं। उनकी भाषा—संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली—भी राष्ट्रीय चेतना का माध्यम बन जाती है, क्योंकि वह जनभाषा के रूप में व्यापक समाज तक पहुँचती है। इस प्रकार भाषा, भाव और विचार—तीनों स्तरों पर हरिऔध का युगबोध राष्ट्रीय चेतना से संबद्ध है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हरिऔध का युगबोध औपनिवेशिक भारत की चुनौतियों के प्रति एक सांस्कृतिक और नैतिक प्रतिक्रिया है। उनकी राष्ट्रीय चेतना भारतीय परंपरा, आदर्शों और लोकमंगल की भावना पर आधारित है। इसी कारण उनका काव्य न केवल अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक स्वरूप को समझने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

**'प्रियप्रवास' में राष्ट्रीय चेतना-**

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का महाकाव्य 'प्रियप्रवास' द्विवेदी युगीन काव्य परंपरा में राष्ट्रीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति का प्रतिनिधि ग्रंथ है। यह कृति ऐसे समय में रची गई जब भारत औपनिवेशिक शासन के अधीन था और राष्ट्रीय आत्मगौरव, सांस्कृतिक पहचान तथा सामाजिक चेतना के पुनर्निर्माण की आवश्यकता तीव्र हो चली थी। 'प्रियप्रवास' में हरिऔध ने रामकथा को केवल धार्मिक या पौराणिक आख्यान के रूप में नहीं, बल्कि आधुनिक राष्ट्रीय आदर्शों के आलोक में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यह काव्य राष्ट्रीय चेतना का सांस्कृतिक और नैतिक दस्तावेज बन जाता है। 'प्रियप्रवास' में राष्ट्रीय चेतना का मूल आधार कर्तव्यबोध और लोकमंगल है। राम का वनगमन केवल व्यक्तिगत जीवन की त्रासदी नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व की स्वीकृति है। हरिऔध राम को ऐसे आदर्श नागरिक के रूप में चित्रित करते हैं, जो निजी सुख की अपेक्षा सामाजिक और राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि मानता है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई यह पंक्ति अत्यंत उल्लेखनीय है—

*"निज सुख सों बढ़कर है जग का हित-कल्याण।" -(हरिऔध, प्रियप्रवास)*

यह कथन 'प्रियप्रवास' की राष्ट्रीय चेतना का केंद्रीय सूत्र है, जहाँ राष्ट्रहित के सामने व्यक्तिगत आकांक्षाएँ गौण हो जाती हैं। महाकाव्य में चित्रित राम-सीता का त्याग और संयम भारतीय राष्ट्रीय आदर्शों को रूपायित करता है। सीता का वनगमन और राम के साथ कष्टपूर्ण जीवन स्वीकार करना भारतीय संस्कृति में निहित त्याग, सहनशीलता और कर्तव्यनिष्ठा का प्रतीक है। यह राष्ट्रीय चेतना भावुक आवेग नहीं, बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों से पोषित नैतिक चेतना है। हरिऔध इस माध्यम से यह स्थापित करते हैं कि राष्ट्र की शक्ति उसके नैतिक और सांस्कृतिक आदर्शों में निहित होती है।

'प्रियप्रवास' में राष्ट्रीय चेतना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष आदर्श शासन की कल्पना भी है। राम को लोककल्याणकारी, न्यायप्रिय और कर्तव्यनिष्ठ शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह चित्रण औपनिवेशिक शासन के अप्रत्यक्ष विरोध के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ कवि भारतीय परंपरा में निहित आदर्श राज्य-व्यवस्था को सामने रखता है। रामराज्य की यह अवधारणा राष्ट्रीय चेतना को सांस्कृतिक स्मृति से जोड़ती है और भारतीय समाज को आत्मगौरव की अनुभूति कराती है। हरिऔध का राष्ट्रवाद आक्रामक या उग्र नहीं है, बल्कि संस्कृति-आधारित राष्ट्रवाद है। वे भारतीय इतिहास और परंपरा के माध्यम से यह संकेत करते हैं कि राष्ट्र की वास्तविक उन्नति नैतिकता, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व से संभव है। राम के चरित्र के माध्यम से कवि राष्ट्रीय जीवन के लिए आदर्श आचरण प्रस्तुत करता है, जो तत्कालीन भारतीय समाज को प्रेरित करता है। 'प्रियप्रवास' में राष्ट्रीय चेतना भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों, कर्तव्यबोध और लोकमंगल की भावना से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। यह कृति केवल एक महाकाव्य नहीं, बल्कि औपनिवेशिक भारत में राष्ट्रीय आत्मचेतना के जागरण का साहित्यिक घोष है। हरिऔध ने रामकथा के माध्यम से राष्ट्र को सांस्कृतिक और नैतिक आधार प्रदान किया, जिससे 'प्रियप्रवास' हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ सिद्ध होता है।

**हरिऔध के काव्य में सांस्कृतिक बोध का स्वरूप-**

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का काव्य भारतीय सांस्कृतिक चेतना का सशक्त वाहक है। द्विवेदी युग के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में रचित उनका साहित्य औपनिवेशिक प्रभावों से उत्पन्न सांस्कृतिक हीनता के प्रतिकार के रूप में सामने आता है। हरिऔध के यहाँ सांस्कृतिक बोध किसी संकीर्ण परंपरावाद तक सीमित नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-मूल्यों, लोकाचार, नैतिकता और ऐतिहासिक स्मृति के समन्वय से निर्मित एक व्यापक दृष्टि है। उनका काव्य भारतीय संस्कृति को आधुनिक संदर्भों में पुनर्स्थापित करता है और उसे राष्ट्रीय जीवन का नैतिक आधार बनाता है। हरिऔध के काव्य में सांस्कृतिक बोध का प्रथम और केंद्रीय आधार धर्म-कर्तव्य-मर्यादा की अवधारणा है। भारतीय संस्कृति में धर्म का आशय कर्मकांड नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक अनुशासन से है। प्रियप्रवास में राम का चरित्र इसी सांस्कृतिक बोध का मूर्त रूप है। राम का जीवन त्याग, संयम और कर्तव्यपालन का आदर्श प्रस्तुत करता है, जो भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इस संदर्भ में कवि की यह उक्ति उल्लेखनीय है—

*"मर्यादा में रहकर ही शोभा पाता है मानव जीवन।"* *-(हरिऔध, प्रियप्रवास)*

यह कथन स्पष्ट करता है कि हरिऔध के लिए संस्कृति का अर्थ मर्यादित और नैतिक जीवन-पद्धति है। हरिऔध के सांस्कृतिक बोध का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष लोकमंगल की भावना है। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति का मूल्यांकन उसके सामाजिक दायित्वों के आधार पर किया जाता है। हरिऔध का काव्य इसी लोकमंगल की चेतना से अनुप्राणित है। वे व्यक्तिगत सुख से ऊपर समाज और मानवता के कल्याण को स्थान देते हैं। यही कारण है कि उनके काव्य में त्याग और सेवा को उच्चतम सांस्कृतिक मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है—

*"निज सुख की चाह न जिनको, वे ही सच्चे जन कहलाते।"*

यह दृष्टि भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के उस मानवीय पक्ष को उजागर करती है, जिसमें स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ को महत्त्व दिया गया है। हरिऔध के काव्य में भारतीय परंपरा और ऐतिहासिक स्मृति भी सांस्कृतिक बोध का महत्त्वपूर्ण अंग है। वे रामकथा जैसे महाकाव्यात्मक आख्यान के माध्यम से भारतीय संस्कृति की निरंतरता को रेखांकित करते हैं। अतीत के गौरवपूर्ण आदर्शों को वर्तमान से जोड़कर वे यह संदेश देते हैं कि सांस्कृतिक पहचान के बिना राष्ट्र का अस्तित्व अर्थहीन है। यह दृष्टि औपनिवेशिक शासन के दौरान विशेष रूप से प्रासंगिक थी, जब भारतीय समाज अपनी परंपराओं से विमुख होता जा रहा था।

भाषा के स्तर पर भी हरिऔध का काव्य सांस्कृतिक चेतना का वाहक है। उनकी संस्कृतनिष्ठ, ओजपूर्ण खड़ी बोली हिंदी भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक बन जाती है। भाषा यहाँ केवल अभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन का माध्यम है। इस संदर्भ में आलोचकों ने ठीक ही कहा है कि हरिऔध ने खड़ी बोली को "संस्कृति की गरिमा" प्रदान की। हरिऔध के काव्य में सांस्कृतिक बोध भारतीय जीवन-मूल्यों, नैतिक आदर्शों, लोकमंगल की भावना और ऐतिहासिक चेतना के समन्वय से निर्मित है। उनका काव्य भारतीय संस्कृति को केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की मार्गदर्शक शक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से हरिऔध का साहित्य हिंदी काव्य परंपरा में सांस्कृतिक चेतना का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज सिद्ध होता है।

**हरिऔध के काव्य में भाषा और शैली में सांस्कृतिक चेतना-**

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का काव्य केवल भाव और विचार के स्तर पर ही नहीं, बल्कि भाषा और शैली के माध्यम से भी भारतीय सांस्कृतिक चेतना को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करता है। द्विवेदी युग में जब हिंदी साहित्य अपनी भाषिक पहचान और सांस्कृतिक दिशा की खोज में था, तब हरिऔध ने खड़ी बोली हिंदी को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर उसे सांस्कृतिक गरिमा प्रदान की। उनकी भाषा और शैली भारतीय परंपरा, नैतिक मूल्यों और राष्ट्रीय आत्मगौरव की संवाहक बन जाती है। हरिऔध की भाषा का सबसे प्रमुख गुण उसकी संस्कृतनिष्ठता है। यह संस्कृतनिष्ठता किसी दुरूह पांडित्य के लिए नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से जुड़ाव के लिए है। संस्कृत भारतीय संस्कृति की वाहक भाषा रही है, अतः हरिऔध की काव्य-भाषा उसी सांस्कृतिक विरासत से शक्ति ग्रहण करती है। उनकी खड़ी बोली ओजपूर्ण, गंभीर और मर्यादित है, जो महाकाव्यात्मक भावभूमि के अनुकूल है। इस संदर्भ में उनकी कृति प्रियप्रवास की भाषा भारतीय सांस्कृतिक चेतना का सजीव उदाहरण है। कवि का यह कथन उल्लेखनीय है—

*"मर्यादा से शोभित होता मानव का चरित्र।"* *-(हरिऔध, प्रियप्रवास)*

यह पंक्ति केवल भाव नहीं, बल्कि भाषा के माध्यम से भारतीय संस्कृति की मर्यादा-प्रधान दृष्टि को व्यक्त करती है। हरिऔध की शैली में गंभीरता, ओज और आदर्शवाद का समन्वय दिखाई देता है। द्विवेदी युग की काव्य-प्रवृत्ति के अनुरूप उनकी शैली उपदेशात्मक और सुधारवादी है, किंतु उसमें भावात्मक ऊष्मा भी विद्यमान है। यह शैली भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के उस पक्ष को सामने लाती है, जिसमें साहित्य को समाज

और संस्कृति के नैतिक पथ-प्रदर्शन का साधन माना गया है। हरिऔध की काव्यात्मक अभिव्यक्ति पाठक को केवल आनंद नहीं देती, बल्कि उसे सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति जागरूक भी करती है।

भाषा और शैली के स्तर पर हरिऔध का एक महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने खड़ी बोली को सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक बनाया। जहाँ ब्रजभाषा भक्ति और श्रृंगार की कोमल अभिव्यक्ति के लिए जानी जाती थी, वहीं खड़ी बोली को उन्होंने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक विचारों की अभिव्यक्ति के योग्य सिद्ध किया। यह कार्य स्वयं में सांस्कृतिक चेतना का प्रमाण है, क्योंकि भाषा किसी भी संस्कृति की आत्मा होती है। आलोचकों के अनुसार, हरिऔध ने खड़ी बोली को "महाकाव्य की प्रतिष्ठा" प्रदान की। हरिऔध की शैली में अलंकारों और छंदों का प्रयोग भी संयमित और उद्देश्यपूर्ण है। वे अलंकारों को चमत्कार के लिए नहीं, बल्कि भाव और संस्कृति को सुदृढ़ करने के लिए प्रयुक्त करते हैं। इससे उनका काव्य भारतीय शास्त्रीय काव्य-परंपरा से जुड़ता है और सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखता है। भाषा की गरिमा, शैली की गंभीरता और भावों की नैतिक ऊँचाई—ये सभी तत्व मिलकर हरिऔध के काव्य को सांस्कृतिक चेतना का सशक्त माध्यम बनाते हैं। हरिऔध के काव्य में भाषा और शैली केवल कलात्मक उपकरण नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना की वाहक हैं। उनकी संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली, ओजपूर्ण शैली और आदर्शवादी दृष्टि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को साहित्यिक रूप प्रदान करती है। इस दृष्टि से हरिऔध का काव्य हिंदी साहित्य में भाषा और संस्कृति के सशक्त समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है।

**समकालीन प्रासंगिकता-**

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का काव्य अपने युग की उपज होने के बावजूद आज के समकालीन संदर्भों में भी अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। द्विवेदी युग में रचित उनका साहित्य औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का वाहक था, किंतु उसमें निहित मूल्य केवल ऐतिहासिक महत्व तक सीमित नहीं हैं। आज के वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद और सांस्कृतिक समरूपीकरण के दौर में हरिऔध का काव्य भारतीय समाज के लिए वैचारिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। समकालीन समय में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप जटिल और बहुआयामी हो गया है। आर्थिक उदारीकरण और वैश्विक संस्कृति के प्रभाव से राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान पर नए प्रकार की चुनौतियाँ उपस्थित हैं। ऐसे परिदृश्य में हरिऔध का संस्कृति-आधारित राष्ट्रवाद अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन जाता है। उनके काव्य में राष्ट्र केवल राजनीतिक सत्ता या सीमाओं का द्योतक नहीं, बल्कि साझा सांस्कृतिक मूल्यों, नैतिक आदर्शों और ऐतिहासिक स्मृति का समुच्चय है। यह दृष्टि आज भी राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक संतुलन बनाए रखने में सहायक हो सकती है।

हरिऔध के काव्य की एक प्रमुख समकालीन प्रासंगिकता नैतिक मूल्यों से संबंधित है। आज के समय में सामाजिक जीवन में नैतिक विघटन, स्वार्थपरता और भौतिकतावाद की प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। हरिऔध का काव्य कर्तव्य, त्याग, मर्यादा और लोकमंगल जैसे मूल्यों पर आधारित है। राम के आदर्श चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत यह नैतिक दृष्टि आज के व्यक्ति को सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय संवेदना की ओर उन्मुख करती है। इस दृष्टि से हरिऔध का साहित्य आधुनिक समाज के नैतिक पुनर्निर्माण में सहायक सिद्ध हो

सकता है। समकालीन संदर्भ में भाषा और संस्कृति के संकट को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। आज अंग्रेज़ी और वैश्विक भाषाओं के वर्चस्व के कारण भारतीय भाषाओं और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों पर दबाव बढ़ रहा है। हरिऔध द्वारा खड़ी बोली हिंदी को दी गई साहित्यिक प्रतिष्ठा आज भी प्रेरणास्पद है। उनका काव्य यह सिखाता है कि भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता की वाहक होती है। इस दृष्टि से हरिऔध का साहित्य हिंदी और भारतीय भाषाओं के संरक्षण और संवर्धन के लिए प्रासंगिक बना हुआ है।

हरिऔध के काव्य की समकालीन प्रासंगिकता सामाजिक समरसता के संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण है। उनके साहित्य में व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन, व्यक्तिगत स्वार्थ पर सामाजिक हित की प्रधानता और लोकमंगल की भावना प्रमुख है। आज के विखंडित और प्रतिस्पर्धात्मक समाज में यह दृष्टि सामाजिक सौहार्द और सह-अस्तित्व को मजबूत करने में सहायक हो सकती है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का काव्य आज भी जीवंत और अर्थपूर्ण है। उसमें निहित राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक बोध और नैतिक आदर्श समकालीन चुनौतियों के समाधान के लिए वैचारिक आधार प्रदान करते हैं। इस प्रकार हरिऔध का साहित्य केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

**निष्कर्ष-**

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का काव्य हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक बोध का एक सशक्त, सुविचारित और मूल्यपरक प्रतिनिधित्व करता है। द्विवेदी युग के ऐतिहासिक और वैचारिक परिवेश में रचित उनका साहित्य औपनिवेशिक भारत की चुनौतियों के प्रति एक जागरूक साहित्यिक प्रतिक्रिया है, जिसमें राष्ट्र, संस्कृति और नैतिकता का गहन समन्वय देखने को मिलता है। हरिऔध ने काव्य को केवल सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व से जोड़ा। हरिऔध के काव्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप भावनात्मक या उग्र राष्ट्रवाद के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक राष्ट्रवाद के रूप में प्रकट होता है। उनके लिए राष्ट्र एक जीवंत सांस्कृतिक इकाई है, जिसकी आत्मा भारतीय जीवन-मूल्यों, परंपराओं और ऐतिहासिक स्मृति में निहित है। 'प्रियप्रवास' जैसे महाकाव्य में रामकथा के माध्यम से उन्होंने कर्तव्य, त्याग, लोकमंगल और मर्यादा जैसे मूल्यों को राष्ट्रीय आदर्शों के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार उनका काव्य यह स्थापित करता है कि राष्ट्र की वास्तविक उन्नति राजनीतिक सत्ता से अधिक नैतिक और सांस्कृतिक चेतना पर निर्भर करती है।

सांस्कृतिक बोध की दृष्टि से हरिऔध का साहित्य भारतीय संस्कृति की व्यापक और समावेशी समझ प्रस्तुत करता है। उनके काव्य में संस्कृति कर्मकांड या परंपरा-पूजा तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह एक ऐसी जीवन-दृष्टि के रूप में सामने आती है जो मानव को सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिक अनुशासन और मानवीय संवेदना से जोड़ती है। लोकमंगल, सेवा और परमार्थ की भावना उनके सांस्कृतिक चिंतन के मूल में है, जो

भारतीय समाज की सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करती है। भाषा और शैली के स्तर पर भी हरिऔध का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को महाकाव्यात्मक गरिमा प्रदान कर उसे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सक्षम माध्यम बनाया। उनकी संस्कृतनिष्ठ, ओजपूर्ण और मर्यादित भाषा भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता की प्रतीक बन जाती है। इस प्रकार भाषा उनके काव्य में केवल अभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना का संवाहक तत्व बनती है। समकालीन संदर्भ में हरिऔध का काव्य विशेष रूप से प्रासंगिक सिद्ध होता है। वैश्वीकरण, भौतिकतावाद और सांस्कृतिक विघटन के वर्तमान दौर में उनके द्वारा प्रतिपादित नैतिक मूल्य, सांस्कृतिक संतुलन और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व की भावना आज भी मार्गदर्शक भूमिका निभा सकती है। उनका साहित्य आधुनिक समाज को यह संदेश देता है कि प्रगति और आधुनिकता तभी सार्थक हैं, जब वे अपनी सांस्कृतिक जड़ों और नैतिक मूल्यों से जुड़ी हों।

**संदर्भ सूची-**


- अयोध्या सिंह उपाध्याय, हरिऔध. (2011). *प्रियप्रवास*. नागरी प्रचारिणी सभा.
- त्रिपाठी, रामनरेश. (2009). *हिंदी महाकाव्य परंपरा*. भारतीय ज्ञानपीठ.
- द्विवेदी, महावीर प्रसाद. (2008). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. लोकभारती प्रकाशन.
- नंददुलारे वाजपेयी. (2006). *द्विवेदी युग और हिंदी कविता*. साहित्य भवन.
- मिश्र, शिवकुमार. (2012). *द्विवेदी युग और राष्ट्रीय चेतना*. राजकमल प्रकाशन.
- वर्मा, धीरेन्द्र. (2011). *हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ*. वाणी प्रकाशन.
- शुक्ल, रामचंद्र. (2010). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नागरी प्रचारिणी सभा.
- सिंह, बच्चन. (2014). *आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास*. राधाकृष्ण प्रकाशन.

***Manuscript Timeline***
***Submitted :*** *July 27, 2025* ***Accepted :*** *August 10, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# गाँधी जी की दृष्टि में हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं

**डॉ. अश्विनी कृष्णराव राऊत**[1]

**सारांश**

***भा****रतीय स्वतंत्रता आंदोलन केवल राजनीतिक संघर्ष नहीं था, बल्कि वह सांस्कृतिक, सामाजिक और भाषायी पुनर्जागरण की भी प्रक्रिया थी। इस संदर्भ में महात्मा गाँधी का भाषा-चिंतन विशेष महत्त्व रखता है। उन्होंने भाषा को राष्ट्रीय एकता, जनसंपर्क और स्वराज की आधारशिला माना तथा भारतीय भाषाओं—विशेषतः हिन्दी—को राष्ट्रनिर्माण का सशक्त माध्यम बताया। इस अध्ययन का उद्देश्य महात्मा गाँधी की हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति दृष्टि का विश्लेषण करना, राष्ट्रभाषा संबंधी उनके विचारों को समझना तथा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं स्वतंत्र भारत की भाषा-नीति पर उनके प्रभाव का मूल्यांकन करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गाँधी हिन्दी को किसी क्षेत्रीय वर्चस्व की भाषा नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत को जोड़ने वाली जनभाषा मानते थे। वे मातृभाषा में शिक्षा के प्रबल समर्थक थे और अंग्रेज़ी को द्वितीयक स्थान देने के पक्षधर थे। साथ ही, वे प्रांतीय भाषाओं के विकास को भी स्वराज के लिए अनिवार्य मानते थे। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा कांग्रेस की भाषा नीति जैसे प्रयासों से उनके विचार व्यवहार में रूपांतरित हुए। महात्मा गाँधी का भाषा-दर्शन लोकतांत्रिक, समावेशी और आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना से जुड़ा हुआ था। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का उनका प्रयास भारतीय राष्ट्रीय चेतना को सुदृढ़ करने का माध्यम था। वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में भी गाँधी का भाषा-चिंतन भारतीय भाषाओं के संरक्षण और सशक्तिकरण के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।*

*प्रस्तुत शोध ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें गाँधीजी के भाषणों, लेखों, 'हिन्द स्वराज', 'नवजीवन', 'हरिजन' जैसी पत्रिकाओं तथा द्वितीयक साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।*

***मुख्य शब्द :*** *महात्मा गाँधी, हिन्दी, राष्ट्रभाषा, मातृभाषा, स्वराज, भाषा-नीति।*

महात्मा गाँधी सर्वकालिक एवं सर्वदेशीय व्यक्तित्व हैं। वे राजनीति चिंतन एवं दर्शन को नया मोड़ देने वाले सक्रिय राजनीतिज्ञ, सन्त एवं विचारशील चिंतक थे। महात्मा गाँधी के चिंतन का क्षेत्र बहुत व्यापक एवं बहुआयामी है। गांधीजी ने चिंतन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने विचार व्यक्त किए हैं। 21 वर्ष दक्षिण अफ्रीका में बिताकर लौटते हीं महात्मा गाँधी के रूप में एक नए सूरज का उदय भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हुआ।

[1] सहायक प्राध्यापक (अतिथि), गांधी विचारधारा विभाग, राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विद्यापीठ, नागपुर. ईमेल: ashviniraut88888@gmail.com ; मो.- 9960990109, 8329706287

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गाँधी की अग्रणी भूमिका रही है। उन्होंने सत्य और अहिंसा के मार्ग से पूर्ण स्वराज्य और पूर्ण स्वतंत्रता हासिल करने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम को एक उपक्रम के रूप में जोड़ा। गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के मूलरूप के हिस्से में राष्ट्रभाषा का प्रचार-प्रसार यह भी एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है।

महात्मा गाँधी की मातृभाषा गुजराती थी और उन्हें अंग्रेजी भाषा का उच्चकोटि का ज्ञान था परन्तु सभी भारतीय भाषाओं के प्रति उनके मन में विशिष्ट सम्मान की भावना भी थी। गैर हिंदी भाषी होने के बावजूद भी उन्होंने हिंदी भाषा की उर्जा को पहचाना। उनका मानना था कि हिंदी ही आपसी सहयोग, साहचर्य एवं प्रेम की भाषा है जो बोलने, समझने में आसान है एवं इसके जरिये लोगों से जुड़ने में सहजता है। उनके मतानुसार राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में हिंदी ही एकमात्र भाषा है जिसके माध्यम से देश के घर-घर तक पहुँचा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मातृभाषा में बोले, शिक्षा प्राप्त करे, उसमें कार्य करे किन्तु देश में सर्वाधिक बोली जानेवाली हिंदी भाषा भी वह सीखे, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी।

भारत के एक छोर से दुसरे छोर तक हिंदी ने सबको जोड़ने का कार्य किया है। वैसे तो हर भाषा जोड़ने का काम करती है लेकिन हिंदी को स्वाधीनता संग्राम में जन-आंदोलन की भाषा बनाने में महात्मा गांधी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मां, मातृभूमि और मातृभाषा से अटूट स्नेह रखनेवाले व्यक्ति थे महात्मा गांधी। भारतीय स्वतंत्रता के तत्कालीन समय के वे एकमात्र ऐसे राजनीतिक व्यक्ति थे, जिन्होंने भारत की भाषा समस्या, राष्ट्रभाषा पर इतना ध्यान दिया। वे हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए रखने के पक्षधर थे। वे मानते थे की राष्ट्रभाषा के बिना कोई भी राष्ट्र गूँगा हो जाता है। सन 1909 में उनके द्वारा लिखी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में अपनी भाषा-नीति के बारे में स्पष्ट रूप से कहा था कि "सारे हिन्दुस्थान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए।" भारत देश की एक राष्ट्रभाषा होना अनिवार्य है, ताकि भारत अपनी बात बोल सके। हिंदी भाषा को राष्ट्रीय पहचान दिलाने में एक राजनीतिक शख्सियत के रूप में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

महात्मा गाँधी ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में जो भी गतिविधियाँ एक भाषा चिंतक के रूप में की वो सभी भारतीयों को बहुत प्रभावित करती थी। महात्मा गाँधी ने भी तत्परता से हिंदी भाषा को सिखा। फ़रवरी 1916 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापना दिवस मंच पर बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी तथा अन्य गणमान्य व्यक्ति भी थे, महात्मा गाँधी ने हिंदी में भाषण दिया उनका वह भाषण इतना आक्रमक था कि दरभंगा के महाराज मंच से उठकर चले गए। उसी साल दिसम्बर 1916 में लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में उनका भाषण हिंदी में था और उसी अधिवेशन से कांग्रेस की कार्यवाही हिंदी भाषा में लिखी जाने लगी। महात्मा गाँधी समाजसेवा के बारे में अखिल भारतीय सम्मेलन कलकत्ता में अपने विचार निम्म रूप से रखते हैं-

*"सबसे बड़ी समाजसेवा जो हम कर सकते हैं वह यह है कि हम देशी भाषाओं को अपनाएँ, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में उसके स्वाभाविक पद पर प्रतिष्ठित करें और सभी प्रान्त अपना-अपना समस्त कार्य*

*अपनी देशी भाषाओं में तथा राष्ट्र का कार्य हिंदी में प्रारंभ कर दें। हमें तब तक विश्राम नहीं लेना चाहिए जब तक कि हमें देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा नहीं दी जाती।"* (31.12.1917)

इस प्रकार महात्मा गांधी हर मंच पर हिंदी का गौरवगान करते रहे। भारत में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में हो न की अंग्रेजी भाषा में इस संदर्भ में उनके विचार बहुत स्पष्ट थे। वे शिक्षा के संदर्भ में विदेशी माध्यम के कटू विरोधी थे। हजारों व्यक्तियों को अंग्रेजी सिखलाना उन्हें गुलाम बनाना है। उनका मानना था कि विदेशी माध्यम बच्चों पर अनावश्यक दबाव डालने, रटने और नकल करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है तथा उनमें मौलिकता का अभाव पैदा करता है। महात्मा गाँधी अंग्रेजी भाषा के विरोधी नहीं थे बल्कि उनका मानना था कि हम लोग अंग्रेजी भाषा को प्रथम स्थान और मातृभाषा को दूसरा स्थान दे रहे हैं यह गलत है। अंग्रेजी यह विश्व की भाषा है इसलिए उसको प्रथम के जगह दूसरा स्थान मिलना चाहिए। हिंदी भाषा व्यवहार करने में सरल है और हम तो अपनी आम भाषा में ही व्यवहार करेंगे। संसार की समस्त लिपियों में देवनागरी लिपि सबसे अधिक वैज्ञानिक, परिपूर्ण और निर्दोष लिपि है और राष्ट्रीय एकता में भी सहायक है। हिंदी भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है इसलिए भारतीय भाषाओं की लिपि भी एक ही होनी चाहिए, ऐसे महात्मा गाँधी के विचार थे।

महात्मा गांधी के हाथों में 1917-18 में जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर तथा राष्ट्र नेतृत्व गया तभी से भारतीय भाषाओं और विशेषकर हिंदी को सही मायनों में राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त होने लगा। जिस कारण हिंदी और अहिन्दी दोनों क्षेत्रों में जागृति उत्पन्न हुई। 1917 में चम्पारण सत्याग्रह के दौरान गांधीजी बिहार में थे तब उन्होंने दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार-प्रसार का कार्य आरम्भ करने का विचार किया तथा स्वामी सत्यदेव और अपने प्रिय पुत्र देवदास गाँधी को दक्षिण में भेजा। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा 1918 की स्थापना उन्हीं की परिकल्पना का परिणाम है। वे इस संस्था के कार्यकलापों से बराबर सक्रिय रूप में जुड़ें रहे।

20 अक्तूबर, 1917 में गुजरात के भडोंच नामक स्थान पर आयोजित द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में गांधीजी ने स्पष्ट रूप से कहा कि-

*"केवल हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है, हिंदी और उर्दू एक ही है, केवल उनकी शैली में अंतर है।"*

राष्ट्रभाषा, राष्ट्रव्यापिनी होती है, जिसमें सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के एक सूत्र में बाँधने की भावना, राष्ट्र हृदय को आन्दोलित करने तथा राष्ट्रीय गौरव की महत्ता प्रदर्शित करने की असीम शक्ति निहित होती है। महात्मा गांधी के मतानुसार राष्ट्रभाषा का पद ग्रहण करने के लिए किसी भाषा में निम्नांकित गुणों का होना आवश्यक है:-

1. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।
2. यह जरुरी है कि भारत वर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।

3. उस भाषा के द्वारा भारत वर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवहार हो सकना चाहिए।
4. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते हुए क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।

इस प्रकार महात्मा गाँधी के राष्ट्रभाषा के संबंधी अपने विचार व्यक्त करते हैं। 1918 में आयोजित आठवे हिंदी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन में महात्मा गाँधी अध्यक्ष निर्वाचित हुए उन्होंने इस मंच पर बड़ी दृढ़ता के साथ हिंदी का पक्ष रखते हुए कहा कि जब तक हिंदी को राष्ट्रीय सत्र तथा प्रांतीय भाषाओं को जनजीवन में उचित स्थान प्रदान नहीं किया जाता, तब तक स्वराज की सारी बातें व्यर्थ हैं।

महात्मा गाँधी ने हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ाने के लिए 'नवजीवन' और 'हरिजन' पत्रिका निकाली इन पत्रिकाओं के माध्यम से अपने विचार वे प्रस्तुत करते थे। सन् 1921 में 'यंग इंडिया' में प्रकाशित अपने लेख के माध्यम से उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया था कि भारत में हिंदी का अपना भावात्मक एवं राष्ट्रीय महत्त्व है और भारत की स्वतंत्रता के लिए समस्त राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को हिंदी सीखना आवश्यक होगा, जिससे राष्ट्र की सभी कार्यवाहियाँ हिंदी में हीं की जा सके।

महात्मा गाँधी का हिंदी के प्रचार को लेकर देश के दक्षिणी छोर की तरफ जितना ध्यान था, उतना ही पूर्वी छोर की तरफ भी था। गाँधी जी ने मार्च, 1922 में असहयोग आंदोलन को स्थगित किया, लेकिन राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार का उनका कार्य निरंतर जारी रहा। सन 1925 में महात्मा गाँधी की ही प्रेरणा से कांग्रेस के कानपूर अधिवेशन में कांग्रेस की भाषानीति को स्वीकार किया गया।

अब तक तो गांधीजी हिंदी भाषा के सबंध में अपने विचार प्रस्तुत कर रहे थे लेकिन पूर्णरूप से सक्रियता उनकी वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना हिंदी के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से प्रतिफल हुई। उन्होंने इस संस्था से अनेक जन-नेताओं को जोड़ा और हिंदी में कार्य करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित भी किया। परिणाम स्वरूप उनकी प्रेरणा से ही हिन्दीतर भाषा-भाषी प्रदेशों के लोगों ने स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी को सीख लिया और उसे व्यापक जन-संपर्क का माध्यम भी बनाया। सन् 1937 में 'हरिजन' पत्रिका में गांधीजी लिखते हैं-

*"मैंने अपने मन में कहा, गुजराती मेरी मातृभाषा है, पर वह राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। देश के 30वें हिस्सें से अधिक जनसंख्या गुजराती भाषी की नहीं है।"*

इसलिए हिंदी भाषा का राष्ट्र भाषा के रूप में विकास होना आवश्यक है इसके साथ ही महात्मा गाँधी स्वराज के लिए प्रांतीय भाषाओं के विकास पर भी बल देते हैं। प्रांतीय भाषाओं का विकास होने से राजनीतिक रूप से जागरूक सुशिक्षित व्यक्तियों और आम जनता के बीच का अंतर कम होता है। जिस वजह से दोनों वर्ग में सुचारू संप्रेषण की शुरुआत होती है। प्रांतीय भाषाओं का विकास न होने से भाषाओं में शास्त्रीय संज्ञाओं का विकास नहीं होगा। अगर प्रांतीय भाषाओं में शास्त्रीय संज्ञा विकसित नहीं हो पाए तो

आम जनता नए ज्ञान और विचार से वंचित रहेगी परिमाणस्वरूप वह अज्ञानी और विविध प्रकार के बंधनों में जकड़ के रहेगी। बंधनों में बंदिस्त व्यक्ति स्वराज्य के ईमारत में अपना सहयोग नही दे पाएगा। सर्वसामान्य जनताओं को उनके मातृभाषा में स्वराज्य के महत्व को नहीं समझा पाए तो उनका सहाय मिल ही नहीं पाएगा। इसलिए प्रांतीय भाषाओं को समृद्ध करना आवश्यक है ऐसे प्रांतीय भाषाओं के संबंध में महात्मा गाँधी के विचार हैं-

*"दुनिया के सभी देशों में लोग अपनी मातृभाषा का ही प्रयोग करते हैं, ठीक उसी तरह हम हिन्दुस्तानियों को भी राष्ट्रभाषा हिंदी को व्यवहार में लाना होगा। इसके लिए हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करना होगा।"*

मातृभाषा के संबन्ध में 25 अगस्त, 1946 में महात्मा गाँधी लिखते हैं-

*"मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हों- मैं इससे उसी तरह चिपटा रहूँगा, जिस तरह बच्चा आपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है। अगर अंग्रेजी उस जगह को हड़पना चाहती है, जिसकी वह हकदार नहीं है, तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा। वह कुछ लोगों के सीखने की चीज हो सकती है, लाखों-करोंड़ो की नहीं।"*

महात्मा गाँधी द्वारा शुरू किए भाषा विमर्श का प्रभाव स्वतंत्र भारत के भाषा नियोजन पर भी रहा है। 14 सितम्बर सन 1949 ई. को भारतीय संविधान सभा ने हिंदी को राजभाषा बनाने का निर्णय किया तब महात्मा गांधी की इच्छा, अनेक जन-नायकों की भावना और असंख्य भारतीयों की कामना ने मूर्त रूप ग्रहण किया। सही मायने में देखा जाए तो कोई भी देश तब तक स्वतंत्र नहीं कहा जाएगा, जब तक वह अपनी भाषा में नहीं बोलता। यदि हमें महात्मा गांधी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करनी हैं तो हमें उनके स्वप्न, हिंदी भाषा को वह सम्मान दिलानी होगा, जिसके लिए प्रयास महात्मा गाँधी ने किये थे। हिंदी वर्तमान में विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है। लेकिन भारतीय जनता का दुर्भाग्य रहा कि गाँधी के बाद हमे उनके जैसा कोई भारतीय भाषाओं से प्रेम करने वाला या भारतीय नेता नहीं मिला और हिंदी राजभाषा होकर भी अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त नहीं हो सकी।

**निष्कर्ष-**

प्रस्तुत आलेख के समग्र विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि महात्मा गाँधी का भाषा-चिंतन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की वैचारिक संरचना का एक केन्द्रीय स्तंभ था। उनके लिए भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक अस्मिता और लोकतांत्रिक सहभागिता की आधारभूमि थी। गाँधीजी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का आग्रह किसी भाषायी वर्चस्व की भावना से नहीं, बल्कि भारत जैसे बहुभाषी देश में जनसामान्य को जोड़ने वाली एक सहज, सरल और सर्वग्राह्य भाषा की आवश्यकता के संदर्भ में किया। आलेख यह प्रतिपादित करता है कि गाँधी हिन्दी और प्रांतीय भाषाओं के बीच किसी प्रकार का द्वंद्व नहीं मानते थे। वे मातृभाषा में शिक्षा और प्रशासन को स्वराज की अनिवार्य शर्त मानते थे, क्योंकि उनके अनुसार विदेशी भाषा के माध्यम से न तो जनजागरण संभव है और न ही व्यापक

राजनीतिक चेतना का निर्माण। हिन्दी को राष्ट्रभाषा और प्रांतीय भाषाओं को जनजीवन की भाषाएँ मानकर उन्होंने एक संतुलित एवं समावेशी भाषा-नीति का प्रतिपादन किया, जो भारतीय विविधता के भीतर एकता को सुदृढ़ करती है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा 'नवजीवन' और 'हरिजन' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से गाँधी ने अपने भाषा-विचारों को व्यवहारिक रूप प्रदान किया। उनके प्रयासों का ही परिणाम था कि हिन्दी स्वतंत्रता आंदोलन की जनभाषा बनी और स्वतंत्र भारत की भाषा-नीति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। संविधान सभा द्वारा हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया जाना इसी वैचारिक परंपरा की परिणति है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महात्मा गाँधी का भाषा-दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना स्वतंत्रता आंदोलन के समय था। भारतीय भाषाओं के सम्मान, संरक्षण और व्यवहारिक उपयोग के बिना सच्चा लोकतंत्र और आत्मनिर्भर राष्ट्र संभव नहीं है। अतः गाँधी के भाषा-विचारों को केवल ऐतिहासिक संदर्भ में नहीं, बल्कि समकालीन भारत की भाषायी चुनौतियों के समाधान के रूप में भी देखा जाना चाहिए।

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची-**


- कुंभार, नागोराव. (2012). *महात्मा गांधीजींचे सामाजिक तत्वज्ञान*. लातूर: अरुणा प्रकाशक.
- कुमार, अरुण. (2018). भाषा नीति के सकारात्मक पक्ष. *अंतिम जन*, अंक–2, 1–12. ISSN 2278-1633.
- गाँधी, एम. के. (1946). *रचनात्मक कार्यक्रम*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन.
- चौधरी, सूर्यवंशी (संपा.), & चौधरी, राम (सह-संपा.). (2017, अक्टूबर). *राष्ट्रभाषा*. वर्धा: राष्ट्रभाषा प्रेस.
- चौधरी, सूर्यवंशी (संपा.), चौधरी, राम, & वडतकर, हर्षा (सह-संपा.). (2018, जनवरी). *राष्ट्रभाषा*. वर्धा: राष्ट्रभाषा प्रेस.
- जोगी, सुनील. (2001). *राजभाषा हिंदी और उसका स्वरूप*. नई दिल्ली: आधुनिक प्रकाशन.
- तिवारी, भोलानाथ. (2006). *राजभाषा हिंदी*. दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.
- पन्त, कैलाशचन्द्र (प्र. संपादक), केडिया, सुशील कुमार (प्र. संपादक), & खत्री, सुनीता (संपा.). (2019, सितम्बर). *अक्षरा: साहित्य की मासिकी*. RNI: 38470/83, ISSN: 2456-7167.
- पन्त, कैलाशचन्द्र (प्र. संपादक), केडिया, सुशील कुमार (प्र. संपादक), & खत्री, सुनीता (संपा.). (2019, अक्टूबर). *अक्षरा: साहित्य की मासिकी (गाँधी विशेषांक)*. RNI: 38470/83, ISSN: 2456-7167.

- पन्त, कैलाशचन्द्र (प्र. संपादक), केडिया, सुशील कुमार (प्र. संपादक), & खत्री, सुनीता (संपा.). (2019, नवंबर). *अक्षरा: साहित्य की मासिकी*. RNI: 38470/83, ISSN: 2456-7167।
- शर्मा, बी. एम., शर्मा, रामकृष्ण दत्त, & शर्मा, सविता. (2007). *गाँधी दर्शन के विविध आयाम*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
- श्रीवास्तव, विनय. (2009). *राजभाषा हिंदी: दशा और दिशा*. दिल्ली: अर्चना पब्लिकेशन।
- सिंह, शंकर दयाल. (2004). *हिंदी: राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा*. नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशक।

***Manuscript Timeline***
***Submitted :*** *July 29, 2025* ***Accepted :*** *August 10, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# सूक्ष्म वित्त के माध्यम से वित्तीय समावेशन तथा भारत के ग्रामीण विकास में इसकी भूमिका

**डॉ. देवेंद्र मौर्य**[1]

**सारांश**

*यह अध्ययन भारत में सूक्ष्म वित्त, वित्तीय समावेशन और ग्रामीण विकास के आपसी संबंधों का एक समग्र और आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच आर्थिक अवसरों की असमानता लंबे समय से बनी हुई है, सूक्ष्म वित्त को इस अंतर को कम करने के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा गया है। यह लेख सूक्ष्म वित्त की ऐतिहासिक विकास यात्रा का विवेचन करता है, जो सहकारी आंदोलनों और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा संचालित स्वयं सहायता समूहों से आरंभ होकर, एसएचजी–बैंक लिंकेज कार्यक्रम तथा दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन जैसी संस्थागत पहलों के माध्यम से विस्तृत हुई। अध्ययन यह दर्शाता है कि सूक्ष्म वित्त ने ऋण, बचत और बीमा जैसी औपचारिक वित्तीय सेवाओं तक पहुँच को व्यापक बनाया है, विशेष रूप से ग्रामीण और अर्ध-ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं के लिए। इस पहुँच ने न केवल घरेलू आर्थिक स्थिरता को सुदृढ़ किया है, बल्कि उद्यमशीलता, आय-सृजन और सामाजिक सशक्तिकरण को भी बढ़ावा दिया है। वर्ष 2024 तक उपलब्ध आँकड़ों, सरकारी रिपोर्टों और शैक्षणिक साहित्य के आधार पर लेख यह इंगित करता है कि भारत में वित्तीय समावेशन में उल्लेखनीय प्रगति हुई है और सूक्ष्म वित्त क्षेत्र का आकार निरंतर बढ़ा है। उत्तर प्रदेश, बिहार और केरल जैसे राज्यों के उदाहरण यह स्पष्ट करते हैं कि जब सूक्ष्म ऋण को कौशल प्रशिक्षण और संस्थागत समर्थन के साथ जोड़ा जाता है, तो इसके विकासात्मक प्रभाव और अधिक गहरे हो जाते हैं। इसके साथ ही, यह अध्ययन सूक्ष्म वित्त क्षेत्र से जुड़ी चुनौतियों—जैसे अत्यधिक कर्ज, ऊँची ब्याज दरें, सामाजिक उद्देश्यों से विचलन और बाहरी आर्थिक व पर्यावरणीय जोखिम—पर भी ध्यान देता है। निष्कर्षतः, लेख एक संतुलित, उत्तरदायी और टिकाऊ सूक्ष्म वित्त ढाँचे की आवश्यकता पर बल देता है, जो भारत के दीर्घकालिक ग्रामीण विकास लक्ष्यों में प्रभावी योगदान दे सके।*

***मुख्य शब्द :*** *सूक्ष्म वित्त, वित्तीय समावेशन, ग्रामीण विकास, स्वयं सहायता समूह, टिकाऊ आजीविका, महिला सशक्तिकरण, डिजिटल रूपांतरण, अत्यधिक कर्ज, हरित वित्त, भारत।*

[1] शोध सहायक, गांधी एवं शांति अध्ययन , म.गां.अं.हिं. विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)- 442001.
फोन न.-6388755286; ईमेल- devendraboss108@gmail.com

**परिचय-**

भारत की आर्थिक संरचना तीव्र शहरी विकास और व्यापक ग्रामीण पिछड़ेपन के बीच एक गहरे द्वैत को प्रतिबिंबित करती है। यद्यपि हाल के दशकों में आर्थिक वृद्धि, डिजिटलीकरण और वित्तीय नवाचारों ने शहरी भारत में उल्लेखनीय परिवर्तन लाए हैं, ग्रामीण क्षेत्रों का एक बड़ा हिस्सा अब भी सीमित आय-स्रोतों, अस्थिर आजीविकाओं और औपचारिक वित्तीय सेवाओं तक अपर्याप्त पहुँच से जूझ रहा है। इस संदर्भ में, समान और समावेशी विकास की अवधारणा केवल नीतिगत विमर्श का विषय नहीं, बल्कि एक केंद्रीय संरचनात्मक चुनौती बन जाती है। भारत जैसे देश में, जहाँ जनसंख्या का एक बड़ा भाग ग्रामीण और असंगठित क्षेत्र पर निर्भर है, वित्तीय समावेशन की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। पारंपरिक बैंकिंग प्रणाली ऐतिहासिक रूप से ग्रामीण गरीबों, छोटे किसानों और स्वरोज़गार करने वाले वर्गों की आवश्यकताओं को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं कर पाई है। इसी पृष्ठभूमि में सूक्ष्म वित्त एक वैकल्पिक और पूरक व्यवस्था के रूप में उभरता है।

सूक्ष्म वित्त केवल लघु ऋण उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह औपचारिक वित्तीय प्रणाली से बहिष्कृत समुदायों को बचत, बीमा और वित्तीय अनुशासन से जोड़ने का माध्यम भी है। भारतीय संदर्भ में इसका विकास स्वयं सहायता समूहों, गैर-सरकारी संगठनों, सहकारी संस्थाओं और बैंकिंग तंत्र के सहयोग से हुआ है। एसएचजी–बैंक लिंकेज कार्यक्रम तथा दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) जैसी पहलें सूक्ष्म वित्त को ग्रामीण विकास की रणनीति से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ती हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य केवल आय-वृद्धि नहीं, बल्कि सामाजिक सशक्तिकरण, विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को बढ़ाना है। ग्रामीण विकास की अवधारणा इस अध्ययन में बहुआयामी रूप में ग्रहण की गई है, जिसमें आर्थिक उन्नयन के साथ-साथ सामाजिक सशक्तिकरण, आजीविका सुरक्षा और संस्थागत क्षमता निर्माण भी सम्मिलित हैं। इस दृष्टि से, सूक्ष्म वित्त एक उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है, जो आय-सृजन गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ समुदाय-आधारित विकास को भी सुदृढ़ करता है। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित वित्तीय समावेशन सूचकांक में हाल के वर्षों में दर्ज की गई वृद्धि इस तथ्य की पुष्टि करती है कि वित्तीय सेवाओं की पहुँच और उपयोग में सुधार हुआ है, जिसमें सूक्ष्म वित्त की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

फिर भी, सूक्ष्म वित्त का विस्तार कई संरचनात्मक चुनौतियों के साथ जुड़ा रहा है। अत्यधिक ऋणग्रस्तता, अपेक्षाकृत ऊँची ब्याज दरें, क्षेत्रीय असंतुलन और कुछ मामलों में सामाजिक उद्देश्यों से विचलन जैसी समस्याएँ इसके विकासात्मक प्रभावों पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। इसके अतिरिक्त, आर्थिक मंदी, जलवायु-संबंधी जोखिम और नीतिगत हस्तक्षेप जैसे बाहरी कारक भी सूक्ष्म वित्त प्रणाली की स्थिरता को प्रभावित करते हैं। अतः सूक्ष्म वित्त को न तो एक सर्वसमाधान के रूप में देखा जा सकता है और न ही इसकी भूमिका को केवल आलोचनात्मक दृष्टि से खारिज किया जा सकता है।

इसी संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन भारत में सूक्ष्म वित्त, वित्तीय समावेशन और ग्रामीण विकास के बीच विद्यमान संबंधों का एक संतुलित और आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शैक्षणिक साहित्य, सरकारी

प्रतिवेदनों और 2024 तक उपलब्ध अनुभवजन्य आँकड़ों के आधार पर यह लेख सूक्ष्म वित्त की उपलब्धियों, सीमाओं और भावी संभावनाओं का मूल्यांकन करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि किन परिस्थितियों में सूक्ष्म वित्त ग्रामीण विकास के लक्ष्यों में प्रभावी योगदान दे सकता है और किन क्षेत्रों में नीतिगत तथा संस्थागत सुधार अपेक्षित हैं।

**वित्तीय समावेशन और सूक्ष्म वित्त-**

वित्तीय समावेशन, सूक्ष्म वित्त तथा ग्रामीण विकास के मध्य अंतर्संबंध को सम्यक रूप से समझने के लिए सर्वप्रथम इन मूल अवधारणाओं का विश्लेषण आवश्यक है। वित्तीय समावेशन से आशय उस प्रक्रिया से है, जिसके अंतर्गत समाज के वंचित एवं हाशिए पर स्थित वर्गों को समयोचित एवं पर्याप्त ऋण, बचत, बीमा तथा भुगतान संबंधी सेवाओं तक प्रभावी पहुँच सुनिश्चित की जाती है। यह अवधारणा केवल वित्तीय सेवाओं की उपलब्धता तक सीमित नहीं है, बल्कि उनकी निरंतरता, वहनीयता एवं उपयुक्तता पर भी बल देती है। भारतीय संदर्भ में वित्तीय समावेशन का महत्व विशेष रूप से ग्रामीण जनसंख्या के लिए अत्यधिक है, क्योंकि ऐतिहासिक रूप से इन क्षेत्रों में औपचारिक बैंकिंग सेवाओं की पहुँच सीमित रही है। इसी कारण ग्रामीण समुदायों को प्रायः अनौपचारिक एवं महँगे वित्तीय स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ा है, जिसने उनकी आर्थिक असुरक्षा को और गहरा किया है। इस पृष्ठभूमि में, भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) वित्तीय समावेशन को इस प्रकार परिभाषित करता है-"सभी व्यक्तियों एवं व्यवसायों को, उनकी आय अथवा आकार की परवाह किए बिना, वहनीय लागत पर वित्तीय सेवाएँ उपलब्ध कराने की निरंतर प्रक्रिया।" इस प्रकार, वित्तीय समावेशन की अवधारणा सूक्ष्म वित्त के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है, क्योंकि सूक्ष्म वित्त संस्थाएँ ग्रामीण एवं वंचित वर्गों तक वित्तीय सेवाओं की पहुँच बढ़ाने का एक व्यवहारिक एवं प्रभावी माध्यम प्रदान करती हैं। यही अंतर्संबंध ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को सशक्त आधार प्रदान करता है, जहाँ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का प्रमुख प्रेरक तत्व बन जाती है।

यह प्रणाली प्रायः समूह-आधारित ऋण, बिना जमानत ऋण तथा सामाजिक जमानत जैसे सिद्धांतों पर आधारित होती है। के. जी. करमाकर ने अपनी पुस्तक "Microfinance in India" में यह प्रतिपादित किया गया है कि सूक्ष्म वित्त, वंचित वर्गों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाकर वित्तीय संसाधनों के लोकतंत्रीकरण की दिशा में एक प्रभावी माध्यम के रूप में कार्य करता है। सुरजीत कुमार भगवती की पुस्तक "Micro Finance for Rural India: Institutional Arrangements and Policies" के निष्कर्षों के अनुरूप, सूक्ष्म वित्त संस्थाएँ स्थानीय आवश्यकताओं और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को अनुकूलित करती हैं। विशेषतः कृषि-प्रधान ग्रामीण क्षेत्रों में ये संस्थाएँ फसली चक्रों के अनुरूप लचीली पुनर्भुगतान व्यवस्थाएँ अपनाती हैं, जिससे ऋणग्राहकों पर अनावश्यक वित्तीय दबाव कम होता है और ऋण की उपयोगिता बढ़ती है।

वहीं दूसरी ओर, ग्रामीण विकास एक समग्र एवं बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य आर्थिक प्रगति, सामाजिक न्याय तथा पर्यावरणीय स्थिरता के माध्यम से ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में निरंतर सुधार करना है। सुधांशु कुमार दास द्वारा संपादित "Micro Finance and Rural Development in India" में

यह स्पष्ट किया गया है कि सूक्ष्म वित्त आजीविका सुदृढ़ीकरण, गरीबी में कमी तथा ग्रामीण उद्यमिता के संवर्धन के माध्यम से ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। सूक्ष्म वित्त और ग्रामीण विकास के मध्य यह अंतर्संबंध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है-सूक्ष्म ऋण तक पहुँच ग्रामीण परिवारों को कृषि निवेश बढ़ाने, लघु उद्यम स्थापित करने अथवा आय के स्रोतों में विविधता लाने में सक्षम बनाती है। परिणामस्वरूप स्थानीय अर्थव्यवस्था को गति मिलती है और ग्रामीण क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता एवं सतत विकास की प्रक्रिया को बल प्राप्त होता है।

कुरुक्षेत्र पत्रिका में प्रकाशित अनुभवजन्य ढाँचे ग्रामीण वित्त में नवाचार के महत्व को विशेष रूप से रेखांकित करते हैं। उदाहरणस्वरूप, जुलाई-2024 के अंक में प्रकाशित एक लेख यह विवेचना करता है कि किस प्रकार स्टार्टअप्स और सूक्ष्म वित्त संस्थाओं का अभिसरण ग्रामीण नवाचार को प्रोत्साहित कर रहा है। इसमें यह उल्लेख किया गया है कि डिजिटल ऋण मंचों (Digital Lending Platforms) जैसी तकनीकी एकीकरण प्रक्रियाओं ने वित्तीय सेवाओं की पहुँच को दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों तक विस्तारित करने में निर्णायक भूमिका निभाई है। इसी क्रम में, India Microfinance Review (FY 2023–24) यह दर्शाता है कि संयुक्त देयता समूहों (Joint Liability Groups–JLGs) के माध्यम से वित्तीय समावेशन को उल्लेखनीय बढ़ावा मिला है तथा मार्च 2024 तक इनके ऋण पोर्टफोलियो में पर्याप्त वृद्धि दर्ज की गई है।

सैद्धांतिक दृष्टि से, अमर्त्य सेन का 'क्षमता दृष्टिकोण' (Capability Approach) इस संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। सूक्ष्म वित्त व्यक्तियों की उन क्षमताओं का विस्तार करता है, जिनके माध्यम से वे अपने लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं सामाजिक सुरक्षा जैसे मूल्यवान कार्य-सम्पादन (Functioning's) को प्राप्त कर सकते हैं। ग्रामीण भारत में यह प्रभाव विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जहाँ सूक्ष्म बीमा (Micro-insurance) जैसे उत्पाद ग्रामीण परिवारों को आकस्मिक आर्थिक झटकों से बचाने में सहायक सिद्ध होते हैं। MFI Pulse Report के आँकड़ों के अनुसार, जून 2024 तक सूक्ष्म वित्त क्षेत्र ने लगभग 6 करोड़ ऋणग्राहकों को सेवाएँ प्रदान कीं, जिनमें से लगभग 80 प्रतिशत ऋण वितरण ग्रामीण क्षेत्रों में केंद्रित रहा।

इसके बावजूद, इस वैचारिक एवं व्यवहारिक ढाँचे में कुछ चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। इनमें 'मिशन ड्रिफ्ट' की समस्या प्रमुख है, जहाँ कुछ सूक्ष्म वित्त संस्थाएँ सामाजिक प्रभाव की अपेक्षा लाभ अधिकतमकरण को प्राथमिकता देने लगती हैं-जैसा कि वर्ष 2024 में डिजिटल प्रौद्योगिकियों और सूक्ष्म वित्त पर किए गए अध्ययनों में इंगित किया गया है। तथापि, समग्र रूप से देखा जाए तो वित्तीय समावेशन और ग्रामीण विकास के संदर्भ में सूक्ष्म वित्त की वैचारिक संगति इसे 'समावेशी ग्रामीण विकास' की आधारशिला के रूप में स्थापित करती है।

**भारत में सूक्ष्म वित्त का ऐतिहासिक विकास-**

भारत में सूक्ष्म वित्त की विकास यात्रा अनुकूलन, नवाचार तथा नीतिगत रूपांतरण की एक निरंतर प्रक्रिया का द्योतक है, जो समावेशी विकास के प्रति राष्ट्र की प्रतिबद्धता को प्रतिबिंबित करती है। इसकी

वैचारिक एवं संस्थागत जड़ें बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में प्रारंभ हुए 'सहकारी आंदोलन' में निहित हैं, तथापि आधुनिक अर्थों में सूक्ष्म वित्त को वास्तविक गति 1970 के दशक में प्राप्त हुई, जब बांग्लादेश में विकसित 'ग्रामीण बैंक मॉडल' को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप ढालने के प्रयोग आरंभ किए गए। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की ग्रामीण ऋण व्यवस्था मुख्यतः राष्ट्रीयकृत बैंकों एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (Regional Rural Banks–RRBs) पर आधारित रही। यद्यपि इन संस्थानों ने ग्रामीण क्षेत्रों में औपचारिक वित्तीय पहुँच का विस्तार किया, तथापि उनकी पहुँच एवं प्रभावशीलता सीमित बनी रही। इस पृष्ठभूमि में, वर्ष 1978 में प्रारंभ किया गया 'समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम' (Integrated Rural Development Program –IRDP) रियायती एवं अनुदान-आधारित ऋण उपलब्ध कराने का एक महत्त्वाकांक्षी प्रयास था। किंतु उच्च ऋण-अनुत्पादन, प्रशासनिक अक्षमताओं एवं भ्रष्टाचार जैसी संरचनात्मक समस्याओं के कारण यह कार्यक्रम अपेक्षित परिणाम देने में असफल सिद्ध हुआ।

1980 के दशक में सूक्ष्म वित्त के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला। इस कालखंड में सेवा (SEWA) तथा मायराडा (MYRADA) जैसे गैर-सरकारी संगठनों ने स्वयं सहायता समूह (Self-Help Group–SHG) मॉडल को विकसित एवं प्रोत्साहित किया। इन संगठनों ने समूह-आधारित बचत एवं ऋण प्रणालियों को बैंकों से जोड़कर एक ऐसी वैकल्पिक ऋण व्यवस्था की नींव रखी, जो स्थानीय आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील तथा सामाजिक रूप से उत्तरदायी सिद्ध हुई।

भारत में सूक्ष्म वित्त के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ वर्ष 1992 में तब आया, जब राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) द्वारा स्वयं सहायता समूह–बैंक लिंकेज कार्यक्रम (SHG–BLP) का शुभारंभ किया गया। इस पहल ने सूक्ष्म वित्त को एक संस्थागत एवं औपचारिक ढाँचा प्रदान किया तथा विशेष रूप से 'महिला स्वयं सहायता समूहों' को केंद्र में रखते हुए वित्तीय समावेशन को सुदृढ़ किया। 2000 के दशक के प्रारंभ में सूक्ष्म वित्त क्षेत्र में 'व्यावसायीकरण' की प्रक्रिया तीव्र हुई, जिसके परिणामस्वरूप ' Swayam Krishi Sangam Microfinance' जैसी लाभ-उन्मुख सूक्ष्म वित्त संस्थाओं (MFIs) का उदय हुआ। अमित के. भंडारी की पुस्तक "Microfinance, Risk-taking Behaviour and Rural Livelihood" के अनुसार, इस परिवर्तन ने जहाँ सूक्ष्म वित्त के विस्तार और पैमाने को बढ़ाया, वहीं अत्यधिक जोखिम-ग्रहण, ऋण अति-वितरण तथा सामाजिक उद्देश्यों से विचलन जैसी चुनौतियों को भी जन्म दिया। इन अंतर्निहित जोखिमों का चरम रूप वर्ष 2010 के आंध्र प्रदेश संकट में देखने को मिला, जहाँ अत्यधिक ऋण वितरण और कठोर वसूली पद्धतियों ने व्यापक सामाजिक असंतोष को जन्म दिया। इस संकट के पश्चात, भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) द्वारा 2011 में 'मालेगाम समिति' का गठन किया गया, जिसने ब्याज दरों, ऋण आकार तथा संचालन मानकों पर नियंत्रण स्थापित कर नियामक सुधारों की दिशा निर्धारित की।

वर्ष 2014 के पश्चात, भारत सरकार ने वित्तीय समावेशन को विकास नीति के केंद्र में रखते हुए 'प्रधानमंत्री जन-धन योजना' जैसी पहलों को गति प्रदान की। इस योजना के अंतर्गत वर्ष 2024 तक लगभग 55.98 करोड़ बैंक खाते खोले गए, जिनमें से एक बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित था। 2020 से 2024 के

कालखंड में डिजिटल प्रौद्योगिकी ने सूक्ष्म वित्त क्षेत्र को निर्णायक रूप से रूपांतरित किया। कोविड-19 महामारी के दौरान इस क्षेत्र की लचीलापन क्षमता की वास्तविक परीक्षा हुई, जहाँ सूक्ष्म वित्त संस्थाओं ने ऋण स्थगन (moratorium) तथा डिजिटल माध्यमों से ऋण वितरण की व्यवस्थाएँ अपनाईं। भारत माइक्रोफाइनेंस रिपोर्ट-2024 के अनुसार, इस क्षेत्र ने उल्लेखनीय पुनरुत्थान दर्ज किया और दिसंबर 2024 तक इसका कुल ऋण पोर्टफोलियो बढ़कर लगभग Rs.3.48 लाख करोड़ तक पहुँच गया।

सूक्ष्म वित्त की इस विकास यात्रा में मानवीय अनुभवों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उदाहरणस्वरूप, 1990 के दशक में तमिलनाडु के स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं को सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देने, सामूहिक सौदेबाज़ी के माध्यम से बेहतर मजदूरी की माँग करने तथा स्थानीय स्तर पर नेतृत्व विकसित करने में सक्षम बनाया। वर्ष 2024 तक के आँकड़े यह संकेत देते हैं कि NBFC–MFIs का बाज़ार में सबसे बड़ा हिस्सा रहा है, जो यह दर्शाता है कि नियामक नियंत्रणों के साथ-साथ व्यावसायीकरण भी अपेक्षाकृत सफल सिद्ध हुआ है।

इस प्रकार, जमीनी स्तर पर हुए प्रयोगों से लेकर एक सुव्यवस्थित एवं विनियमित उद्योग के रूप में विकसित होने तक की यह प्रक्रिया सूक्ष्म वित्त की अनुकूलनशीलता को प्रदर्शित करती है और ग्रामीण उत्थान में इसकी केन्द्रीय भूमिका के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।

**प्रमुख सहभागी एवं पहलें-**

भारत का सूक्ष्म वित्त परिदृश्य एक 'सहयोगात्मक एवं बहु-हितधारक पारितंत्र' के रूप में विकसित हुआ है, जिसमें सरकार, सूक्ष्म वित्त संस्थाएँ (MFIs), बैंक तथा गैर-सरकारी संगठन (NGOs) सम्मिलित रूप से कार्यरत हैं। इस पारितंत्र में ग्रामीण विकास मंत्रालय की भूमिका केंद्रीय रही है, जिसके अंतर्गत वर्ष 2011 में प्रारंभ की गई दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) का उद्देश्य गरीब ग्रामीण परिवारों को स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से संगठित करना रहा है। वर्ष 2024 तक, DAY-NRLM के अंतर्गत 80 लाख से अधिक स्वयं सहायता समूहों का गठन किया जा चुका था, जिनसे लगभग 9 करोड़ महिलाएँ जुड़ी हुई थीं तथा जिनके माध्यम से Rs.20,000 करोड़ से अधिक की सामुदायिक निधि का सृजन हुआ। यद्यपि प्रत्यक्ष डिजिटल स्रोतों तक पहुँच में तकनीकी सीमाएँ रही हैं, तथापि द्वितीयक सरकारी एवं शोध रिपोर्टें आजीविका संवर्धन में इस कार्यक्रम के व्यापक प्रभाव की पुष्टि करती हैं।

ग्रामीण वित्त के शीर्ष संस्थान के रूप में राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD), SHG–बैंक लिंकेज कार्यक्रम (SHG–BLP) का नेतृत्वकर्ता रहा है। मार्च 2024 तक, इस कार्यक्रम के अंतर्गत लगभग 1.2 करोड़ स्वयं सहायता समूहों को बैंकों से जोड़ा गया तथा उनके माध्यम से लगभग Rs.1.5 लाख करोड़ का ऋण वितरण किया गया। "Micro Finance and India's Rural Economy" में निहित विश्लेषण के अनुसार, NABARD की भूमिका केवल ऋण प्रवाह तक सीमित नहीं है, बल्कि वह क्षमता

निर्माण, संस्थागत सुदृढ़ीकरण तथा पुनर्वित्त (Refinancing) के माध्यम से सूक्ष्म वित्त तंत्र को स्थायित्व प्रदान करता है।

निजी क्षेत्र की सूक्ष्म वित्त संस्थाएँ-जैसे 'बंधन' एवं 'उज्जीवन' ने संयुक्त देयता समूहों (Joint Liability Groups–JLGs) पर केंद्रित रणनीतियों के माध्यम से अपने परिचालन का व्यापक विस्तार किया है। '60dB MFI Index 2024' के अनुसार, इन संस्थाओं के हस्तक्षेपों से ग्राहकों के आय स्तर, वित्तीय सुरक्षा तथा सामाजिक सशक्तिकरण में सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हुआ है। वहीं, भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) इस क्षेत्र के नियामक के रूप में कार्य करते हुए प्राथमिकता क्षेत्र ऋण (Priority Sector Lending) लक्ष्यों की पूर्ति तथा उपभोक्ता संरक्षण सुनिश्चित करता है।

इनके अतिरिक्त, प्रधानमंत्री जन-धन योजना (PMJDY), सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों (MSME) को प्रोत्साहित करने हेतु मुद्रा योजना (MUDRA Yojana) तथा अनुसूचित जाति/जनजाति एवं महिला उद्यमियों के लिए स्टैंड-अप इंडिया जैसी पहलें सूक्ष्म वित्त पारितंत्र को और अधिक सुदृढ़ बनाती हैं।

वर्ष 2023–24 के आँकड़े यह संकेत देते हैं कि बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में सूक्ष्म वित्त तक समान्य लोगों की पहुँच उल्लेखनीय रूप से बढ़ी है, जहाँ ग्रामीण ऋण वृद्धि दर लगभग 15 प्रतिशत दर्ज की गई। इस प्रकार, सरकार, वित्तीय संस्थानों और समुदाय-आधारित संगठनों के बीच विकसित यह सहयोगात्मक ढाँचा सूक्ष्म वित्त की पहुँच, प्रभावशीलता और दीर्घकालिक प्रासंगिकता को प्रदर्शित करता है।

**ग्रामीण विकास पर प्रभाव-**

सूक्ष्म वित्त ने ग्रामीण भारत पर आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय तीनों स्तरों पर गहरा प्रभाव डाला है। आर्थिक दृष्टि से इसके प्रभावों में आय-वृद्धि प्रमुख है; वर्ष 2024 में किए गए एक अध्ययन के अनुसार, सूक्ष्म ऋणों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में पारिवारिक आय में लगभग 20–30 प्रतिशत तक की वृद्धि दर्ज की गई। सामाजिक स्तर पर, महिला सशक्तिकरण इसका एक केंद्रीय आयाम रहा है; विश्व बैंक की रिपोर्टों के अनुसार, स्वयं सहायता समूहों (SHGs) ने महिलाओं की निर्णय-निर्माण क्षमता और पारिवारिक तथा सामुदायिक स्तर पर उनकी सहभागिता को सुदृढ़ किया है। इसी क्रम में, *India Microfinance Review* के वर्ष 2024 तक उपलब्ध आँकड़े यह संकेत देते हैं कि संयुक्त देयता समूहों (JLGs) से जुड़े गाँवों में गरीबी के स्तर में उल्लेखनीय कमी आई है।

**चुनौतियाँ एवं आलोचनाएँ-**

भारत में वित्तीय समावेशन और ग्रामीण विकास में सूक्ष्म वित्त की उल्लेखनीय प्रगति और योगदान के बावजूद, विशेष रूप से हाल के वर्षों में, यह क्षेत्र निरंतर चुनौतियों और तीव्र आलोचनाओं का सामना करता रहा है। वर्ष 2025 तक सूक्ष्म वित्त उद्योग का सकल ऋण पोर्टफोलियो उल्लेखनीय रूप से विस्तारित हुआ है, तथापि संरचनात्मक कमजोरियों के कारण इस क्षेत्र में तनाव भी बढ़ा है। मार्च 2025 तक सकल गैर-निष्पादित परिसंपत्तियाँ (Gross Non-Performing Assets–NPAs) लगभग 16 प्रतिशत तक पहुँच गईं, जो वर्ष

2024 के 8.8 प्रतिशत स्तर से लगभग दोगुनी हैं। यह गिरावट अनेक परस्पर-संबद्ध कारकों का परिणाम है, जो इस क्षेत्र की स्थिरता तथा ग्रामीण गरीबों के लिए इसके कथित लाभों को कमजोर करती हैं।

सूक्ष्म वित्त के विरुद्ध सबसे प्रमुख आलोचनाओं में ऋणग्रस्तता की अत्यधिक वृद्धि (Over-indebtedness) शामिल है। आंध्र प्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में अनेक ग्रामीण परिवार एक साथ कई स्रोतों जैसे-औपचारिक सूक्ष्म वित्त संस्थाओं, NBFC–MFIs, लघु वित्त बैंकों तथा अनौपचारिक साहूकारों से ऋण लेते हैं, ताकि पूर्व ऋणों का पुनर्भुगतान कर सकें, जिससे एक दुष्चक्रात्मक ऋण-जाल निर्मित हो जाता है। यह स्थिति आक्रामक ऋण वितरण नीतियों से और अधिक गंभीर हो गई है, जहाँ संस्थाएँ विवेकपूर्ण जोखिम मूल्यांकन की अपेक्षा ऋण मात्रा बढ़ाने को प्राथमिकता देती हैं। विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार, कई मामलों में ऋणग्राही पुराने ऋणों की अदायगी हेतु नए ऋण लेने को विवश होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कुछ परिवारों पर ऋण-भार उनकी कुल घरेलू आय के 50 प्रतिशत से भी अधिक हो जाता है। संयुक्त देयता समूह (Joint Liability Group–JLG) मॉडल, जो सामूहिक उत्तरदायित्व के लिए प्रभावी माना जाता है, व्यापक आर्थिक झटकों की स्थिति में कमजोर पड़ जाता है, क्योंकि ऐसे समय में सामाजिक जमानत की अवधारणा निष्प्रभावी हो जाती है।

उच्च ब्याज दरें भी इस क्षेत्र में विवाद का एक केंद्रीय विषय बनी हुई हैं। यद्यपि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी मास्टर निर्देशों (2022 में अद्यतन तथा 2025 में पुनः सुदृढ़) के अंतर्गत विनियमन किया गया है, तथापि NBFC–MFIs द्वारा वसूल की जाने वाली प्रभावी ब्याज दरें अब भी लगभग 20–26 प्रतिशत के बीच रहती हैं, जो पारंपरिक बैंक ऋणों (8–12 प्रतिशत) की तुलना में कहीं अधिक हैं। इस मॉडल के आलोचकों का तर्क है कि ऐसी दरें सूक्ष्म वित्त को एक विकासात्मक साधन की अपेक्षा साहूकारी व्यवस्था के अधिक समीप ले जाती हैं और गरीबी उन्मूलन के बजाय ऋण- ग्राहकों को गरीबी के चक्र में फँसाए रखती हैं। वर्ष 2010 के आंध्र प्रदेश संकट, जहाँ कथित रूप से जबरन वसूली प्रथाओं को ऋण-ग्राहक आत्महत्याओं से जोड़ा गया, की प्रतिध्वनि आज भी समकालीन विमर्श में सुनाई देती है। हाल के वर्षों में कर्नाटक में सामने आए प्रकरण, जिनके परिणामस्वरूप 2024 का माइक्रो लोन और स्मॉल लोन (जबरन कार्रवाई की रोकथाम) विधेयक प्रस्तुत किया गया, इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि कठोर वसूली पद्धतियाँ, पारदर्शिता का अभाव तथा शोषणकारी व्यवहार आज भी इस क्षेत्र की गंभीर समस्याएँ बनी हुई हैं।

आर्थिक तथा बाह्य झटकों ने इन कमजोरियों को और अधिक तीव्र कर दिया है। यद्यपि सूक्ष्म वित्त क्षेत्र में प्रत्येक 3–5 वर्षों में चक्रीय दबाव देखने को मिलता रहा है, तथापि वर्ष 2023 के पश्चात उत्पन्न कारकों जैसे आर्थिक मंदी (वर्ष 2024–25 में GDP वृद्धि दर का घटकर लगभग 6.4 प्रतिशत रह जाना), प्राकृतिक आपदाएँ (बाढ़, तीव्र ताप तरंगें), चुनाव-संबंधी व्यवधान तथा ऋण माफी से जुड़े राजनीतिक आश्वासन ने ऋण पुनर्भुगतान क्षमता पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। कुछ राज्यों में ऋण माफी हेतु संगठित अभियानों ने वसूली प्रक्रिया को बाधित किया, जबकि जलवायु-संवेदनशीलताएँ जैसे फसल विफलता कृषि पर निर्भर ऋण-ग्राहकों को असमान रूप से प्रभावित करती हैं। इसके परिणामस्वरूप ऋण पोर्टफोलियो में संकुचन देखा गया;

वित्त वर्ष 2024–25 की तीसरी तिमाही तक ऋण उत्पत्ति मूल्य एवं संख्या दोनों में लगभग 35–42 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई, तथा दिसंबर 2024 तक कुल पोर्टफोलियो वार्षिक आधार पर 4 प्रतिशत घटकर लगभग Rs.3.91 ट्रिलियन रह गया।

नियामकीय एवं शासन-संबंधी चुनौतियाँ भी निरंतर बनी हुई हैं। यद्यपि भारतीय रिज़र्व बैंक ने ऋण आकार, ब्याज दरों तथा पुनर्भुगतान भार पर सीमाएँ निर्धारित की हैं, तथापि इनके क्रियान्वयन में असमानता बनी रहती है। *मिशन ड्रिफ्ट* की प्रवृत्ति (जिसमें लाभ उन्मुख सूक्ष्म वित्त संस्थाएँ-सामाजिक प्रभाव की अपेक्षा शेयरधारक लाभ को प्राथमिकता देती हैं) स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है; इसके अंतर्गत कुछ संस्थाएँ पर्याप्त ऋणग्राही शिक्षा के बिना अत्यधिक ऋण वितरण में संलग्न पाई गई हैं। क्षेत्रीय असंतुलन इस समस्या को और गहरा करता है, जहाँ लगभग 84 प्रतिशत ऋण पोर्टफोलियो कुछ ही राज्यों में केंद्रित है, जबकि अन्य वंचित क्षेत्रों में या तो सीमित पहुँच है अथवा उच्च जोखिम विद्यमान है। इसके अतिरिक्त, ऋणग्राहकों में वित्तीय साक्षरता के निम्न स्तर के कारण ऋण का उपयोग उत्पादक गतिविधियों के बजाय उपभोग हेतु किया जाता है, जिससे दीर्घकालिक प्रभावशीलता कम हो जाती है।

Observer Research Foundation तथा भारतीय रिज़र्व बैंक की रिपोर्टों सहित आलोचकों के विश्लेषण इस क्षेत्र की गहरी संरचनात्मक कमियों की ओर संकेत करते हैं। सूक्ष्म वित्त ने भले ही व्यापक विस्तार प्राप्त कर लिया हो, किंतु गरीबी उन्मूलन पर इसका प्रभाव अपेक्षाकृत सीमित रहा है। वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के बावजूद, यह कौशल-अभाव, बाज़ार तक पहुँच तथा आधारभूत संरचना की कमी जैसे मूल कारणों का समाधान करने में प्रायः असफल रहता है। कुछ दृष्टिकोणों में, पर्याप्त क्षमता निर्माण के अभाव में सूक्ष्म वित्त आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित करने के बजाय निर्भरता को बनाए रखता है।

मानवीय अनुभव इन आलोचनाओं को और अधिक सजीव रूप में प्रस्तुत करते हैं। बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला ऋणग्राहकों ने समूह सदस्यों एवं एजेंटों से बढ़ते दबाव की शिकायत की है, जिसके परिणामस्वरूप परिसंपत्तियों की विवश बिक्री या रोजगार की तलाश में पलायन जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं। ऐसे अनुभव यह रेखांकित करते हैं कि पर्याप्त सुरक्षा उपायों के अभाव में सूक्ष्म वित्त सशक्तिकरण के बजाय असुरक्षा को बढ़ा सकता है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु संतुलित सुधारों की आवश्यकता है-जैसे जोखिम मूल्यांकन को सुदृढ़ करने के लिए क्रेडिट ब्यूरो एकीकरण को मजबूत करना, ऋणग्राही संरक्षण उपायों का विस्तार (कर्नाटक के 2024 के विधेयक की भाँति), वित्तीय साक्षरता कार्यक्रमों का संवर्धन तथा DAY-NRLM जैसी योजनाओं के साथ समन्वय स्थापित कर समग्र समर्थन प्रदान करना। तभी सूक्ष्म वित्त शोषण की छाया से मुक्त होकर अपने वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति कर पाएगा।

**केस अध्ययन-**

देश के भीतर से प्राप्त वास्तविक जीवन के केस अध्ययन, विशेषतः DAY-NRLM के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों (SHGs) तथा संयुक्त देयता समूह (JLG) मॉडलों के माध्यम से, ग्रामीण विकास में सूक्ष्म वित्त की ठोस भूमिका को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं। वर्ष 2023–2025 के नवीनतम आँकड़ों पर आधारित ये उदाहरण महिला सशक्तिकरण, आजीविका संवर्धन एवं सामुदायिक लचीलापन के क्षेत्रों में प्राप्त सफलताओं को रेखांकित करते हैं, साथ ही उन संदर्भात्मक कारकों को भी स्वीकार करते हैं जो प्रभाव को सुदृढ़ करते हैं।

उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख उदाहरण उल्लेखनीय है, जहाँ DAY-NRLM के अंतर्गत लाखों ग्रामीण परिवारों को स्वयं सहायता समूहों में संगठित किया गया है। जौनपुर, अंबेडकर नगर एवं बाराबंकी जैसे जिलों में, SHG महासंघों और उत्पादक समूहों ने सूक्ष्म वित्त को उत्पादक उद्यमों में रूपांतरित किया है। महिलाओं ने दुग्ध उत्पादन, हस्तशिल्प तथा खाद्य प्रसंस्करण जैसी गतिविधियों हेतु औसतन Rs.30,000–Rs.50,000 के ऋण प्राप्त किए। वर्ष 2023–24 तक, इन समूहों ने ऋण का उपयोग बाज़ार से जुड़ाव, उत्पादों के मानकीकरण तथा सहकारी माध्यमों से बेहतर मूल्य-वार्ता के लिए किया। NABARD एवं MFIN के आँकड़ों के अनुसार, उत्तर प्रदेश में SHGs को Rs.14,600 करोड़ का ऋण वितरण किया गया, जिससे 7.62 लाख समूह लाभान्वित हुए। महिलाओं ने 20–40 प्रतिशत तक आय-वृद्धि की सूचना दी, जिससे शिक्षा एवं स्वास्थ्य में निवेश संभव हुआ। जौनपुर के एक महासंघ ने अचार एवं मसालों के सामूहिक विपणन के माध्यम से अपने कार्य का विस्तार किया, जिससे सतत आजीविकाएँ सृजित हुईं और पलायन में कमी आई। यह उदाहरण प्रशिक्षण एवं बाज़ार तक पहुँच के साथ ऋण को एकीकृत करने से प्राप्त अधिकतम प्रभाव को दर्शाता है, जो NRLM के उत्पादक समूह केंद्रित दृष्टिकोण के अनुरूप है।

केरल में कुडुम्बश्री मिशन, जो DAY-NRLM के साथ एकीकृत है, एक परिपक्व मॉडल प्रस्तुत करता है। यहाँ स्वयं सहायता समूह सामुदायिक उद्यमों में विकसित हो चुके हैं, जहाँ महिलाएँ बचत, ऋण तथा उत्पादन इकाइयों का प्रबंधन करती हैं। वर्ष 2024 तक, 4 लाख से अधिक समूहों ने लाखों महिलाओं को आच्छादित किया और कुछ चरणों में बकाया ऋण Rs.10,000 करोड़ से अधिक रहा। केस अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि महिलाएँ सिलाई, केटरिंग तथा कृषि जैसे क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता से सूक्ष्म उद्यमिता की ओर अग्रसर हुईं। वित्तीय आत्मनिर्भरता ने सामाजिक सशक्तिकरण को भी प्रोत्साहित किया जिससे घरेलू निर्णय-निर्माण में वृद्धि, घरेलू हिंसा में कमी तथा सामुदायिक नेतृत्व भूमिकाओं का विस्तार हुआ। कुडुम्बश्री का सरकारी योजनाओं (जैसे परिसंपत्ति निर्माण हेतु MGNREGS) के साथ समन्वय इन प्रभावों को और अधिक व्यापक बनाता है, जिसके परिणामस्वरूप अनेक सदस्य "लखपति दीदी" के रूप में वार्षिक Rs.1 लाख से अधिक आय अर्जित करने लगीं।

बिहार में DAY-NRLM के अंतर्गत गहन ब्लॉकों ने एक अन्य सशक्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। मुज़फ्फरपुर जैसे जिलों में, स्वयं सहायता समूहों ने बकरी पालन एवं सब्ज़ी उत्पादन पर केंद्रित गतिविधियों हेतु सूक्ष्म ऋण का उपयोग इनपुट्स एवं पशु-चिकित्सा सेवाओं के लिए किया। वर्ष 2024 के एक अध्ययन में यह

पाया गया कि प्रतिभागियों के वित्तीय समावेशन सूचकांक में सुधार हुआ, तथा SHG–बैंक लिंकेज ने समयोचित ऋण उपलब्धता सुनिश्चित की। समूह बैठकों के माध्यम से महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ा, जिससे बाज़ारों एवं पारिवारिक निर्णयों में उनकी सौदेबाज़ी क्षमता सुदृढ़ हुई। आय के विविधीकरण ने कृषि-आधारित जोखिमों के प्रति संवेदनशीलता को कम किया, और कुछ समूहों ने सामूहिक सौदेबाज़ी हेतु उत्पादक कंपनियों का गठन भी किया।

मध्य असम सामाजिक एकजुटता से जुड़े लाभों की एक अलग कहानी कह रहा है। DAY-NRLM के अंतर्गत SHG–बैंक लिंकेज कार्यक्रम ने प्रतिभागी परिवारों को गैर-प्रतिभागियों की तुलना में उच्च वित्तीय समावेशन स्तर तक पहुँचाया। गहन ब्लॉकों में क्षमता निर्माण एवं वित्तीय सहायता ने उद्यमिता को बढ़ावा दिया तथा सामाजिक बहिष्करण को कम किया। महिलाओं ने सामुदायिक गतिविधियों में अपनी सहभागिता में वृद्धि और समग्र कल्याण में सुधार की सूचना दी।

ये सभी केस अध्ययन कुछ सामान्य सफलता कारकों जैसे मज़बूत संस्थागत समर्थन (NRLM प्रशिक्षण), समूह एकजुटता, विभिन्न योजनाओं के साथ अभिसरण तथा ऋण का उत्पादक उपयोग को रेखांकित करते हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में उत्तरी एवं पूर्वी राज्यों में तीव्र प्रगति बेहतर क्रियान्वयन, ऑनलाइन प्रणालियों तथा वंचित वर्गों (SC/ST एवं महिलाएँ) पर केंद्रित रणनीतियों को प्रतिबिंबित करती है। किन्तु यह प्रभाव सर्वत्र समान नहीं है, इसकी सफलता स्थानीय बाज़ारों, कौशल स्तर एवं बाह्य संपर्कों पर निर्भर करती है।

वर्ष 2023–24 के NABARD एवं MFIN प्रतिवेदनों से प्राप्त अनुभवजन्य साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि SHG–क्रेडिट लिंकेज में निरंतर वृद्धि हुई है, और राष्ट्रीय स्तर पर Rs. 2.09 लाख करोड़ का ऋण वितरण किया गया, जिससे लगभग 7.8 करोड़ ऋणग्राही लाभान्वित हुए। महिला-नेतृत्व वाली पहलों ने सकल मूल्य वर्धन (GVA) में योगदान एवं गरीबी में कमी को सुदृढ़ किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में आ रहे यह बदलाव आँकड़ों को मानवीय रूप प्रदान करते हैं-जैसे बाराबंकी की एक महिला, जिसने छोटे दुग्ध उद्यम हेतु ऋण का उपयोग कर न केवल अपनी बेटियों की शिक्षा सुनिश्चित की, बल्कि अपने महासंघ का नेतृत्व भी किया। जो यह दर्शाती हैं कि सहायक पारितंत्र में अंतर्निहित होने पर सूक्ष्म वित्त की रूपांतरणकारी क्षमता किस प्रकार साकार होती है।

वर्ष 2030 और उससे आगे की दृष्टि से देखें तो भारत में सूक्ष्म वित्त एक निर्णायक मोड़ पर खड़ा है, जहाँ डिजिटल नवाचार, हरित वित्त के एकीकरण तथा सतत विकास लक्ष्यों के अनुरूप नीतिगत समन्वय के माध्यम से इसके विकसित होने की व्यापक संभावनाएँ हैं। पूर्वानुमानों के अनुसार, सूक्ष्म वित्त बाज़ार में सुदृढ़ वृद्धि अपेक्षित है, वर्ष 2025 में USD 256.74 बिलियन से बढ़कर 2030 तक इसके USD 424.51 बिलियन तक पहुँचने का अनुमान है, जो 10.58 प्रतिशत की वार्षिक चक्रवृद्धि वृद्धि दर (CAGR) को दर्शाता है। यह विस्तार फिनटेक प्रगति, जलवायु-सहिष्णु उत्पादों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक पहुँच से प्रेरित होगा।

डिजिटल रूपांतरण 'पहुँच' की परिभाषा को पुनः निर्धारित करेगा। ऑनलाइन ऋण चैनलों के 2030 तक 15.23 प्रतिशत CAGR से बढ़ने का अनुमान है, जिसमें UPI, कृत्रिम बुद्धिमत्ता-आधारित क्रेडिट स्कोरिंग तथा पारदर्शिता हेतु ब्लॉकचेन का उपयोग किया जाएगा। ये मंच लेन-देन लागत को कम करेंगे, जोखिम आकलन को सुदृढ़ करेंगे तथा मोबाइल ऐप्स के माध्यम से घर-द्वार सेवाएँ उपलब्ध कराएँगे। कोविड-19 के पाश्चात्य लचीलेपन ने इस परिवर्तन को तीव्र किया है, जिससे डिजिटल वितरण और पुनर्भुगतान मानक प्रक्रिया बनते जा रहे हैं। 2030 तक, सूक्ष्म वित्त का भारत की डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना (जैसे आधार, अकाउंट एग्रीगेटर) के साथ पूर्ण एकीकरण संभव है, जिससे बैंकिंग से वंचित आबादी को अधिक कुशलता से सेवा दी जा सकेगी तथा वास्तविक समय निगरानी के माध्यम से एनपीए में कमी लाई जा सकेगी।

हरित वित्त एक रूपांतरणकारी क्षेत्र के रूप में उभर रहा है। पेरिस समझौते के अंतर्गत भारत के राष्ट्रीय निर्धारित योगदान (NDCs) 2030 तक 500 गीगावॉट गैर-जीवाश्म क्षमता तथा 2070 तक नेट-ज़ीरो लक्ष्य के लिए विशाल निवेश की आवश्यकता है, जिसका अनुमान USD 2.5–10 ट्रिलियन के बीच है। सूक्ष्म वित्त ग्रामीण क्षेत्रों में नवीकरणीय ऊर्जा अपनाने, जैसे सौर गृह प्रणालियाँ, स्वच्छ कुकस्टोव तथा विद्युत वाहनों के वित्तपोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। जलवायु फिनटेक मंच हरित परियोजनाओं के लिए अनुकूलित ऋण उपलब्ध कराएँगे, जहाँ AI एवं ब्लॉकचेन ट्रैकिंग के माध्यम से लागत में कमी लाई जा सकेगी। हरित सूक्ष्म ऋणों के प्रयोग से महिलाएँ सतत कृषि एवं ऊर्जा दक्षता में सशक्त होंगी, जो जलवायु कार्रवाई एवं लैंगिक समानता से संबंधित SDGs के अनुरूप है। RBI द्वारा जलवायु जोखिमों की स्वीकृति (अत्यधिक मौसम घटनाओं के कारण 2030 तक GDP में 2–6 प्रतिशत संभावित हानि) लचीले पोर्टफोलियो की आवश्यकता को रेखांकित करती है, जहाँ हरित उत्पाद संवेदनशीलताओं को कम कर सकते हैं।

नीतिगत समर्थन इस वृद्धि को उत्प्रेरित करेगा। RBI के अद्यतन विनियम (जैसे 2025 में पुनर्भुगतान भार पर सीमाएँ) तथा MUDRA, PMJDY और लखपति दीदी जैसी योजनाएँ वित्तीय समावेशन को प्रोत्साहित करेंगी। DAY-NRLM के साथ अभिसरण के माध्यम से स्वयं सहायता समूह महासंघों को हरित उद्यमों में विस्तारित किया जा सकता है। फिनटेक स्टार्टअप्स और कॉर्पोरेट समर्थित सूक्ष्म वित्त संस्थान नवाचार को गति देंगे, जबकि प्रतिभूतिकरण चैनल वित्तपोषण की स्थिरता सुनिश्चित करेंगे। हालाँकि, परिसंपत्ति गुणवत्ता पर दबाव जैसी चुनौतियाँ (जो 2025 में भी बनी हुई हैं) बेहतर अंडरराइटिंग और वित्तीय साक्षरता कार्यक्रमों के माध्यम से संबोधित की जानी होंगी। क्षेत्रीय असमानताएँ और अतिऋणग्रस्तता के जोखिम भी विद्यमान हैं, किंतु समन्वित नियामक ढाँचे इनके प्रभाव को कम कर सकते हैं।

वर्ष 2030 तक, सूक्ष्म वित्त सकल मूल्य वर्धन (GVA) में 2.7–3.5 प्रतिशत का योगदान दे सकता है, लाखों रोजगार सृजित कर सकता है और समावेशी हरित विकास को बढ़ावा दे सकता है। ग्रामीण महिलाएँ, जो इसकी प्रमुख लाभार्थी हैं, जलवायु और आर्थिक परिवर्तनों के बीच लचीली आजीविकाओं के निर्माण में इस परिवर्तन का नेतृत्व करेंगी।

**निष्कर्ष-**

सूक्ष्म वित्त के माध्यम से वित्तीय समावेशन ने भारत के ग्रामीण विकास को गहराई से प्रभावित किया है। यह जमीनी स्तर पर हुए प्रारंभिक प्रयोगों से विकसित होकर आज बहु-लाख-करोड़ रुपये के ऐसे उद्योग का रूप ले चुका है, जो करोड़ों उधारकर्ताओं को सेवाएँ प्रदान कर रहा है। इस प्रक्रिया ने महिलाओं को सशक्त किया है, आजीविका के अवसरों को सुदृढ़ किया है तथा बैंकिंग तक पहुँच की खाइयों को पाटा है, जैसा कि DAY-NRLM के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों के व्यापक गठन और चार लाख करोड़ रुपये से अधिक के पोर्टफोलियो विस्तार से स्पष्ट होता है।

फिर भी, इन उपलब्धियों के साथ चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। अतिऋणग्रस्तता, ऊँची ब्याज दरें, दबावपूर्ण वसूली प्रथाएँ तथा चक्रीय तनाव इस बात को रेखांकित करते हैं कि नैतिक और सतत मॉडलों की आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश, केरल और बिहार से प्राप्त अध्ययन यह दर्शाते हैं कि जब ऋण को कौशल विकास, बाज़ार पहुँच और संस्थागत सहयोग के साथ जोड़ा जाता है, तब सूक्ष्म वित्त में वास्तविक रूपांतरण की क्षमता प्रकट होती है।

भविष्य की संभावनाएँ आशाजनक हैं-डिजिटल उपकरण, हरित वित्त और नीतिगत सुधार 2030 तक समावेशी एवं जलवायु-सहिष्णु विकास को गति दे सकते हैं। अंतत: सूक्ष्म वित्त का वास्तविक मूल्य केवल ऋण वितरण में नहीं, बल्कि समग्र सशक्तिकरण में निहित है। संतुलित विनियमन और नवाचार के साथ, यह आगे भी न्यायसंगत ग्रामीण प्रगति को उत्प्रेरित करता रहेगा और लाखों लोगों की आकांक्षाओं को स्थायी परिवर्तन में रूपांतरित करेगा।

**संदर्भ-ग्रंथ-सूची :-**

1. Sa-Dhan. (2025). *The Bharat Microfinance Report 2024*. Sa-Dhan Association. https://www.sa-dhan.net/wp-content/uploads/2025/05/Bharat-Microfinance-Report-2024.pdf
2. Micro Finance Institutions Network (MFIN). (2024). *Micro matters macro view: India microfinance review FY 2023-24*. MFIN. https://mfinindia.org/assets/upload_image/publications/Studies/Micro%20Matters%20Macro%20View%20FY%202023%2024%20%20December.pdf
3. National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD). (2024). *Status of microfinance in India 2023-24*. NABARD. https://www.nabard.org.)
4. Reserve Bank of India. (2025). *Financial Inclusion Index (FI-Index) – March 2025*. RBI. https://www.pib.gov.in/PressNoteDetails.aspx?ModuleId=3&NoteId=154980.

5. Ministry of Rural Development, Government of India. (2025). *Deendayal Antyodaya Yojana – National Rural Livelihoods Mission (DAY-NRLM) dashboard and reports*. https://nrlm.gov.in/ and https://dashboard.rural.nic.in/dashboardnew/nrlm.aspx
6. Press Information Bureau (PIB), Government of India. (2024–2025). *Year end review 2024: Department of Rural Development and related releases on DAY-NRLM achievements*. https://www.pib.gov.in/
7. Karmakar, K. G. (Ed.). (2007). *Microfinance in India*. SAGE Publications.
8. Bhagowati, S. K. (2013). *Micro finance for rural India: Institutional arrangements and policies*.
9. Das, S. K., Nanda, B. P., & Rath, J. (Eds.). (2008). *Micro finance and rural development in India*.
10. Choudhury, B. (2011). *Microfinance and rural entrepreneurship development in India*.
11. Kurukshetra: A Journal of Rural Development. (2024, January). Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India.
12. Kurukshetra. (Various issues, 2024). Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India.
13. World Bank. (Various reports). *Improving access to finance for India's rural poor* and related studies on microfinance sustainability.

***Manuscript Timeline***

***Submitted :*** *July 30, 2025* ***Accepted :*** *August 10, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# युवा मतदाता और सोशल मीडिया : भारत में चुनावी भागीदारी का बदलता स्वरूप

**दत्तात्रय निवृत्ती रावण [1]**

**डॉ. अभिषेक सिंह[2]**

**सारांश**

***सो****शल मीडिया विश्वभर में चुनावी प्रक्रिया का एक शक्तिशाली माध्यम बनकर उभरा है, जिसने मतदाताओं के व्यवहार, राजनीतिक अभियानों और लोकतांत्रिक सहभागिता पर गहरा प्रभाव डाला है। भारत में डिजिटल पहुँच के तीव्र विस्तार ने राजनीति को घर-घर तक पहुँचा दिया है। राजनीतिक दल विशेष रूप से युवा मतदाताओं से जुड़ने के लिए फेसबुक, ट्विटर (एक्स), व्हाट्सएप और इंस्टाग्राम जैसे मंचों का व्यापक उपयोग कर रहे हैं। इंटरनेट और स्मार्टफोन के प्रसार ने राजनीतिक संचार को त्वरित, सुलभ और प्रभावशाली बना दिया है। सोशल मीडिया अब केवल संवाद का साधन नहीं रहा, बल्कि विचार-निर्माण, राजनीतिक पहचान और चुनावी रणनीतियों का प्रमुख मंच बन गया है। यह अध्ययन दर्शाता है कि सोशल मीडिया के माध्यम से युवाओं को राजनीतिक जानकारी शीघ्र प्राप्त होती है। वे विभिन्न विचारधाराओं से परिचित होते हैं और सार्वजनिक मुद्दों पर अपनी राय व्यक्त करते हैं। ऑनलाइन अभियान, डिजिटल बहसें और वीडियो संदेश युवाओं को मतदान के प्रति प्रेरित करते हैं, जिससे उनकी चुनावी भागीदारी अधिक सक्रिय और संवादात्मक हो गई है। इसके साथ ही फेक न्यूज़, दुष्प्रचार, ट्रोल संस्कृति और डेटा पूर्वाग्रह जैसी चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं, जो लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए खतरा बन सकती हैं। अतः सोशल मीडिया की अपार संभावनाओं के साथ जिम्मेदार उपयोग, डिजिटल साक्षरता और प्रभावी नियमन आवश्यक है।*

***मुख्य शब्द*** *: सोशल मीडिया,युवा मतदाता, भारत कि राजनीति, चुनाव, इंटरनेट, चुनावी भागीदारी।*

**प्रस्तावना :**

इक्कीसवीं सदी का डिजिटल दौर हमारे जीवन के हर क्षेत्र को बदल रहा है, और राजनीति भी इससे अछूती नहीं रही है। आज सूचना और संचार तकनीक ने लोकतंत्र को एक नया रूप दे दिया है। पहले जहाँ राजनीतिक संवाद मुख्यतः सभाओं, रैलियों और पारंपरिक मीडिया तक सीमित था, वहीं अब सोशल मीडिया ने इसे आम नागरिक के हाथों तक पहुँचा दिया है। मोबाइल फोन और इंटरनेट के माध्यम से राजनीतिक संदेश कुछ ही क्षणों में लाखों लोगों तक पहुँच जाते हैं। इससे नागरिकों और राजनीतिक दलों के बीच सीधा और त्वरित संवाद संभव हुआ है। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में, जहाँ युवा जनसंख्या बड़ी संख्या में मौजूद

[1] पी-एच.डी. शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र).

[2] सहायक प्रोफ़ेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र).

है, सोशल मीडिया की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। आज का युवा केवल श्रोता नहीं, बल्कि सक्रिय सहभागी है। वह राजनीतिक घटनाओं पर अपनी राय देता है, चर्चाओं में भाग लेता है, अभियानों का समर्थन या विरोध करता है और इस प्रकार जनमत निर्माण में योगदान देता है। फिर भी, इस बदलते परिदृश्य के साथ कई चुनौतियाँ भी सामने आई हैं, जैसे फेक न्यूज़, दुष्प्रचार, ऑनलाइन ट्रोलिंग और निजी डेटा की सुरक्षा से जुड़े प्रश्न। इसलिए यह आवश्यक है कि हम समझें कि सोशल मीडिया भारतीय चुनावी प्रक्रिया को किस तरह प्रभावित कर रहा है और इसके भविष्य के क्या परिणाम हो सकते हैं।

**अध्ययन के उद्देश्य-**

1. भारतीय चुनावों में युवा मतदाताओं की राजनीतिक भागीदारी पर सोशल मीडिया के प्रभाव का विश्लेषण करना।
2. सोशल मीडिया के माध्यम से उत्पन्न अवसरों एवं चुनौतियों का मूल्यांकन करते हुए चुनावी प्रक्रिया पर उसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करना।

**शोध पद्धति-**

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक (Descriptive and Explanatory) अनुसंधान पद्धति का उपयोग किया है। यह शोध पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। अध्ययन से संबंधित जानकारी पुस्तकों, शोध पत्रों, प्रतिष्ठित अकादमिक पत्रिकाओं, सरकारी वेबसाइटों, चुनाव आयोग की रिपोर्टों तथा समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों से संकलित की गई है।

**सोशल मीडिया की परिभाषा-**

सोशल मीडिया एक इंटरनेट आधारित डिजिटल मंच है, जो लोगों को संवाद, विचार-विमर्श और जानकारी साझा करने की सुविधा प्रदान करता है। इसके माध्यम से उपयोगकर्ता फोटो, वीडियो, संदेश और अन्य सामग्री साझा कर सकते हैं। फेसबुक, ट्विटर (एक्स), इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे प्लेटफ़ॉर्म व्यक्तिगत संपर्क, व्यावसायिक नेटवर्किंग और सामाजिक जागरूकता के प्रभावी साधन बन चुके हैं। पारंपरिक मीडिया की तुलना में सोशल मीडिया अधिक त्वरित और दो-तरफ़ा संचार की सुविधा देता है, जिससे नागरिकों और राजनीतिक नेताओं के बीच सीधा संवाद संभव होता है और राजनीतिक सहभागिता को नया आयाम मिलता है।

**भारतीय चुनावी प्रक्रिया में युवाओं की भूमिका-**

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, और यहाँ की चुनावी प्रक्रिया में युवाओं की भूमिका आज पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। देश की बड़ी युवा आबादी चुनावी परिणामों को निर्णायक रूप से प्रभावित करने की क्षमता रखती है। 18 से 29 वर्ष आयु वर्ग के मतदाता केवल संख्या में ही अधिक नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों के प्रति सजग, संवेदनशील और ऊर्जावान भी हैं। आज का युवा केवल मतदान डालने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह चुनावी अभियानों, जनचर्चाओं और सामाजिक

आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी करता है। रैलियों में उपस्थित होना, छात्र संगठनों से जुड़ना, स्वयंसेवी अभियानों में योगदान देना और डिजिटल मंचों पर अपनी आवाज़ उठाना उसकी राजनीतिक भागीदारी का हिस्सा बन गया है। सोशल मीडिया ने युवाओं को अपनी राय खुलकर व्यक्त करने और राजनीतिक मुद्दों पर संवाद करने का नया मंच दिया है। वे नीतियों का समर्थन करते हैं, आलोचना करते हैं और जनमत निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। कई युवा स्वयं राजनीति में उतरकर प्रत्याशी, कार्यकर्ता या रणनीतिकार के रूप में भी सामने आ रहे हैं। रोजगार, शिक्षा, तकनीकी विकास और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दों को चुनावी बहस के केंद्र में लाने में युवाओं की अहम भूमिका रही है। यद्यपि राजनीतिक उदासीनता, गलत सूचना और वैचारिक ध्रुवीकरण जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि युवा शक्ति भारतीय लोकतंत्र की दिशा और भविष्य को आकार देने में एक परिवर्तनकारी भूमिका निभा रही है।

**युवा मतदाताओं पर सोशल मीडिया का प्रभाव-**

डिजिटल युग में सोशल मीडिया युवाओं के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुका है, और इसका प्रभाव उनकी राजनीतिक सोच तथा मतदान व्यवहार पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आज का युवा पारंपरिक मीडिया की तुलना में अधिकतर जानकारी सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के माध्यम से प्राप्त करता है। राजनीतिक समाचार, चुनावी घोषणाएँ, नेताओं के भाषण और विभिन्न विचारधाराओं से संबंधित सामग्री कुछ ही क्षणों में उनके मोबाइल स्क्रीन तक पहुँच जाती है। इससे युवाओं की राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि हुई है और वे समसामयिक मुद्दों पर अधिक सक्रियता से विचार करने लगे हैं।

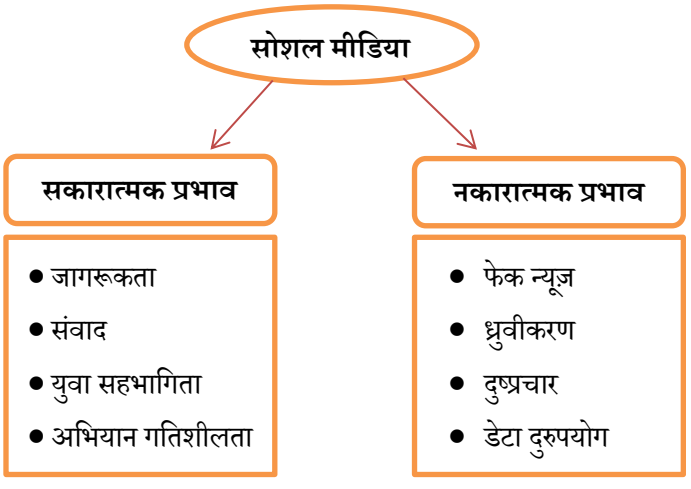


सोशल मीडिया युवाओं को अपनी राय व्यक्त करने, चर्चा में भाग लेने और अभियान चलाने का अवसर भी देता है। ऑनलाइन बहसें, हैशटैग अभियान और वीडियो संदेश उन्हें लोकतांत्रिक प्रक्रिया से जोड़ते हैं। इसके परिणामस्वरूप मतदान के प्रति उनकी रुचि और भागीदारी में वृद्धि देखी गई है। कई बार सोशल मीडिया के माध्यम से उत्पन्न जनमत चुनावी मुद्दों को प्रभावित करता है और राजनीतिक दलों की रणनीतियों को भी बदल देता है। हालाँकि, इस प्रभाव के सकारात्मक पक्ष के साथ कुछ नकारात्मक पहलू भी जुड़े हैं। फेक

न्यूज़, भ्रामक प्रचार, ट्रोलिंग और एल्गोरिदमिक पक्षपात युवाओं की सोच को प्रभावित कर सकते हैं। कई बार अपुष्ट जानकारी के आधार पर मतनिर्माण होने लगता है। इसलिए यह आवश्यक है कि युवा सोशल मीडिया का उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से करें और तथ्य-जांच की आदत विकसित करें। कुल मिलाकर, सोशल मीडिया ने युवा मतदाताओं को अधिक सक्रिय और जागरूक बनाया है, किंतु इसके जिम्मेदार उपयोग की आवश्यकता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

**डिजिटल प्रचार, हैशटैग अभियान और ऑनलाइन राजनीतिक संवाद-**

डिजिटल युग में चुनावी प्रचार की प्रकृति में व्यापक परिवर्तन आया है। पहले जहाँ प्रचार मुख्यतः जनसभाओं, पोस्टरों और पारंपरिक मीडिया तक सीमित था, वहीं अब सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म चुनावी रणनीति का केंद्रीय हिस्सा बन चुके हैं। डिजिटल प्रचार के माध्यम से राजनीतिक दल अपने संदेश, घोषणापत्र, उपलब्धियाँ और वादे सीधे मतदाताओं तक पहुँचा सकते हैं। वीडियो संदेश, लाइव संबोधन,इन्फोग्राफिक्स और शॉर्ट क्लिप्स के जरिए कम समय में अधिक प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। यह माध्यम विशेष रूप से युवा मतदाताओं तक पहुँचने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुआ है।

हैशटैग अभियान डिजिटल राजनीति का एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गए हैं। किसी मुद्दे, नारे या अभियान को हैशटैग के माध्यम से व्यापक पहचान दी जाती है, जिससे वह विषय ट्रेंड करने लगता है और जनचर्चा का केंद्र बन जाता है। हैशटैग न केवल राजनीतिक समर्थन को प्रदर्शित करते हैं, बल्कि विरोध और जनआंदोलन को भी संगठित करने का माध्यम बनते हैं। इस प्रकार, वे डिजिटल सार्वजनिक मंच (Digital Public Sphere) का निर्माण करते हैं, जहाँ विचारों का तीव्र आदान-प्रदान होता है। ऑनलाइन राजनीतिक संवाद ने लोकतांत्रिक सहभागिता को अधिक संवादात्मक और सहभागी बनाया है। नागरिक अब केवल संदेश ग्रहण करने वाले नहीं रहे, बल्कि वे टिप्पणी, शेयर और लाइव चर्चाओं के माध्यम से सक्रिय भागीदार बन गए हैं। हालांकि, इस संवाद में कई बार ध्रुवीकरण, ट्रोलिंग और भ्रामक सूचना जैसी चुनौतियाँ भी देखने को मिलती हैं। फिर भी, डिजिटल प्रचार और ऑनलाइन संवाद ने भारतीय चुनावी प्रक्रिया को अधिक गतिशील, त्वरित और व्यापक बना दिया है।

**भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया का विकास और विस्तार-**

भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया का विकास धीरे-धीरे किंतु अत्यंत प्रभावशाली रूप में हुआ है। प्रारंभिक दौर में चुनाव प्रचार मुख्यतः जनसभाओं, पोस्टरों, अख़बारों और टेलीविज़न जैसे पारंपरिक माध्यमों तक सीमित था। किंतु इंटरनेट और स्मार्टफोन के तीव्र प्रसार ने राजनीतिक संचार की दिशा बदल दी। लगभग 2010 के बाद सोशल मीडिया ने चुनावी रणनीतियों में अपनी जगह बनानी शुरू की और 2014 के आम चुनावों तक यह एक महत्वपूर्ण और निर्णायक उपकरण के रूप में स्थापित हो चुका था। राजनीतिक दलों ने डिजिटल अभियान, ऑनलाइन विज्ञापन, वीडियो संदेश और हैशटैग अभियानों के माध्यम से सीधे मतदाताओं तक पहुँच बनानी प्रारंभ की। इसके साथ ही सोशल मीडिया का विस्तार भी व्यापक स्तर पर हुआ। फेसबुक,

ट्विटर (एक्स), व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे मंच ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में तेजी से लोकप्रिय हुए। सस्ते डेटा और मोबाइल इंटरनेट की उपलब्धता ने डिजिटल पहुँच को और विस्तृत कर दिया। परिणामस्वरूप, चुनावी संदेश अब केवल शहरों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि दूर-दराज़ के क्षेत्रों तक भी आसानी से पहुँचने लगे।

समय के साथ सोशल मीडिया केवल प्रचार का साधन नहीं रहा, बल्कि यह जनमत निर्माण, छवि प्रबंधन और मुद्दा-निर्धारण का प्रभावशाली मंच बन गया। नेताओं के आधिकारिक पेज, लाइव संबोधन और त्वरित प्रतिक्रियाओं ने मतदाताओं के साथ प्रत्यक्ष संवाद को संभव बनाया। विशेषकर युवाओं को राजनीति से जुड़ने का नया अवसर मिला। हालाँकि, इस विस्तार के साथ अफवाहें, दुष्प्रचार और भ्रामक सूचनाएँ भी तेजी से फैलने लगीं। फिर भी, यह स्पष्ट है कि विकास और विस्तार दोनों ने मिलकर भारतीय चुनावों को अधिक गतिशील, संवादात्मक और तकनीक-आधारित बना दिया है, और भविष्य में इसकी भूमिका और भी सशक्त होने की संभावना है।

**चुनावों में सोशल मीडिया की चुनौतियाँ-**

भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया ने जहाँ लोकतांत्रिक सहभागिता को नया आयाम दिया है, वहीं इसके साथ कई गंभीर चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं। सबसे बड़ी समस्या गलत जानकारी और फेक न्यूज़ का तीव्र प्रसार है। सोशल मीडिया पर अपुष्ट या भ्रामक सूचनाएँ कुछ ही मिनटों में लाखों लोगों तक पहुँच जाती हैं और बिना सत्यापन के मतदाताओं की सोच को प्रभावित कर सकती हैं। डीपफेक तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) से तैयार किए गए वीडियो और संदेश राजनीतिक बयानों में हेरफेर को और आसान बना रहे हैं। अनेक उपयोगकर्ता तथ्य-जाँच नहीं करते, जिससे गलत सूचना तेजी से वायरल हो जाती है।

दूसरी प्रमुख चुनौती राजनीतिक ध्रुवीकरण और 'इको चैंबर' की है। सोशल मीडिया के एल्गोरिदम प्रायः वही सामग्री दिखाते हैं जो उपयोगकर्ता की पहले से बनी सोच से मेल खाती हो। इससे भिन्न विचारों के प्रति सहनशीलता घटती है और समाज में वैचारिक विभाजन बढ़ता है। परिणामस्वरूप, सार्थक बहस की जगह टकराव और वैमनस्यता बढ़ने लगते हैं। इसके अतिरिक्त, माइक्रो-टार्गेटिंग और हेरफेर करने वाले राजनीतिक विज्ञापन भी चिंता का विषय हैं। चुनावी अभियान सोशल मीडिया डेटा का उपयोग कर विशिष्ट वर्गों को भावनात्मक और अत्यधिक व्यक्तिगत संदेश भेजते हैं, जिनमें कई बार पूर्ण संदर्भ नहीं होता। विज्ञापनों की पारदर्शिता की कमी यह जानना कठिन बना देती है कि इन्हें कौन वित्तपोषित कर रहा है। साइबर सुरक्षा के खतरे और विदेशी हस्तक्षेप भी गंभीर मुद्दे हैं। डेटा लीक की घटनाएँ मतदाताओं की गोपनीयता और सुरक्षा पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं।

अंततः, मीडिया साक्षरता की कमी भी एक बड़ी चुनौती है। कई उपयोगकर्ता विश्वसनीय और भ्रामक स्रोतों के बीच अंतर नहीं कर पाते। सनसनीखेज सामग्री अक्सर तथ्य-आधारित पत्रकारिता से अधिक लोकप्रिय

हो जाती है, जिससे मतदाता अधूरी या गलत जानकारी के आधार पर निर्णय लेने लगते हैं। इसलिए डिजिटल साक्षरता और जागरूकता बढ़ाना समय की आवश्यकता है।

**भविष्य की संभावनाएँ और समाधान-**

चुनावी प्रक्रिया में सोशल मीडिया की बढ़ती भूमिका को देखते हुए यह आवश्यक है कि इसके सकारात्मक उपयोग को प्रोत्साहित किया जाए और नकारात्मक प्रभावों को नियंत्रित किया जाए। सबसे पहले, अधिक मज़बूत फ़ैक्ट-चेकिंग व्यवस्था विकसित करनी होगी। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म को अपनी कंटेंट मॉडरेशन नीतियों को और सख़्त बनाना चाहिए, ताकि भ्रामक और झूठी सूचनाओं के प्रसार को समय रहते रोका जा सके।

दूसरे, मीडिया साक्षरता कार्यक्रमों को व्यापक स्तर पर लागू करना अत्यंत आवश्यक है। विद्यालयों, महाविद्यालयों और जन-जागरूकता अभियानों के माध्यम से युवाओं में आलोचनात्मक चिंतन की क्षमता विकसित की जानी चाहिए, जिससे वे सही और गलत जानकारी के बीच अंतर कर सकें। राजनीतिक विज्ञापनों और डेटा गोपनीयता को विनियमित करना भी महत्वपूर्ण है। सरकारों को डिजिटल अभियानों में पारदर्शिता सुनिश्चित करनी चाहिए, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि राजनीतिक विज्ञापनों को कौन प्रायोजित कर रहा है और मतदाताओं के डेटा का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है। साथ ही, साइबर सुरक्षा को मजबूत बनाना और विदेशी हस्तक्षेप को रोकना आवश्यक है। ऑनलाइन उत्पीड़न के विरुद्ध सख़्त कानून लागू किए जाने चाहिए, ताकि राजनीतिक व्यक्तियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं की सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। अंततः, नैतिक पत्रकारिता और निष्पक्ष रिपोर्टिंग को बढ़ावा देकर मीडिया में जनता का विश्वास पुनः स्थापित करना समय की प्रमुख आवश्यकता है।

**नीतिगत सुझाव-**

- ***कठोर नियामक ढाँचा विकसित करना***– चुनावी अवधि में सोशल मीडिया पर प्रसारित राजनीतिक सामग्री के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश और पारदर्शिता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- ***डिजिटल एवं मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देना***– विद्यालयों, महाविद्यालयों और जन-जागरूकता अभियानों के माध्यम से नागरिकों, विशेषकर युवाओं, को तथ्य-जाँच और आलोचनात्मक सोच के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
- ***फेक न्यूज़ पर नियंत्रण हेतु सशक्त तंत्र***– स्वतंत्र फैक्ट-चेकिंग संस्थाओं को सुदृढ़ किया जाए तथा भ्रामक सामग्री के प्रसार पर त्वरित कार्रवाई सुनिश्चित की जाए।
- ***राजनीतिक विज्ञापनों में पारदर्शिता***– डिजिटल राजनीतिक विज्ञापनों के स्रोत, वित्तपोषण और लक्षित दर्शकों की जानकारी सार्वजनिक की जानी चाहिए।

- ***डेटा गोपनीयता और साइबर सुरक्षा को मजबूत करना***– मतदाताओं के व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा के लिए सख्त कानून लागू किए जाएँ और साइबर हमलों व विदेशी हस्तक्षेप की रोकथाम हेतु तकनीकी निगरानी को सुदृढ़ किया जाए।
- ***ऑनलाइन उत्पीड़न के विरुद्ध प्रभावी कानून***– ट्रोलिंग और साइबर बुलिंग के मामलों में त्वरित कानूनी कार्रवाई की व्यवस्था की जाए, ताकि लोकतांत्रिक संवाद सुरक्षित और स्वस्थ बना रहे।

**निष्कर्ष-**

वर्तमान डिजिटल युग में सोशल मीडिया भारतीय चुनावी प्रक्रिया का एक प्रभावशाली और निर्णायक माध्यम बन चुका है। विशेषकर युवा मतदाताओं के संदर्भ में यह केवल सूचना का स्रोत नहीं, बल्कि राजनीतिक जागरूकता, विचार-निर्माण और सक्रिय सहभागिता का महत्वपूर्ण मंच बन गया है। इसके माध्यम से युवाओं को अपने विचार व्यक्त करने, नीतियों पर चर्चा करने और लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने का नया अवसर मिला है। हालाँकि, सोशल मीडिया के सकारात्मक प्रभावों के साथ फेक न्यूज़, दुष्प्रचार, राजनीतिक ध्रुवीकरण, डेटा गोपनीयता के उल्लंघन और साइबर सुरक्षा जैसी गंभीर चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। ये समस्याएँ लोकतांत्रिक मूल्यों और चुनावी पारदर्शिता के लिए खतरा बन सकती हैं। अतः यह आवश्यक है कि सोशल मीडिया के उपयोग को संतुलित, जिम्मेदार और पारदर्शी बनाया जाए। प्रभावी नियमन, डिजिटल साक्षरता और नैतिक पत्रकारिता के माध्यम से ही इसके सकारात्मक पहलुओं को सशक्त किया जा सकता है। अंततः, यदि उचित दिशा-निर्देशों और जागरूकता के साथ इसका उपयोग किया जाए, तो सोशल मीडिया भारतीय लोकतंत्र को अधिक सहभागी, संवादात्मक और सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

**संदर्भ सूची-**


- वर्मा, सुरेश. (2020). *नया मीडिया और जनमत निर्माण*. प्रभात प्रकाशन.
- सिंह, अंजली. (2022). *सोशल नेटवर्किंग साइट्स और युवा राजनीति*. साहित्य भवन प्रकाशन.
- देशपांडे, प्रकाश. (2018). *इंडियन पॉलिटिक्स इन डिजिटल एज*. हिमालय पब्लिशिंग हाउस.
- कुमार, एस., और शर्मा, आर. (2020). भारत में सोशल मीडिया और युवाओं की पॉलिटिकल भागीदारी. *जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल कम्युनिकेशन, 37*(4), 567–582.
- सिंह, पी. (2019). भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया की भूमिका. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 54*(12), 45–52.
- गुप्ता, ए., और यादव, के. (2021). भारत में फेक न्यूज़ और चुनावी व्यवहार. *जर्नल ऑफ़ मीडिया स्टडीज़, 15*(2), 112–128.
- बनाजी, एस., और भट, आर. (2019). *व्हाट्सएप विजिलेंट: व्हाट्सएप गलत जानकारी के नागरिकों द्वारा स्वागत और प्रसार की खोज*. लंदन स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स रिपोर्ट.
- अग्रवाल, वी. (2019). *भारत में सोशल मीडिया और राजनीति*. रावत पब्लिकेशन्स.

- कुमार, संजय. (2017). *भारत में मतदान व्यवहार और चुनावी राजनीति.* सेज पब्लिकेशन्स इंडिया.
- यादव, योगेंद्र, एवं पॉल, सुहास. (2019). *इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन इंडियन स्टेट्स.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस इंडिया.
- मिश्रा, अर्चना. (2021). *डिजिटल मीडिया और भारतीय लोकतंत्र.* ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- सिंह, रणधीर. (2018). *भारतीय राजनीति : सिद्धांत और व्यवहार.* कॉलेज बुक डिपो.
- मेहता, एन. (2022). भारत में युवाओं का जुड़ाव और डिजिटल पॉलिटिक्स. *इंडियन जर्नल ऑफ़ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 68*(3), 389–405.
- इलेक्शन कमीशन ऑफ़ इंडिया. (2023). *आम चुनाव 2019 पर स्टैटिस्टिकल रिपोर्ट.* https://eci.gov.in
- प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो. (2022). *डिजिटल इंडिया और चुनावी सुधार.* https://pib.gov.in
- इलेक्ट्रॉनिक्स और इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी मंत्रालय. (2023). *इंटरमीडियरीज़ के लिए गाइडलाइंस और डिजिटल मीडिया एथिक्स कोड.* https://meity.gov.in
- टेलीकॉम रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ़ इंडिया. (2022). *इंडियन टेलीकॉम सर्विसेज़ परफॉर्मेंस इंडिकेटर्स.* https://trai.gov.in
- प्यू रिसर्च सेंटर. (2021). *उभरते लोकतंत्रों में सोशल मीडिया और पॉलिटिकल एंगेजमेंट.* https://www.pewresearch.org
- कुलकर्णी, एस. (2019). *सोशल मीडिया और भारतीय समाज*. डायमंड पब्लिकेशन्स.

***Manuscript Timeline***

***Submitted :*** *July 30, 2025* ***Accepted :*** *August 10, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# मुसहर जाति की सामाजिक समस्याओं एवं उनके पिछड़ेपन के कारणों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

## *(उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर जनपद के विशेष संदर्भ में)*

**डॉ. चाँदनी**[1]

**सारांश**

***प्र****स्तुत शोध पत्र उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर जनपद में निवास करने वाली मुसहर जाति के सामाजिक रूपांतरण और उनके बहुआयामी पिछड़ेपन का एक गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय समाज के हाशिए पर स्थित इस 'अदृश्य' समुदाय का अध्ययन वर्तमान 'सबका साथ, सबका विकास' के विकासात्मक विमर्श में अनिवार्य है। शोध की पद्धति के रूप में गुणात्मक और परिमाणात्मक विधियों के 'त्रिभुजीकरण' (Triangulation) को अपनाया गया है, जिसमें मिर्ज़ापुर के मझवां ब्लॉक के 18 गांवों के 240 परिवारों का विस्तृत सर्वेक्षण और 'लोकपद्धति विज्ञान' के आधार पर गहन साक्षात्कार किया गया है। प्रस्तुत अन्वेषण का मर्म इस तथ्य में निहित है कि मुसहर समुदाय में विकास की प्रक्रिया एक 'अधपके' अवस्था में है। जहाँ एक ओर 90.3% परिवारों तक बिजली की पहुँच और मोबाइल फोन जैसे संचार साधनों की उपलब्धता ने उन्हें डिजिटल विमर्श से जोड़ा है, वहीं दूसरी ओर 100% भूमिहीनता, 96.45% महिला निरक्षरता और 47.29% परिवारों में व्याप्त खुले में शौच की विवशता संरचनात्मक वंचन की कठोर वास्तविकता को उजागर करती है। शोध यह रेखांकित करता है कि मुसहर समुदाय अपनी पारंपरिक 'दोना-पत्तल' पहचान से 'दैनिक मजदूरी' की ओर विस्थापित हो रहा है, जो वन-आधारित पहचान का 'सर्वहाराकरण' (Proletarianization) है। 'संस्कृतिकरण' (Sanskritization) के प्रभाव स्वरूप चूहे के सेवन में आई भारी कमी (पूर्वजों के 100% से बच्चों के 20.6% तक) सामाजिक कलंक से मुक्ति की छटपटाहट को दर्शाती है। यह अध्ययन सबाल्टर्न (Subaltern) समाजशास्त्र के क्षेत्र में नीतिगत हस्तक्षेप और जीवंत यथार्थ के बीच के अंतराल को पाटने का प्रयास करता है।*

***बीज शब्द :*** *सामाजिक रूपांतरण, मुसहर समुदाय, सामाजिक संस्तरण, वंचन, उपेक्षित वर्ग।*

**प्रस्तावना-**

भारतीय समाज के विकासवादी आख्यान में कुछ समुदाय ऐसे हैं जो 'ऐतिहासिक विस्मृति' के शिकार रहे हैं। मुसहर जाति इसी श्रेणी का एक ज्वलंत उदाहरण है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, किसी समुदाय का पिछड़ापन केवल आर्थिक दरिद्रता का सूचक नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक पदानुक्रम में उसकी स्थिति और

[1] पी-एच.डी. (समाजशास्त्र), महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.).
ई-मेल. - chandanitripathi29989@gmail.com

संसाधनों तक उसकी पहुँच का परिणाम होता है। पिछले सौ वर्षों में भारत ने औपनिवेशिक दासता से लेकर वैश्विक महाशक्ति बनने तक का सफर तय किया है, किंतु मुसहर समुदाय के लिए यह यात्रा 'स्थिर गतिशीलता' (Stagnant Mobility) की रही है।

मिर्ज़ापुर जनपद, जिसे 'मिर्जा' (Mirza - शासक का पुत्र) और 'पुर' (Place) के संयोग से 'राजाओं का स्थान' कहा जाता है, अपनी इस भव्य फारसी व्युत्पत्ति के विपरीत मुसहरों जैसे भूमिहीन और उपेक्षित समुदायों की त्रासदी का भी साक्षी रहा है। लॉर्ड वेलेस्ली द्वारा स्थापित इस व्यापारिक केंद्र ने कपास, रेशम, खिलौनों आदि के माध्यम से वैश्विक पहचान तो बनाई, लेकिन इसके जंगलों और ग्रामीण अंचलों में निवास करने वाले मुसहर 'अदृश्य' ही बने रहे। शोध की मुख्य समस्या यह है कि आखिर राज्य के निरंतर हस्तक्षेप और अनगिनत कल्याणकारी योजनाओं के बावजूद यह समुदाय सामाजिक संस्तरण के अंतिम सोपान पर ही क्यों जड़वत है?

मिर्ज़ापुर के मझवां ब्लॉक का यह अध्ययन केवल सांख्यिकीय आँकड़े प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि यह उन सूक्ष्म कारणों की पड़ताल करता है जो 'नीति' (Policy) और 'वास्तविक यथार्थ' (Lived Reality) के बीच एक गहरी खाई पैदा करते हैं। प्रस्तुत शोध का मूल तर्क यह है कि मुसहरों का पिछड़ापन एक 'बहुआयामी वंचन' (Multidimensional Deprivation) है, जहाँ भूमिहीनता, शैक्षणिक अवरोध और ऐतिहासिक कलंक (Historical Stigma) एक-दूसरे को पुष्ट करते हैं। यह पिछड़ापन केवल संसाधनों के अभाव का नहीं, बल्कि 'पहचान के संकट' और 'संरचनात्मक बहिष्करण' (Structural Exclusion) का परिणाम है।

**साहित्य समीक्षा-**

मुसहर समुदाय पर विद्वानों का विमर्श औपनिवेशिक काल के मानवशास्त्रीय विवरणों से आरंभ होकर आधुनिक 'सबाल्टर्न' (Subaltern) सशक्तिकरण के अध्ययनों तक विकसित हुआ है। प्रारंभिक अध्ययन मुसहरों को 'अपराधी' या 'वन-निवासी' के रूप में देखते थे, जबकि समकालीन समाजशास्त्र उन्हें 'नागरिक अधिकारों' से वंचित वर्ग के रूप में देखता है। उत्तर प्रदेश, बिहार और नेपाल के तराई क्षेत्रों में भौगोलिक रूप से विस्तृत यह समुदाय आज भी बुनियादी मानवाधिकारों और नागरिक पहचान के लिए संघर्षरत है (Banerjee, 2015; Tripathi & Tripathi, 2016; Jha, 2008)।

जी.एस. घुरिये (1932) ने अपनी कालजयी कृति 'कास्ट एंड रेस इन इंडिया' (Caste and Race in India) में जातियों के खंडनात्मक विभाजन (Segmental Division) और नागरिक तथा धार्मिक अक्षमताओं पर चर्चा की है। घुरिये का यह ढांचा मुसहरों की स्थिति को समझने के लिए आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि उनके प्रति 'सामाजिक दूरी' (Social Distance) आज भी कायम है। एम.एन. श्रीनिवास (1966) का 'संस्कृतिकरण' (Sanskritization) का सिद्धांत यहाँ महत्वपूर्ण है, क्योंकि मुसहर समुदाय चूहे खाने जैसी आदतों को छोड़कर उच्च जातियों के व्यवहारों को अपनाकर अपनी सामाजिक प्रस्थिति (Social Status)

सुधारने का प्रयास कर रहा है। 'नये भारत' के समावेशी विकास का दावा (Sharma, 2019) मुसहर बस्तियों में चूहा भक्षण की निरंतरता (D.W. News, 2017) के सामने खोखला सिद्ध होता है। यह विरोधाभास दर्शाता है कि भारत का आर्थिक विकास सामाजिक न्याय से पूरी तरह विच्छेदित (Decoupled) है। एक अन्य महत्वपूर्ण रुझान 'दलितों के भीतर भेदभाव' (Inter-Dalit Hierarchy) का है। जोशी और कुमार (2002) तथा जोधका (2017) यह स्पष्ट करते हैं कि अन्य दलित जातियां भी अपनी 'शुद्धता' बनाए रखने के लिए मुसहरों का बहिष्कार करती हैं। यह 'उप-हाशियाकरण' मुसहरों को दोहरी मार झेलने पर मजबूर करता है। इसके अतिरिक्त, गरीबी और पहचान के संकट ने समुदाय के युवाओं को सशक्तिकरण के वैकल्पिक मार्ग के रूप में माओवादी आंदोलनों की ओर भी आकर्षित किया है (Kennath, 2018; S.S.S. Report, 2015)। मुसहर समुदाय के उत्थान में राज्य की भूमिका विरोधाभासों से भरी है। बिहार में 'महादलित मिशन' ने मुसहरों को एक विशिष्ट राजनीतिक पहचान प्रदान की है, जिससे वे मुख्यमंत्री जैसे पदों तक पहुँच सके हैं (Archana & Singh, 2018; Kennath, 2018)। इसके विपरीत, उत्तर प्रदेश में बसपा जैसी दलित-केंद्रित सरकारों के दौर में भी मुसहर समुदाय राजनीतिक रूप से 'अदृश्य और बे-आवाज' बना रहा (Narayan, 2018)। सरकारी योजनाओं जैसे मनरेगा (MNREGA) और जननी सुरक्षा योजना की विफलता के पीछे भ्रष्टाचार और प्रशासनिक संवेदनहीनता प्रमुख कारण हैं (Rajgadiya, 2013; Bose, 2018)। मुसहर आज भी बी.पी.एल. कार्ड और पेंशन जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं (Patel & Patel, 2011)। ये विरोधाभास भविष्य के शोध के लिए स्पष्ट अंतराल और अवसर प्रदान करते हैं।

हालाँकि, यहाँ एक गंभीर 'शोध अंतराल' (Research Gap) दृष्टिगोचर होता है। अधिकांश साहित्य मुसहरों को एक 'समरूप' (Homogeneous) दरिद्र वर्ग मान लेता है। मिर्ज़ापुर जनपद के विशिष्ट संदर्भ में, उनके सामाजिक रूपांतरण के उन आयामों जैसे 'डिजिटल समावेशन के भीतर संरचनात्मक बहिष्करण' (Structural Exclusion within Digital Inclusion) पर विश्लेषण का अभाव रहा है। प्रस्तुत अध्ययन इसी कमी को पूरा करते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि इस समुदाय की सामाजिक समस्याओं और उनके पिछड़ेपन के कारणों के साथ उनके जीवन की 'मौलिक गुणवत्ता' में क्या सार्थक परिवर्तन आया है।

**सैद्धांतिक आधार एवं शोध प्रविधि-**

किसी भी हाशिए के समुदाय की वास्तविकता को जानने के लिए पारंपरिक पद्धतियाँ अक्सर विफल हो जाती हैं, क्योंकि वे 'सतही सत्य' को ही देख पाती हैं। अतः, प्रस्तुत शोध में 'त्रिभुजीकरण' की वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया गया है। इसमें परिमाणात्मक सर्वेक्षण को गुणात्मक 'लोकपद्धति विज्ञान' के साथ मिलाया गया है, ताकि उत्तरदाताओं के अनुभवों के अर्थ को गहराई से समझा जा सके।

***प्रतिचयन :*** शोध के लिए उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर जनपद का चयन 'उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन' के आधार पर किया गया, जहाँ मुसहरों की आबादी लगभग 17,046 (जनगणना 2011 के अनुसार) है। जनपद के 12 ब्लॉकों में से शीर्ष मुसहर आबादी वाले पांच ब्लॉकों को चिन्हित कर 'लॉटरी पद्धति' द्वारा 'मझवां ब्लॉक' का चयन

किया गया। मझवां के 55 गांवों में से 'पायलट सर्वे' के माध्यम से उन 18 गांवों को चिन्हित किया गया जहाँ मुसहर आबादी पाई गई। इन गांवों के कुल 480 परिवारों में से 240 परिवारों (50%) का अध्ययन किया गया।

***उपकरण एवं तकनीक:*** तथ्यों के संकलन के लिए 'साक्षात्कार अनुसूची', प्रत्यक्ष अवलोकन और द्वितीयक स्रोतों (Census 2011, जिला सांख्यिकी पत्रिका 2018) का उपयोग किया गया। लोकपद्धति विज्ञान के माध्यम से उन 'अनकहे सच' को जानने का प्रयास किया गया जिन्हें शुद्ध सांख्यिकी अक्सर नजरअंदाज कर देती है।

**विश्लेषण एवं विवेचना-**

सामाजिक रूपांतरण कोई रेखीय विकास नहीं है, बल्कि यह संरचनात्मक दबावों और व्यक्तिगत 'एजेंसी' के बीच का एक द्वंद्वात्मक संघर्ष है। मिर्ज़ापुर के मुसहरों का जीवन इस संघर्ष का जीवंत दस्तावेज है। इस समुदाय की सामाजिक समस्याओं के आंकड़ात्मक स्वरूप और और यथार्थता का धरातल एक दूसरे को आईना दिखाने जैसा कार्य करता नज़र आता है। उनके पिछड़ेपन के कारणों का स्वरूप उनमें विकासीय रूपान्तरण को अधपका स्वरूप देने व द्वंद्वात्मक संघर्ष के खांचे में फिट करने का कार्य करता दिखाई देता है।

***आवासीय एवं बुनियादी संरचना–***

**तालिका 1 : आवासीय स्थिति और बुनियादी सुविधाएं**

| आयाम | सांख्यिकीय स्थिति |
|---|---|
| आवास का प्रकार (अर्ध-पक्का) | 60.20% (पक्की छत किंतु कच्चा फर्श) |
| अस्थाई आवास (झोपड़ी/पॉलीथीन) | 21.67% |
| बिजली की पहुंच | 90.3% |
| बल्ब/ट्यूबलाइट की उपलब्धता | 97.29% |
| टेलीविजन (मनोरंजन) | 5% |
| कूलर (विलासिता) | 0% |
| गैस कनेक्शन की उपलब्धता (उज्ज्वला) | 82.23% |
| वास्तविक उपयोग (लकड़ी/उपले पर निर्भरता) | 81.04% |
| बाधा का मुख्य कारण | रिफिलिंग की उच्च लागत (आर्थिक अक्षमता) |

***स्रोत** – प्राथमिक आकड़ों पर आधारित*

आवास केवल सिर ढंकने की छत नहीं, बल्कि व्यक्ति की 'सामाजिक गरिमा' का भौतिक प्रतीक है। सर्वेक्षण के अनुसार, 60.20% मुसहर परिवार 'अर्ध-पक्का' मकानों में रहते हैं, जहाँ छत तो पक्की है लेकिन फर्श आज भी कच्ची मिट्टी की है। 21.67% परिवार आज भी झोपड़ी या पॉलीथीन के नीचे जीवन बसर कर रहे हैं।

- **आधुनिकता का छलावा:** अध्ययन में एक विरोधाभासी तथ्य (Paradoxical Fact) उभरा कि 90.3% परिवारों तक बिजली पहुँच चुकी है और 97.29% के पास बल्ब या ट्यूबलाइट हैं। लेकिन, जब हम मनोरंजन या विलासिता के साधनों की बात करते हैं, तो केवल 5% के पास टेलीविजन है और कूलर किसी के पास भी नहीं है। यह 'प्रकाश के भीतर अंधकार' की स्थिति है, जहाँ बिजली तो है लेकिन उसका उपयोग केवल बुनियादी उजाले तक सीमित है।

- **उज्ज्वला का यथार्थवादी विश्लेषण:** 82.23% परिवारों के पास गैस कनेक्शन है, जो राज्य की एक बड़ी उपलब्धि लगती है। किंतु, 81.04% परिवार आज भी लकड़ी या उपले पर खाना पकाते हैं। यह 'तकनीकी पहुँच' बनाम 'आर्थिक क्षमता' का संकट है। उत्तरदाताओं का स्पष्ट कहना है कि "पहली बार मुफ्त मिला, अब भरवाने का पैसा कहाँ से लाएं?" यह दर्शाता है कि मुसहर समुदाय 'ऊर्जा संक्रमण' के प्रारंभिक द्वार पर ही ठिठक गया है।

समुदाय की आवासीय एवं बुनियादी सुविधाओं की अभावता की यह समस्या न केवल उनके आर्थिक पिछड़ेपन की स्थिति का स्पष्टीकरण है बल्कि आर्थिक और भूमि वितरण की संरचनात्मक विफलता का भी प्रतीक है। इन सभी बुनियादी सुविधाओं एवं आवास की अभावता की समस्या के पीछे भूमिहीनता और रोजगार हीनता मूल कारण है जो सामाजिक भेदभाव से स्थिर और पोषित हो रही है।

***आर्थिक असुरक्षा एवं भूमिहीनता*** –

**तालिका 2 : पेशागत विस्थापन (पारंपरिक से आधुनिक)**

| आयाम | सांख्यिकीय स्थिति |
|---|---|
| पारंपरिक पेशा (दोना-पत्तल बनाना) | वर्तमान में केवल 14.58% |
| दैनिक मजदूरी पर निर्भरता | 66.87% |
| श्रम का प्रकार | अकुशल श्रम (Unskilled Labor) |
| भूमि स्वामित्व | 0% (पूर्णतः भूमिहीन) |

***स्रोत*** *– प्राथमिक आकड़ों पर आधारित*

मिर्ज़ापुर के इस अध्ययन का सबसे परेशान करने वाला निष्कर्ष 100% भूमिहीनता है। कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भूमिहीन होना न केवल आर्थिक वंचन है, बल्कि 'शक्तिहीनता' का पर्याय भी है।

- **पेशागत विस्थापन:** मुसहरों का पारंपरिक पेशा 'दोना-पत्तल' बनाना था, जो अब केवल 14.58% तक सिमट गया है। 66.87% लोग अब पूर्णतः 'दैनिक मजदूरी' पर निर्भर हैं। यह वन-आधारित स्वतंत्र पहचान से हटकर 'अकुशल श्रम' की ओर एक ऐसा विस्थापन है, जहाँ वे पूरी तरह से उच्च जातियों के भूस्वामियों पर आश्रित हो गए हैं। भूमि का स्वामित्व न होना उनकी मोलभाव करने की क्षमता (Bargaining Power) को समाप्त कर देता है।

***शिक्षा और निर्धनता का दुष्चक्र*** –

**तालिका 3 : शिक्षा और भेदभाव के आंकड़े**

| आयाम | सांख्यिकीय स्थिति |
|---|---|
| महिला साक्षरता दर | मात्र 3.54% (निरक्षरता: 96.45%) |
| स्कूल न जाने वाले बच्चे | 47.08% |
| स्कूल छोड़ने का कारण (जातिगत भेदभाव) | 34.48% परिवारों द्वारा स्वीकृत |
| शिक्षण संस्थानों का वातावरण | अन्य छात्रों एवं शिक्षकों द्वारा उपहास व हतोत्साहन |

***स्रोत*** *– प्राथमिक आकड़ों पर आधारित*

शिक्षा मुक्ति का मार्ग है, लेकिन मुसहरों के लिए यह मार्ग 'जातिगत अवरोधों' से भरा है। 96.45% मुसहर महिलाएं आज भी निरक्षर हैं। यह आँकड़ा समाज के माथे पर कलंक की तरह है।

- **सामाजिक दूरी और भेदभाव:** 34.48% उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि उनके बच्चों के स्कूल छोड़ने का कारण 'जातिगत भेदभाव' है। स्कूलों में मुसहर बच्चों को अन्य बच्चों या कभी-कभी शिक्षकों द्वारा 'चिढ़ाया' जाना उन्हें मानसिक रूप से हतोत्साहित करता है। यह 'सोशल डिस्टेंस' की वह सूक्ष्म राजनीति है जो शिक्षा के संवैधानिक अधिकार को जमीनी स्तर पर बेअसर कर देती है। 47.08% बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं, जो इस बात का संकेत है कि 'अगली पीढ़ी' भी उसी अकुशल श्रम के दुष्चक्र में फंसने को तैयार है।

मुसहर समुदाय की निर्धनता, रोजगारहीनता, आर्थिक असुरक्षा, भूमिहीनता से मुक्ति शिक्षा के द्वारा संभव हो सकता था लेकिन शिक्षा की स्थिति खुद उनके पिछड़ेपन का आधार बनकर उनके दुष्चक्र की नियति बन गई है। इन समस्याओं के निदान बनाने की जगह शिक्षा का पिछड़ापन खुद एक सामाजिक समस्या बन गई है। इन सभी समस्याओं को बल देने उनके स्थिरीकरण और संस्थानिकरण का कार्य इस समुदाय के प्रति किए जा रहे सामाजिक भेदभाव के द्वारा संभव हो जाता है। उनके प्रति होने वाला भेदभाव, अन्य समुदायों द्वारा बरती जाने वाली सामाजिक दूरी उनके अधिकांश सामाजिक समस्याओं और पिछड़ेपन का कारण है।

***राजनीतिक चेतना बनाम बाहुबली वर्चस्व*** –

**तालिका 4 : राजनीतिक साक्षरता और बाधाएं**

| आयाम | सांख्यिकीय स्थिति |
|---|---|
| वोटर आईडी की उपलब्धता | 88.63% |
| राष्ट्रीय नेतृत्व का ज्ञान (PM/CM) | 100% |
| मतदान के दौरान दबाव/बाहुबल | 17.29% |
| निर्णय प्रक्रिया में बाहरी प्रभाव | उच्च जातियों और बाहुबलियों का हस्तक्षेप |

***स्रोत*** *– प्राथमिक आकड़ों पर आधारित*

राजनीतिक रूप से मुसहर अब 'वोट बैंक' से 'सचेत नागरिक' बनने की प्रक्रिया में हैं। 88.63% के पास वोटर आईडी है और 100% को प्रधानमंत्री का नाम पता है। लेकिन यह 'राजनीतिक साक्षरता' स्थानीय सत्ता संबंधों में परास्त हो जाती है।

- **लोकतंत्र का अवरोध:** 17.29% उत्तरदाताओं ने मतदान के दौरान दबाव की बात स्वीकार की है। 9.16% ने 'उच्च जातियों' और 5% ने 'बाहुबलियों' के प्रभाव का उल्लेख किया है। मझवां ब्लॉक की एक सूचनादाता 'A' (उम्र 49 वर्ष) का ग्राम प्रधान के लिए खड़ा होना चेतना का प्रतीक तो है, लेकिन उनकी हार और दबंगों द्वारा नामांकन वापस लेने का दबाव यह सिद्ध करता है कि जमीनी लोकतंत्र में अभी भी 'वर्चस्ववादी संरचनाएं' सक्रिय हैं। यह राजनीतिक रूपांतरण को 'सतही' बनाए रखती हैं।

***भोजन, चूहे का सेवन और संस्कृतिकरण (Dietary Shifts & Identity)*** - मुसहर पहचान के केंद्र में रहा 'चूहा' अब उनकी थाली से गायब हो रहा है। जहाँ 100% पूर्वज चूहा खाते थे, वहीं अब केवल 20.62% बच्चे ही इसका सेवन करते हैं। 79.37% परिवारों ने इसे पूरी तरह त्याग दिया है।

- **पहचान का पुनर्निर्माण:** समाजशास्त्रीय दृष्टि से, यह केवल भोजन का बदलना नहीं है, बल्कि 'संस्कृतिकरण' के माध्यम से 'पवित्रता' की ओर बढ़ना है। वे जानते हैं कि 'चूहा खाना' समाज की नजर में उन्हें 'निम्न' बनाता है, अतः वे पौष्टिक आहार (78.54%) की ओर बढ़कर उस कलंक (Stigma) को धोना चाहते हैं जो सदियों से उनके नाम के साथ जुड़ा है।

**तालिका 5 : मुसहर समुदाय में सामाजिक समस्याओं एवं उनके पिछड़ेपन में परिवर्तन का तुलनात्मक विश्लेषण**

| आयाम | पारंपरिक स्थिति (पूर्वज) | वर्तमान स्थिति | समाजशास्त्रीय व्याख्या |
|---|---|---|---|
| आवास | झोपड़ी / घास-फूस (100%) | अर्ध-पक्का मकान (60.20%) | भौतिक रूपांतरण की शुरुआत |
| व्यवसाय | दोना-पत्तल / वन संग्रह | दैनिक मजदूरी (66.87%) | वन-पहचान का सर्वहाराकरण |
| साक्षरता (महिला) | नगण्य (0%) | मात्र 3.54% साक्षर | संरचनात्मक वंचन का चरम |
| आहार (चूहा) | अनिवार्य (100%) | बच्चों में मात्र 20.6% | कलंक मुक्ति (Stigma removal) |
| राजनीतिक ज्ञान | शून्य / नगण्य | उच्च (100% पीएम/सीएम ज्ञान) | सूचनात्मक सशक्तिकरण |

| | | | |
|---|---|---|---|
| **निर्णय प्रक्रिया** | पितृसत्तात्मक | महिला भागीदारी (50% आर्थिक निर्णय) | सूक्ष्म लैंगिक रूपांतरण |

***स्रोत** – प्राथमिक आकड़ों पर आधारित*

***डिजिटल समावेशन बनाम संरचनात्मक बहिष्करण -*** मिर्ज़ापुर के मुसहरों का डेटा एक ऐसी वास्तविकता प्रस्तुत करता है जिसे 'डिजिटल समावेशन के भीतर संरचनात्मक बहिष्करण' (Structural Exclusion within Digital Inclusion) कहना उचित ही होगा। मोबाइल (79.37%) और बैंक खाते (81.45%) होने के बावजूद, उनके पास भूमि का न होना उन्हें उत्पादन के साधनों से दूर रखता है। पार्सन्स (Parsons) के 'सामाजिक व्यवस्था' सिद्धांत के आलोक में देखें तो मुसहर समाज 'अनुकूलन' (Adaptation) तो कर रहा है, लेकिन वह 'लक्ष्य प्राप्ति' (Goal Attainment) में सफल नहीं हो पा रहा है।

***अंतर पीढ़ीगत गतिशीलता -*** 77.28% उत्तरदाताओं का यह मानना कि वे अपने पूर्वजों से बेहतर हैं। इसे एक 'मनोवैज्ञानिक उपलब्धि अनुभव' तो कहा जा सकता है, लेकिन यह सुधार 'क्षैतिज' (Horizontal) अधिक है। वे एक तरह की गरीबी से निकलकर दूसरी तरह की 'आधुनिक गरीबी' में प्रवेश कर गए हैं। मनोवैज्ञानिक स्तर पर, छुआछूत का विरोध करने वाले 19.70% लोग इस समुदाय में पनप रही नई 'प्रतिष्ठा की आकांक्षा' (Dignity of Identity) को दर्शाते हैं। चूहा खाने की आदत का छूटना केवल भोजन का बदलना नहीं है, बल्कि सदियों पुराने सामाजिक कलंक से मुक्ति की तड़प है। यह 'डिजिटल इंडिया' और 'भूमिहीन भारत' के बीच का एक ऐसा द्वंद्व है जिसे सुलझाए बिना वास्तविक विकास संभव नहीं है।

**निष्कर्ष एवं सुझाव-**

मिर्ज़ापुर जनपद के मुसहर समुदाय का यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि इस समुदाय का विकास पिछड़ेपन की नीव पर निर्मित हवाई महल जैसा प्रतीत होता है। उनके जीवन में बिजली, मोबाइल और बैंक खाते जैसे 'बाहरी लक्षण' तो आ गए हैं, लेकिन भूमि का स्वामित्व, उच्च-स्तरीय शिक्षा और राजनीतिक स्वायत्तता, निर्धनता, रोजगारहीनता, आर्थिक असुरक्षा जैसे 'आंतरिक स्तंभ' अभी भी अत्यंत कमजोर स्थिति में हैं और उनकी सामाजिक समस्याओं के वृहद कैनवास को प्रदर्शित करती हैं। इन आंतरिक स्तंभों के पिछड़ेपन के कारणों में निर्विवाद रूप से सामाजिक दूरी और भेदभाव पोषक के रूप में कार्य कर रहे है। साथ ही सरकारी सहायता और निवारक उपक्रमों की प्रभावशीलता भी संदेहास्पद अवस्था को ही प्रदर्शित कर रही है।

**प्रमुख सुझाव:**

1. **भूमि पट्टा आवंटन:** 100% भूमिहीनता ही उनके शोषण का मूल है। सरकार को मुसहरों के लिए केवल आवासीय ही नहीं, बल्कि 'कृषि योग्य भूमि' के पट्टों का आवंटन युद्ध स्तर पर करना चाहिए।
2. **शिक्षा में जातिगत संवेदीकरण:** स्कूलों में मुसहर बच्चों के साथ होने वाले भेदभाव को रोकने के लिए शिक्षकों और छात्रों के मध्य 'जातिगत संवेदीकरण' (Caste Sensitization) कार्यक्रम अनिवार्य किए जाने चाहिए।

3. **उज्ज्वला रिफिल सब्सिडी:** केवल सिलेंडर देना पर्याप्त नहीं है। अति-पिछड़े वर्गों के लिए गैस रिफिलिंग पर 'अतिरिक्त सब्सिडी' (Last-mile Subsidy) दी जानी चाहिए ताकि वे वापस धुएं और बीमारियों की ओर न लौटें।
4. **लक्षित कौशल विकास:** पारंपरिक दोना-पत्तल व्यवसाय को आधुनिक पैकेजिंग तकनीक से जोड़कर उन्हें स्वरोजगार के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

निष्कर्षतः, मुसहरों का यह पिछड़ापन केवल उनकी समस्या नहीं, बल्कि हमारे सामाजिक ढांचे की असफलता है। समावेशी विकास के लिए 'बुनियादी ढांचा' के साथ-साथ 'सामाजिक न्याय' का होना अनिवार्य है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची-**


- D.W. News. (2017, दिसम्बर 7). *मुसहर जाति और भोजन का संघर्ष*. https://www.dw.com/hi/musahar-community-rat-eaters
- अर्चना, एवं सिंह. (2018). *महादलित मिशन और बिहार में दलितों का विकास*. सोशल साइंस जर्नल.
- केन्नाथ. (2018). *बिहार में मुसहर आबादी: जनसंख्यात्मक और स्वास्थ्य विवरण*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- घुरिये, जी. एस. (1932). *कास्ट एंड रेस इन इंडिया* (Caste and Race in India). केगन पॉल, ट्रेंच, ट्रुब्नर एंड कंपनी.
- जिला सांख्यिकी पत्रिका (2018). *मिर्ज़ापुर सांख्यिकी विवरण*. उत्तर प्रदेश सरकार.
- जोधका, सुरिन्दर एस. (2017). *दलित पहचान और जाति संस्तरण का संघर्ष*. ऑक्सफोर्ड इंडिया.
- जोशी, हेमन्त, एवं कुमार, संजय. (2002). *गंगा के मैदानी भागों में मुसहर समुदाय: अस्मिता और संस्कृति*. वाणी प्रकाशन.
- झा, सुभाष. (2008). *धनुषा (नेपाल) के मुसहरों की नृजातीय पहचान*. एथ्नोग्राफिक रिपोर्ट.
- ट्रिपाठी, पी., एवं त्रिपाठी, एस. (2016). *भारत अनुसूचित जाति एवं जनजाति: सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य*. विकास पब्लिशिंग हाउस.
- नारायण, बद्री. (2018). *उत्तर प्रदेश के अदृश्य और बे-आवाज दलित*. पेंगुइन रैंडम हाउस.
- पटेल, एवं पटेल. (2011). *जौनपुर के मुसहरों की सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य दशाएं*. हेल्थ रिसर्च जर्नल.
- पार्सन्स, टी. (1951). *द सोशल सिस्टम*. रूटलेज.

- बनर्जी, जयन्त. (2015). *दलित विमर्श में मुसहर समुदाय का स्थान*. विमर्श पब्लिकेशन.
- बोस, तरणन कांति. (2018, जून 1). *उत्तर प्रदेश के मुसहरों की स्वास्थ्य स्थिति और भेदभाव*. रिसर्चगेट.
- भारत की जनगणना (2011). *जिला जनगणना हस्तपुस्तिका - मिर्ज़ापुर*. भारत सरकार.
- मर्डोक, जी. पी. (1949). *सोशल स्ट्रक्चर*. मैकमिलन कंपनी.
- मेज़र, एम. (1971). *सोशल रिसर्च मेथड्स*. हारपर एंड रो.
- राजगढ़िया, विष्णु. (2013). *मनरेगा और ग्रामीण भारत में परिवर्तन*. ग्रामीण विकास जर्नल.
- लुई ड्यूमोंट. (1966). *होमो हाइरार्किकस: द कास्ट सिस्टम एंड इट्स इम्प्लिकेशन्स*. शिकागो प्रेस.
- शर्मा, एस. (2019). *समावेशी विकास और नया भारत*. प्रभात प्रकाशन.
- शाह, ए. एम. (2010). *द स्ट्रक्चर ऑफ इंडियन सोसाइटी*. ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- शोषित सेवा संघ (S.S.S). (2015). *बिहार के मुसहर बच्चों के लिए आवासीय शिक्षा और सामाजिक स्थिति*. वार्षिक रिपोर्ट.
- श्रीनिवास, एम. एन. (1966). *सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया*. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
- सिंह, योगेंद्र. (1973). *मॉडर्नाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन*. थॉमसन प्रेस.

***Manuscript Timeline***
***Submitted :*** *July 31, 2025* ***Accepted :*** *August 10, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# भारतीय कला एवं संस्कृति में महिलाओं की भूमिका

**सायली गजानन पिपरे** [1]

**शोध सारांश**

***भा****रत, कला और संस्कृति की दृष्टि से एक अत्यंत समृद्ध राष्ट्र रहा है, जहाँ महिलाओं की भूमिका सदैव महत्त्वपूर्ण और बहुआयामी रही है। भारतीय कला ने न केवल महिलाओं की सामाजिक स्थिति को प्रतिबिंबित किया है, बल्कि इसके विकास, संरक्षण और संवर्धन में भी महिलाओं का योगदान अद्वितीय रहा है। प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर वैदिक युग, मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन और 21वीं सदी की समकालीन कला तक महिलाओं ने न केवल 'कला के विषय' या 'प्रेरणा' के रूप में, बल्कि 'निर्माता' और 'संरक्षिका' के रूप में भी अपनी भूमिका को सशक्त किया है। विशेष रूप से, लोककला और सांस्कृतिक विरासत को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करने का श्रेय महिलाओं को ही जाता है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भारतीय इतिहास का पुनरावलोकन करना है, जिसमें महिलाओं के योगदान को केंद्र में रखा गया है। यह अध्ययन सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर वर्तमान समकालीन कला तक महिलाओं की ऐतिहासिक यात्रा और उनके योगदान का विश्लेषण प्रस्तुत करना है। साथ ही, यह रेखांकित करता है कि कैसे वर्तमान समय में महिलाओं ने कला को आत्म-अभिव्यक्ति और सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम बना लिया है।''*

***मुख्य शब्द*** *– भारतीय संस्कृति, स्त्रीशक्ति, लोक कला, भक्ति आन्दोलन, आधुनिक काल, परंपरा।*

**प्रस्तावना-**

ऐतिहासिक रूप से भारतीय संदर्भ में कला और संस्कृति केवल मनोरंजन के साधन नहीं थे, बल्कि वे जीवन जीने की एक पद्धति रहे हैं। भारतीय दर्शन के दृष्टिकोण से देखें, तो नारी को 'शक्ति' का रूप माना गया है। भारतीय कला और संस्कृति में महिलाओं की भूमिका को दो मुख्य दृष्टिकोणों से देखा जाता है – पहला, कला के 'विषय' या 'प्रेरणा' के रूप में और दूसरा, कला के 'निर्माता' या 'सर्जक' के रूप में। प्राचीन काल की सिन्धु घाटी सभ्यता से ही कला और संस्कृति में महिलाओं का उल्लेख मिलता है। प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। जब हम अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण की बात करते हैं, तो इसमें महिलाओं की भूमिका न केवल महत्त्वपूर्ण है, बल्कि अपरिहार्य भी है। भारतीय कला के जिस भी कालखंड की हम बात करें, वहां महिलाओं की उपस्थिति केंद्र में रही है। वेदों में भी महिलाओं को उच्च सम्मान दिया गया है। भारतीय संस्कृति में देवी, माँ, बेटी और बहन के रूप में नारी को दिव्यता और प्रेम का

[1] पी-एच.डी. शोधार्थी, स्त्री अध्ययन विभाग, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र). फोन नं -9370836122; ईमेल -Sayalipipare5@gamil.com

प्रतीक माना गया है। सिन्धु घाटी सभ्यता में नारी को सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक माना गया। इसके साथ ही, संस्कृति, परंपराओं और प्रथाओं को संरक्षित कर उन्हें आगे बढ़ाने का कार्य भी महिलाओं ने ही किया है। भारतीय कला और संस्कृति—चाहे वह चित्रकला हो, साहित्य हो या मूर्तिकला- में नारी सौंदर्य, प्रेम और त्याग का प्रतीक रही है। सिन्धु घाटी सभ्यता की 'नर्तकी' (Dancing Girl) से लेकर अजंता की गुफाओं में चित्रित 'पद्मपाणि' की संगिनी तक, और खजुराहो से लेकर कोणार्क के मंदिरों की दीवारों पर उकेरी गई नर्तकियों की मूर्तियाँ यह सिद्ध करती हैं कि भारतीय कलाकार की कल्पना नारी के बिना अधूरी थी।"

यद्यपि भारतीय इतिहास में दरबारी पुरुष कलाकारों का उल्लेख प्रमुखता से मिलता है, लेकिन भारत की संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रखने का कार्य महिलाओं ने किया है। इसे हम आज 'लोक कला' के रूप में जानते हैं। चाहे वह महाराष्ट्र की वारली हो, बिहार की मधुबनी हो, बंगाल की कांथा हो, या उत्तर प्रदेश की चिकनकारी—ये सभी कलाएँ महिलाओं की ही देन हैं। इन कलाओं के लिए किसी औपचारिक प्रशिक्षण केंद्र का अस्तित्व नहीं था; यह 'गुरु-शिष्य' परंपरा से इतर, घर-आंगन में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होने वाली विरासत रही है, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।"

इसके अतिरिक्त, प्रदर्शन कला के क्षेत्र में भी महिलाओं का योगदान अद्वितीय रहा है। वैदिक काल में जहाँ अपाला और घोषा जैसी विदुषियों ने ऋचाओं की रचना की, वहीं मध्यकाल में मंदिरों की 'देवदासी' परंपरा ने भरतनाट्यम और ओडिसी जैसे शास्त्रीय नृत्यों को लुप्त होने से बचाए रखा। भक्ति आंदोलन के दौरान मीराबाई और अंडाल जैसी कवयित्रियों ने संगीत और नृत्य के माध्यम से न केवल ईश्वर की आराधना की, बल्कि तत्कालीन पितृसत्तात्मक समाज की रूढ़ियों को भी चुनौती दी। आधुनिक भारत में, महिलाओं ने कला को अपनी 'आवाज़' बनाया है। 19वीं और 20वीं सदी के पुनर्जागरण काल से लेकर आज के समकालीन युग तक, महिला कलाकार केवल परंपरा की वाहक भर नहीं हैं, बल्कि वे अपनी कला के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन, नारीवाद और अपनी स्वतंत्र पहचान को भी रेखांकित कर रही हैं।

**भारतीय कला और संस्कृति के कालखंडो में महिलाएँ-**

भारतीय कला और संस्कृति का इतिहास सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेषों और वैदिक ऋचाओं की गूँज से आरंभ होता है। इस कालखंड में महिलाओं की स्थिति और कला में उनकी भूमिका को समझना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यही वह समय था जिसने भारतीय समाज में 'नारी' और 'संस्कृति' के अंतर्संबंधों की नींव रखी। प्राचीन भारत में महिलाओं को न केवल सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, बल्कि वे कला, साहित्य और धर्म के क्षेत्र में सक्रिय योगदानकर्ता भी थीं। भारतीय उपमहाद्वीप में कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रथम प्रमाण सिंधु घाटी सभ्यता से प्राप्त होता है। पुरातात्विक साक्ष्यों से यह संकेत मिलता है कि तत्कालीन समाज में मातृसत्तात्मक तत्वों की प्रधानता थी, या कम से कम वहाँ महिलाओं का सामाजिक स्थान अत्यंत प्रतिष्ठित था। भारतीय उपमहाद्वीप में कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रथम प्रमाण सिंधु घाटी सभ्यता (हड़प्पा और मोहनजोदड़ो) से प्राप्त होता है। पुरातात्विक साक्ष्यों से यह संकेत मिलता है कि तत्कालीन समाज में मातृसत्तात्मक तत्वों की प्रधानता थी, या कम से कम वहाँ महिलाओं का सामाजिक स्थान अत्यंत प्रतिष्ठित था। उत्खनन में बड़ी संख्या में

टेराकोटा की नारी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इतिहासकार इन्हें 'मातृदेवी' या 'उर्वरता की देवी' के रूप में परिभाषित करते हैं।

यह इस बात का प्रमाण है कि संस्कृति के आरंभिक चरण में ही नारी को 'सृजन की शक्ति' के रूप में पूजा जाता था। यह कलात्मक अभिव्यक्ति केवल धार्मिक कर्मकांड तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह समाज में महिलाओं की केंद्रीय भूमिका और महत्त्व का प्रतीक थी। मोहनजोदड़ो से प्राप्त लगभग 4 इंच की 'कांस्य नर्तकी' की मूर्ति विश्व कला इतिहास में एक अद्वितीय स्थान रखती है। उसकी मुद्रा कमर पर हाथ और आत्मविश्वास से भरा चेहरा-यह स्पष्ट करती है कि उस दौर में नृत्य और संगीत जैसी ललित कलाएँ विकसित अवस्था में थीं और महिलाएँ इनमें पेशेवर रूप से संलग्न थीं। यह मूर्ति किसी दमित नारी का चित्रण नहीं, बल्कि एक सशक्त, स्वतंत्र और आत्मविश्वासी कलाकार की छवि प्रस्तुत करती है। हड़प्पाकालीन महिलाएँ केवल कला का 'विषय' नहीं थीं, बल्कि कला के निर्माण में भी उनकी सक्रिय भूमिका थी। मनके बनाने और वस्त्र निर्माण, विशेषकर कताई-बुनाई में महिलाओं का प्रमुख योगदान रहा होगा, जो उस समय की अर्थव्यवस्था और दस्तकारी का मुख्य आधार था।"

वैदिक काल को भारतीय ज्ञान और संस्कृति का 'स्वर्ण युग' माना जा सकता है। इस काल में 'कला' का अर्थ केवल मूर्तिकला तक सीमित नहीं था, बल्कि साहित्य और काव्य सृजन इसका प्रमुख अंग था। वैदिक साहित्य इस बात का साक्षी है कि महिलाओं को शिक्षा का पूर्ण अधिकार था और वे वेदों की रचना में पुरुषों के समान ही सहभागी थीं। ऋग्वेद में लगभग 27 विदुषी महिलाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्हें 'ऋषिका' या 'ब्रह्मवादिनी' कहा गया है। इनमें घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला और सिकता प्रमुख हैं। इन्होंने न केवल वैदिक ऋचाओं की रचना की, बल्कि जटिल दार्शनिक प्रश्नों पर भी गहन चिंतन किया। यह भारतीय संस्कृति का वह दौर था जब महिलाएँ समाज का बौद्धिक नेतृत्व कर रही थीं। उत्तर वैदिक काल में बृहदारण्यक उपनिषद में गार्गी और याज्ञवल्क्य के बीच हुआ शास्त्रार्थ ऐतिहासिक है। राजा जनक की सभा में गार्गी ने अपनी विद्वत्ता से तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ ऋषियों को चुनौती दी थी। इसी प्रकार, मैत्रेयी ने भौतिक सुखों का त्याग कर 'अमृतत्व' (मोक्ष) के ज्ञान को प्राथमिकता दी। यह दर्शाता है कि उस समय की संस्कृति में आध्यात्मिक और दार्शनिक स्तर पर महिलाओं का योगदान सर्वोच्च था। वैदिक संस्कृति में कोई भी धार्मिक कार्य पत्नी के बिना पूर्ण नहीं माना जाता था। यह केवल एक रस्म नहीं थी, बल्कि समाज में महिलाओं की अपरिहार्यता और समानता को स्थापित करने वाला एक सांस्कृतिक नियम था।

जैसे-जैसे भारत में साम्राज्यों का उदय हुआ, कला का माध्यम लकड़ी और मिट्टी से परिवर्तित होकर पाषाण हो गया। इस दौर में बौद्ध और जैन कला का विकास हुआ, जिसमें महिलाओं की भूमिका मुख्य रूप से दो रूपों में परिलक्षित हुई: एक 'संरक्षक' के रूप में और दूसरी 'कलाकृति' या 'विषय' के रूप में। मौर्य काल की सबसे उत्कृष्ट कलाकृति 'दीदारगंज की यक्षी' (चंवर धारिणी) है।पॉलिश किए हुए बलुआ पत्थर से बनी यह मूर्ति नारी सौंदर्य, गरिमा और शारीरिक अनुपात का बेमिसाल उदाहरण है। यह भारतीय कला में नारी चित्रण के उच्च मानकों को स्थापित करती है। सांची और भरहुत के स्तूप: इन स्तूपों की वेदिकाओं पर उकेरी गई

शालभंजिका और यक्षिणियों की मूर्तियाँ प्रकृति और नारी के गहरे संबंध को दर्शाती हैं।वे वृक्षों को स्पर्श करती हुई दिखाई गई हैं, जो यह संकेत देता है कि नारी 'प्रकृति' की ही तरह सृजनकारी है।महिलाएँ संरक्षक के रूप में: यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य है। सांची और भरहुत के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इन स्मारकों के निर्माण के लिए धन देने वालों में बड़ी संख्या में महिलाएँ थीं जिनमें रानियाँ, सामान्य गृहणियाँ और यहाँ तक कि बौद्ध भिक्षुणियाँ भी शामिल थीं। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत की महिलाएँ आर्थिक रूप से स्वतंत्र थीं और कला एवं संस्कृति के संरक्षण में सक्रिय रूप से योगदान देती थीं। सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा का नाम भी उल्लेखनीय है, जो भारतीय संस्कृति और धम्म के प्रचार के लिए श्रीलंका गईं।

मध्यकाल को भारतीय इतिहास में 'सांस्कृतिक संक्रमण' का दौर माना जाता है। इस युग में भारतीय कला ने मंदिर की दीवारों से निकलकर राजदरबारों और जन-मानस के गीतों तक की यात्रा तय की। यद्यपि स्मृतियों और धर्मशास्त्रों ने इस काल में महिलाओं की सामाजिक स्वतंत्रता को सीमित किया (जैसे पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि) तथापि विरोधाभासी रूप से यही वह दौर था जब महिलाओं ने कला, साहित्य और संगीत के माध्यम से पितृसत्तात्मक व्यवस्था को सबसे कड़ी चुनौती दी। मीरा ने राजपुताना के राजसी वैभव को त्यागकर एकतारा थाम लिया। उनके पद (भजन) आज भी राजस्थानी और हिंदी साहित्य की अनमोल धरोहर हैं। उन्होंने 'राग गोविंद' और 'नरसी जी का मायरा' जैसी रचनाओं के माध्यम से सिद्ध किया कि एक महिला अपनी शर्तों पर ईश्वर और कला को साध सकती है। दक्षिण भारत की एकमात्र महिला आलवार संत 'अंडाल' द्वारा रचित 'तिरुप्पवई' आज भी तमिल संस्कृति और कर्नाटक संगीत का अभिन्न अंग है। उनकी कविताएँ श्रृंगार और भक्ति का अद्भुत संगम हैं। कर्नाटक की अक्का महादेवी ने 'वचन साहित्य' (कन्नड़) और कश्मीर की लल्लेश्वरी ने 'वाख' (कश्मीरी) के माध्यम से न केवल साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि सामाजिक रूढ़ियों पर भी कड़ा प्रहार किया। इनका योगदान भारतीय साहित्य के इतिहास में मील का पत्थर है।

गुप्त काल के बाद और पूर्व-मध्यकाल में भारत में मंदिर निर्माण का एक नया युग आया। खजुराहो (मध्य प्रदेश), कोणार्क (ओडिशा), और तंजौर (तमिलनाडु) के मंदिरों की दीवारों पर उकेरी गई कलाकृतियाँ उस समय की महिलाओं की सामाजिक और कलात्मक स्थिति का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य हैं। खजुराहो और भुवनेश्वर के मंदिरों में 'सुरसुंदरी' और 'नायिकाओं' की मूर्तियाँ केवल कामुकता का प्रदर्शन नहीं हैं। उन्हें पत्र लिखते हुए, बांसुरी बजाते हुए, नृत्य करते हुए और श्रृंगार करते हुए दिखाया गया है। महर्षि वात्स्यायन के कामसूत्र में उल्लिखित '64 कलाओं' (जिसमें गायन, वादन, चित्रकला आदि शामिल हैं) में महिलाओं की निपुणता का यह 'पाषाण-साक्ष्य' है। दक्षिण भारत में चोल साम्राज्य के दौरान बनी 'नटराज' की मूर्तियों के साथ-साथ 'उमा-पार्वती' और 'शिवकामी' की कांस्य प्रतिमाएँ नारी देह की लोच और गरिमा का सर्वोच्च कलात्मक उदाहरण हैं। यहाँ देवी केवल ईश्वर की पत्नी नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र पूज्य शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

मध्यकाल का सबसे क्रांतिकारी पहलू 'भक्ति आंदोलन' था। जब मंदिरों और संस्कृत भाषा पर पुरुषों का एकाधिकार स्थापित हो गया, तब महिला संतों ने लोकभाषा में कविता और संगीत के माध्यम से ईश्वर से

सीधा संवाद स्थापित किया। यह केवल धर्म नहीं, बल्कि साहित्य और संगीत का एक नया अध्याय था। भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य, जिसे हम आज देखते हैं, उसका मानकीकरण और संरक्षण इसी काल में हुआ, जिसमें महिलाओं की भूमिका मुख्य 'संरक्षिका' की रही। दक्षिण भारत के मंदिरों में 'देवदासी' और ओडिशा में 'महारी' परंपरा ने भरतनाट्यम और ओडिसी नृत्य शैलियों को काल के प्रवाह में लुप्त होने से बचाए रखा। यद्यपि औपनिवेशिक काल और बाद के सुधार आंदोलनों में इस प्रथा को सामाजिक कुरीति माना गया, किन्तु कलात्मक दृष्टि से यह सत्य है कि यदि ये महिलाएँ न होतीं, तो भारत की प्राचीन नृत्य विधाएँ, ताल और अभिनय के गूढ़ नियम नष्ट हो जाते। ये महिलाएँ केवल नर्तकियाँ नहीं, बल्कि संस्कृत, साहित्य और संगीत की मर्मज्ञ विदुषियाँ थीं।" यद्यपि चित्रकला का क्षेत्र पुरुष-प्रधान था, तथापि इतिहास में कुछ महिला चित्रकारों के नाम मिलते हैं। जहाँगीर के काल में साहिफ़ा बानो और नादिरा बानो जैसी महिला कलाकारों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने मुगल हरम के भीतर रहकर चित्रकला की साधना की। यह तथ्य बताता है कि अवसर मिलने पर महिलाओं ने तूलिका (Brush) थामने में संकोच नहीं किया।

19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के आरंभ में भारतीय कला में एक बड़ा बदलाव आया। अब कला केवल धर्म या दरबार तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह 'व्यक्तिगत अभिव्यक्ति' का माध्यम बन गई। औपनिवेशिक शिक्षा और स्वतंत्रता संग्राम ने भारतीय महिलाओं में नई चेतना जगाई। इस दौर में महिला कलाकार 'परंपरा' से निकलकर 'आधुनिकता' की ओर बढ़ीं।

**निष्कर्ष-**

इस विस्तृत शोध अध्ययन के उपरांत, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय कला एवं संस्कृति का इतिहास महिलाओं के योगदान के बिना न केवल अपूर्ण है, बल्कि अस्तित्वहीन है। सदियों से, भारतीय समाज ने नारी को 'शक्ति' और 'प्रकृति' के रूप में पूजा है, और यही अवधारणा कला के क्षेत्र में भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती है। इतिहास के विभिन्न कालखंडों में महिलाओं की भूमिका बदलती रही, किंतु कभी समाप्त नहीं हुई। वैदिक काल में जहाँ गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों ने संस्कृति के बौद्धिक पक्ष को गढ़ा, वहीं मध्यकाल में सामाजिक बेड़ियों के बावजूद मीराबाई जैसी संत कवयित्रियों और मंदिरों की देवदासियों ने संगीत व नृत्य की लौ को जलाए रखा। प्राचीन काल में जहाँ नारी कला का केवल 'विषय' थी यक्षिणी और देवी के रूप में वहीं आधुनिक काल तक आते-आते वह एक सशक्त 'सृजनकर्ता' बन गई। समकालीन कलाकारों तक की यह यात्रा, नारी के 'मूक' से 'मुखर' होने और 'प्रतिरोध' का स्वर बनने की यात्रा है। महलों से आँगन तक इस शोध का सबसे महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी निष्कर्ष यह है कि भारतीय संस्कृति का वास्तविक संरक्षण राजदरबारों के भव्य महलों में उतना नहीं हुआ, जितना ग्रामीण महिलाओं के आँचलों और आँगनों में हुआ है। मधुबनी, वारली, कांथा और फुलकारी जैसी लोक कलाएँ इस बात का प्रमाण हैं। औपचारिक शिक्षा से वंचित (निरक्षर) मानी जाने वाली इन ग्रामीण महिलाओं ने ज्यामिति और मिथकों को अपनी उंगलियों के पोरों से जीवित रखा। उन्होंने घर की देहरी को ही संग्रहालय बना दिया। यदि ये महिलाएँ अपने गीतों और चित्रों के माध्यम से संस्कारों को अगली पीढ़ी को न सौंपतीं, तो भारत अपनी सांस्कृतिक पहचान बहुत पहले खो चुका होता।

वर्तमान चुनौतियाँ और भविष्य आज 21वीं सदी में, वैश्वीकरण (Globalization) के दौर में, भारतीय कला के सामने अपनी मौलिकता बचाने की चुनौती है। बाजारीकरण (Commercialization) के कारण मूल लोक कलाओं के लुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। ऐसे में, यह आवश्यक है कि हम 'घरेलू कला' को 'मुख्यधारा की कला' के बराबर सम्मान दें। भविष्य में, कला के संवर्धन के लिए उन लाखों अज्ञात महिला शिल्पकारों (Artisans) को उचित आर्थिक लाभ और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना अनिवार्य है, जो हमारी धरोहर को अपनी सांसों में संजोए हुए हैं। यह कहा जा सकता है कि नारी केवल भारतीय संस्कृति की 'वाहिका' नहीं, बल्कि उसकी 'निर्माता' और 'संरक्षिका' है। भारतीय कला ने "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" (जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं) की सूक्ति को कैनवास और पत्थर पर सार्थक कर दिखाया है। अंततः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यदि भारतीय संस्कृति एक भव्य भवन है, तो महिलाएँ उसकी नींव की ईंटें हैं। उन्होंने न केवल इस संस्कृति को जन्म दिया, बल्कि कठिन से कठिन समय में—चाहे वह विदेशी आक्रमण हो या सामाजिक कुरीतियाँ—इसे अपनी गोद में बचाए रखा। निस्संदेह, भारतीय कला की आत्मा 'स्त्री-तत्व' में ही बसती है।"

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची-**


- Basham, A. L. (2004). *The Wonder That Was India.* Rupa & Co.
- Craven, Roy C. (1997). *Indian Art: A Concise History.* Thames & Hudson.
- Dalmia, Yashodhara. (2006). *Amrita Sher-Gil: A Life.* Penguin Books.
- Dhamija, Jasleen. (1970). *Indian Folk Arts and Crafts.* National Book Trust.
- Jain, Jyotindra. (1984). *Painted Myths of Creation: Art and Ritual of an Indian Tribe.* Lalit Kala Akademi.
- Vatsyayan, Kapila. (1982). *Dance in Indian Painting.* Abhinav Publications.
- Vatsyayan, Kapila. (1997). *Indian Classical Dance.* Sangeet Natak Akademi.
- अग्रवाल, आर.ए. (2015). *भारतीय चित्रकला का इतिहास.* आलेख प्रकाशन.
- ठाकुर, उपेंद्र. (1985). *मधुबनी पेंटिंग.* अभिनव पब्लिकेशन्स.
- दिनकर, रामधारी सिंह. (1956). *संस्कृति के चार अध्याय.* साहित्य अकादमी.
- मिश्रा, रति. (2010). *भारतीय चित्रकला में नारी.* हिंदी बुक सेंटर.
- राय, उदयनारायण. (2008). *भारतीय कला और संस्कृति.* लोकभारती प्रकाशन.

***Manuscript Timeline***
***Submitted :*** *July 31, 2025* ***Accepted :*** *August 10, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# पर्यावरणीय संवेदनाओं के क्षितिज पर जैन धर्म : एक अवलोकन

**डॉ. कल्पना सिंह**[1]

**सारांश**

*वर्तमान समय में जब संसार के प्रत्येक देश सामूहिक रूप से एक ऐसे संकट से गुजर रहे हैं, जिसका परिणाम मानव अस्तित्व के प्रश्न से जुड़ा हुआ है। और वह संकट है पर्यावरणीय प्रदूषण। विकास के नाम पर अपनी जिज्ञासाओं को येन केन प्रकारेण पूर्ति हेतु मानवीय बुद्धि कुछ ऐसे सहज नियमों अथवा धर्म से विहीन होती जा रही है जो हमें पोषित, पल्लवित एवं विकसित करते हैं। पर्यावरण के बढ़ते दुष्प्रभाव को लेकर आज का वैश्विक वैज्ञानिक मन एक अतिगंभीर मुहाने पर खड़ा है और एक ऐसी राह की तलाश में है जो हमें संकट से समाधान की ओर, असंतुलन से संतुलन की ओर और भय से अभय की ओर ले जा सके। स्पष्ट है कि यह संकट कोई सामान्य प्रकार का संकट नहीं है इसलिए समाधान भी सामान्य नहीं हो सकता। अतः इस विषय पर बात करना सबसे अहम हो जाता है। विमर्श के क्रम में वैज्ञानिक समाधानों के साथ-साथ हमें उन नियमों को भी देखना होगा जो विभिन्न धार्मिक परंपराओं में गूथित है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में जैन धर्म एवं संस्कृति एक ऐसी अनूठी संस्कृति है जो उपरोक्त समस्या से निजात दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। सत्य, अहिंसा आदि जैसे कठिन व महत्वपूर्ण नियमों को आचार रूप में व्यवहारित करते हुए सह-अस्तित्व की भावना का प्रचार प्रसार ही सर्वमंगल का साधन हो सकता है, जहां जीव एवं अजीव उपकार, प्रतिउपकार करते हुए संतुलित जीवन की नींव खड़ा करते हैं। इसलिए जैन धर्म की यह अनूठी दृष्टि, पर्यावरण-प्रबंधन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण विवेचनीय एवं प्रासंगिक है।*

***मुख्य शब्द*** *– धर्म, पर्यावरणीय चेतना, प्रदूषण, संतुलन, अहिंसा, जैनाचार, सह-अस्तित्व*

पर्यावरण शब्द अपने आप में अत्यंत व्यापक है क्योंकि इसका प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। शाब्दिक रूप से पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है परि और आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर और आवरण का अर्थ है ढके हुए। अर्थात जो हमारे जीवन को चारों ओर से आवृत्त किए हुए है अथवा जिसके द्वारा संपूर्ण चराचर भौतिक जगत घिरा रहता है, वहीं पर्यावरण है। इस रूप में जो कुछ भी जड़-चेतन समूह हमारे आसपास है वह सभी पर्यावरण के अंग हैं। यथा वायु, जल, वनस्पति, पर्वत इत्यादि। यह सर्वविदित है कि मनुष्य एवं पर्यावरण में अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। हमारा अस्तित्व ही पर्यावरण के कारण है। जीवन जीने के लिए हमारे मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पर्यावरण से ही होती है। इसलिए हमारा परम कर्तव्य है कि पर्यावरण के प्रति सदैव उदार भाव रखें। वेद से लेकर वेदांत तक, वैदिक संस्कृति से लेकर श्रवण संस्कृति तक, सभी ने, सदैव

[1] असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ. एस.के.एस. वुमेंस कॉलेज, मोतिहारी.
ई-मेल. - kalpnasingh4ever@gmail.com

पर्यावरणीय घटकों की वंदना की है। इस वंदना का स्वरूप कभी पूजा के रूप में, कभी दर्शन के रूप में, कभी नीति के रूप में, कभी कथा के रूप में और कभी गीत व लोकगीत के रूप में समय-समय पर उपस्थित होता रहा है। पर्यावरण सद्भाव एवं सह-अस्तित्व का यह मनोभाव मनुष्य को मनुष्य के रूप में परिभाषित करता है।

यह विडंबना ही है कि जीवनदायिनी पर्यावरण के साथ हमारा संबंध उत्तरोत्तर अधोगति कर रहा है। आज अगर संपूर्ण विश्व में उपस्थित प्रमुख समस्याओं पर दृष्टिपात किया जाए तो पर्यावरण की समस्या एक सर्वप्रमुख समस्या के रूप में उभरकर हमारे सामने उपस्थित है। पर्यावरणीय असंतुलन की यह समस्या हमारे शाश्वत मूल्यों को नजर अंदाज करने, उतरदायित्व से भागने, अपने भौतिक सुख समृद्धि में अतिवृद्धि करने से उत्पन्न हुई है। विकास के नाम से प्रेरित व कृत्य हमारे तमाम अभिवृत्ति विनाश को आमंत्रित कर रही है। विगत कुछ शताब्दियों में आधुनिकीकरण के नाम पर जिस प्रकार औद्योगीकरण की शुरुआत की गई, वह आज निजी स्वार्थ, धनलोलुपता, नैतिकता में गिरावट, हमें उस स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है जहां अस्तित्व संकट से संबंधित प्रश्न उपस्थित हो रहे हैं। इन प्रश्नों में ओजोन परत में हुई छिद्र का बढ़ना, बंजर भूमि में वृद्धि, जल स्तर बढ़ना एवं कम होना, महासागरीय प्रदूषण, विकसित शहरों में वायु प्रदूषण आदि महत्वपूर्ण है। इन पर्यावरणीय समस्याओं के मध्य हम यह सोचने पर विवश है कि आज का श्रेष्ठ मनुष्य (विकसित मस्तिष्क वाला) इन समस्याओं से वाकिफ होता हुआ भी अनभिज्ञ सा क्यों है? पर्यावरणीय ह्रास के कारण रूप में उपस्थित मनुष्य क्यों अपनी अभिप्सा का प्रबंधन नहीं कर पा रहा है? या आधुनिक युग में संन्निहित विकास की अवधारणा में संतुलित विकास की कोई संकल्पना उपस्थिति ही नहीं है?

इन उपरोक्त मौलिक प्रश्नों को और भी विस्तृत रूप दिया जा सकता है किंतु प्रश्नों का केंद्रीय विषय इसी से संबंधित होगा। कहा जाता है की "Man is a product of environment" फिर समस्या क्यों! आधुनिक मन इसे गंभीरता पूर्वक देख रहा है, तभी तो हमारे पास संधारणीय विकास की अवधारणा उपस्थित है। समय-समय पर हमने पर्यावरण पर जनजागरूकता के लिए अनेक वैश्विक कार्यक्रम का आयोजन किए, जैसे 5 जून 1972 स्टॉकहोम में पर्यावरणीय सम्मेलन, 3 जून 1992 ब्राजील में पृथ्वी शिखर सम्मेलन, क्योटो प्रोटोकॉल, 2002 में सतत विकास पर विश्व शिखर सम्मेलन, 2015 संयुक्त राष्ट्र सतत विकास शिखर सम्मेलन इत्यादि। इन कार्यक्रमों में पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए बहुत सारे नियमों अथवा मांगों को निर्धारित किया गया जिससे पर्यावरनीय शुद्धता को सुनिश्चित किया जा सके। वर्तमान एवं विगत कुछ एक शताब्दियों से इस समस्या के समाधान का उपाय क्योंकि अंतत हमारे एवं प्रकृति के अंतरक्रिया से ही संबंधित है, इस रूप में हमारे जीवन जीने एवं रहने की कार्य शैली अथवा संस्कृति में ही पर्यावरणीय चेतना का संरक्षण भी विद्यमान है। इस रूप में सर्वप्रथम हमें आज के वैज्ञानिक प्रयासों के साथ-साथ विभिन्न संस्कृतियों में निहित उन शाश्वत मानवीय मूल्यों को भी अंगीकार करना होगा, जिसके केंद्र में संपूर्ण जगत की कल्याण हेतु दर्शन उपस्थित है और साधन रूप में करुणा, दया एवं अहिंसा रूपी आचरण उपस्थित है। इस रूप में भारतीय संस्कृति के अंतर्गत जैन संस्कृति एक अनूठी संस्कृति के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। इसके सिद्धांत पक्ष एवं दर्शन पक्ष इन चुनौतियों का सामना करने एवं एक स्थाई विकास की संकल्पना की स्थापना के लिए हमें प्रेरित करते हैं।

जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत सह-अस्तित्व के मंतव्य से गति करते हैं जिसका विचार विभिन्न जनागमों में उल्लेखित है। इन नियमों के अध्ययन से यह विदित होता है कि जैन धर्म में मनुष्यों के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण के प्रति भी समान भाव रखा गया है। हजारों वर्ष पूर्व पर्यावरणीय संरक्षण के प्रति उनके शब्द एवं तदनुसार क्रिया वर्तमान में कहीं ज्यादा प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। पर्यावरणीय संबंधी कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत जैन धर्म के अनुसार निम्नवत हैं -

प्रथम है - जैन दर्शन में वर्णित पंचस्थावरों की मान्यता। जैन मतानुसार "संसार में दो प्रकार के द्रव्य हैं- जीव और अजीव। जीव चेतन द्रव्य है तथा अजीव अचेतन द्रव्य अर्थात जीव द्रव्य, जिनमें आत्मा विद्यमान होती है तथा अचेतन वे हैं जिनमें आत्मा नहीं होती है, जिन्हें पुद्गल भी कहा गया है। जीवों को भी अनेक वर्ग में विभाजित किया गया है जैसे त्रस एवं स्थावर। जैन विचार दर्शन में कृत यह वर्गीकरण जीवन के, विकास के विभिन्न स्तर के सूचक हैं। एक इंद्रियधारी जीव को स्थावर तथा दो से पांच इंद्रियों को धारण करने वाले जीवों को त्रस कहा गया है। स्थावर जीव में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति जीवन की गणना की गई है।"[1]

जैन तीर्थंकर न केवल यह स्वीकार करते हैं कि जीवों का अस्तित्व है वरन् यह भी स्वीकारते हैं कि वह कर्ता और भोक्ता भी है, जो सुख-दुख की इच्छा का भी अनुभव करते हैं। अगर उपरोक्त जैन सिद्धांतों को देखें तो स्पष्ट होगा कि यह सभी जीव पर्यावरण के मूल घटक हैं। अतएव हमें जैन दृष्टि को स्वीकार करते हुए ही इनके साथ व्यवहार करना चाहिए। भगवान महावीर के वचन जो आचारंग में सुरक्षित हैं, का उद्घोष है कि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व वनस्पति साक्षात प्राणधारी जीव है और इन्हें कष्ट पहुंचाना या नष्ट करना महापाप है। अतः संपूर्ण लोक जीवन से परिपूर्ण है एवं इस रूप में पर्यावरण एक जीवंत इकाई है।

जैन धर्म का दूसरा प्रमुख सिद्धांत अहिंसा है। अहिंसा का दर्शन, जैन दर्शन का केंद्रीय सिद्धांत है जो संपूर्ण चराचर जगत तक विस्तृत है। अहिंसा को सभी सद्गुणों एवं सभी धर्म में उच्च स्थान प्रदान किया गया है। अहिंसा धर्म की सर्वव्यापकता को वर्णित करते हुए प्रश्न व्याकरण में कहा गया है कि "जिस प्रकार भयभीतों को शरण, पक्षियों को गमन, ऋषियों को जल, ऋषियों को भोजन, समुद्र बीच जहाज, रोगियों को औषधि और वन में सार्थवाह का साथ आधारभूत है, वैसे ही अहिंसा प्राणियों के लिए आधारभूत है। अहिंसा सभी प्राणियों का कल्याण करने वाली है।"[2] आचारांग सूत्र में "हिंसा का स्वरूप बताया गया है कि प्रमाद व काम भोगों में जो आशक्ति होती है, वही हिंसा है।"[3] स्पष्ट है कि जैन धर्म में अहिंसा का प्रयोग व्यापक स्तर पर निश्चित है उनके अनुसार "हिंसा न करना ही अहिंसा नहीं है अपितु हिंसा के संबंध में सोचना, बोलना और दूसरों को हिंसा के लिए प्रेरित करना भी हिंसा है। इसके साथ ही जैन धर्म में स्थावर आदि जीवों के हिंसा निषेध के साथ-साथ पशु पक्षी आदि त्रस जीव को करने का भी निषेध किया गया है।"[4] साथ ही इसे महापाप की श्रेणी में रखा गया है। जैन धर्म का अभिमत है कि प्रकृति के अनुकूलन में जीवों का महत्वपूर्ण योगदान है इसलिए जीव संरक्षण ही पर्यावरण संरक्षण है।

जलगालन सिद्धांत जैन धर्म के महत्वपूर्ण सिद्धांतों में से एक है। हम यह भलीमती जानते हैं कि मानव अस्तित्व व विकास की संपूर्ण कहानी में जल की अहम भूमिका है। जैन धर्म के उपरोक्त सिद्धांत में जल प्रदूषण से मुक्ति का उपाय संरक्षित है, जो अहिंसा सिद्धांत पर आधारित है। "जैन परंपरा में मुनियों को जीवन युक्त जल के प्रयोग का निषेध है। वे केवल जीवाणु रहित जल का ही प्रयोग कर सकते हैं। इसलिए जैन मुनि जल को कपड़े से छानकर पीने व अन्य कार्यों में उपयोग करते हैं।"[5] इसे जलगालन सिद्धांत कहा जाता है। इस हेतु "पानी को सूती कपड़े से छानकर उसे उपयोग में लेना चाहिए। इसके साथ ही वे इस बात का भी दृढ़ता से पालन करते हैं कि छने हुए पानी को भी दो मुहूर्त अर्थात दो घड़ी पीछे नहीं छानना चाहिए और छानने के पश्चात बच्चे हुए पानी को किसी दूसरे जलाशय में नहीं डालना चाहिए। यह जलगालन व्रत का उल्लंघन है।"[6] इसलिए "वे उपयोग किए हुए जल को उस जल स्रोत में प्रवाहित करते हैं जहां से उन्होंने पूर्व में ग्रहण किया है क्योंकि प्रत्येक जल का रासायनिक गुण भिन्न-भिन्न होने के कारण एक स्रोत से प्राप्त एवं उसमें उपस्थित सूक्ष्म जीव अन्य जल स्रोत में जीवित नहीं रह सकते। जैन मुनि द्वारा विवेचित यह प्राचीन रहस्य की पुष्टि आज विज्ञान भी करता है। जल के साथ ही वे घी, तेल आदि को भी छानने का निर्देश करते हैं।"[7] यदि आज की स्थिति पर विचार करें तो हमें यह भलीभांति विदित है कि आज विभिन्न नगरों के कल कारखानों से निकलने वाले गंदे पानी को विभिन्न नदियों व सागरो में प्रवाहित कर रहे हैं। इससे न केवल नदी व सागर का जल प्रदूषण बढ़ा है अपितु उसमें रहने वाले जीव संकट से हम भली भांति परिचित है, जो आज पारिस्थितिकी असंतुलन का बड़ा कारण बना हुआ है।

शाकाहार का सिद्धांत पर्यावरणीय संरक्षण से संबंधित सिद्धांतों में से एक है। जैन धर्म द्वारा प्रतिपादित अहिंसा सिद्धांत इस बात को पूर्णतया परिपालन करता है कि अहिंसा का अर्थ केवल हत्या से बचना नहीं अपितु यह संयम, विचार, शब्द एवं कर्मों में भी उतनी ही आवश्यक है। हिंसा का विचार भी हिंसा के ही समान है। इसलिए आवश्यक है कि व्यक्ति के संपूर्ण जीवन शैली में इस विचार का व्यवहार हो। इसलिए उनके चिंतन में मांसाहार का निषेध है। मांसाहार के लिए पशु-पक्षियों, जलचर जीवों एवं अंडजों की हत्या करनी पड़ती है। इसलिए जैन धर्म में इसका पूर्ण निषेध है। इस बात के सक्षम वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध है कि मांसाहार से पर्यावरणीय प्रदूषण होता है। इस हेतु भारत सरकार द्वारा स्थापित संस्था PETA भारत के द्वारा उल्लेखित निर्देशों को उनके पटल पर पढ़ा जा सकता है। साथ ही विश्व भर के अनेक दार्शनिक, नैतिक रूप से इस विषय पर प्रश्न उठाते रहे हैं।

इसके साथ ही जैन परंपरा "रात्रिकालीन भोजन का भी निषेध करती है।" यह भी पर्यावरण प्रदूषण मुक्तता की दृष्टि से एक वैज्ञानिक कारण है।[8] क्योंकि रात्रि के प्रकाश में बनाए गए भोजन से जीव हत्या की प्रबल संभावना है साथ ही सूर्य के प्रकाश में बनाया गया भोजन अहिंसा एवं स्वास्थ्य दोनों ही दृष्टि से शुद्ध है। लाटी संहीता में इस प्रकार का वर्णन मिलता है कि "श्रावक को श्रेष्ठ व्रतों की रक्षा करने के लिए और मांसभक्षण के दोषों का त्याग करने के लिए अन्न आदि पदार्थ अपने ही नेत्रों से और अपने ही हाथों से अच्छी तरह शोध लेना चाहिए फिर काम में लाना चाहिए।"[9] "जिस प्रकार अपने लिए सोना खरीदने वाला पुरुष उस सोने को बहुत

अच्छी तरह देखकर खरीदता है उसी प्रकार व्रती श्रावक को भी बहुत अच्छी तरह देख सोच कर आहार ग्रहण करना चाहिए।"[10]

जैन धर्म सह अस्तित्व का सिद्धांत के प्रचारक व पालक रहा है। 'जियो और जीने दो' में विश्वास करने वाला दर्शन अहिंसा की भित्ति पर खड़े होकर संपूर्ण जीव-अजीव में समान भाव का संचार करता है। विकास की अवधारणा अस्तित्व के ऊपर खड़े न होकर उपकार, प्रति-उपकार का अवलंबन करते हुए आगे बढ़ती है। आचारंग सूत्र का कथन है मनुष्य व प्रकृति समान गुण संपन्न है, दोनों जनमते हैं, बढ़ते हैं, दोनों चेतनयुक्त हैं, दोनों नाना अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं, इसलिए सामाजिक, आर्थिक व आध्यात्मिक संरचना का इस प्रकार निर्माण हो ताकि वह एक दूसरे का अनुमोदन करते रहें।

आज आजीविका की समस्या एक भीषण संकट के रूप में खड़ा है। हम परिवार के भरण-पोषण से कहीं ज्यादा परिग्रह करने की ओर लालायित है। भौतिकवादी प्रवृत्ति ने हमें इतना अंधा कर दिया है की प्रति 100 वर्ष में पृथ्वी का तापमान 5 डिग्री सेल्सियस वृद्धि होने की संभावना ICC (International panel for climate change) ने उजागर कर दिया है और कहीं ना कहीं मौसम में हुए बदलाव को हम स्वयं अनुभव भी कर रहे हैं। आजीविका के बारे में प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का कथन है कि इसका साधन असि, मसी, कृषि, विद्या, वाणिज्य एवं शिल्प है।[11] इन्होंने अहिंसा पर आधारित कृषि आदि व्यवस्था को सर्वश्रेष्ठ माना। यद्यपि हम इस बात से भली भांति अवगत है कि जीवन यापन में कुछ ना कुछ हिंसा हो ही जाती है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। इस हेतु जैन दर्शन में विभिन्न प्रकार के नियमों की चर्चा एवं उससे उत्पन्न दोष के परिहार के लिए नियमों का विधान किया गया है, जिसका विस्तृत विवेचन जैनागमों में किया गया है। किंतु वर्तमान परिदृश्य मानव अस्तित्व की सुरक्षा करना सबसे महत्वपूर्ण हो गया है। अब प्रश्न यह है कि क्या किया जा सकता है ? यद्यपि मानव सभ्यता विकास के उसे दौर में है जहां से पीछे लौटना तो असंभव प्रतीत होता है। किंतु इस कारण से किंकर्तव्यविमूढ़ होना भी गलत होगा। आवश्यकता यह है कि संपूर्ण मानव जाति व्यक्तिगत व सामूहिक स्तर पर गंभीरता को समझते हुए अपने कर्तव्यों का संजीदगी से अवलोकन करें। धर्माचार्य के द्वारा स्थापित सह अनुपालित पथों पर संभव रूप से कुछ मार्गों और नियमों का अनुसरण करें और वैज्ञानिक मति से प्राप्त सूचनाओं को संवेदनशील मानते हुए कुछ ऐसे कड़े नियमों की सर्जन करें जो सबके लिए लाभप्रद हो।

**सन्दर्भ सूची-**


1. आचार्य उमास्वामी. (1991). *तत्त्वार्थसूत्र* (अध्याय 13). सिद्धांत आचार्य (सं.), पं. फूलचंद शास्त्री (सम्पा.). श्री गणेशवर्णी जैन शोध संस्थान.
2. पाठक, र. (2002). *मानव मूल्य एवं प्रसाद का गद्य साहित्य*. एस.वी.एस. प्रकाशन.
3. जैन, सुदर्शनलाल. (वीर निर्माण संवत 2037). *उत्तराध्ययन: एक परिशीलन*. सोहनलाल जैन धर्म प्रचार समिति.

**4.** आचार्य अमितचंद्र. (1966). *पुरुषार्थसिद्ध्युपाय* (सूत्र 77). छगनभाई देसाई.

**5.** आचार्य कुंदकुंद. (1984). *नियमसार* (सूत्र 8). जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट.

**6.** आशाधर, पं. (1944). *सागरधर्मामृत* (3/16). भारतीय ज्ञानपीठ.

**7.** जैन, पं. लालारामजी. (1937a). *लाटी संहिता* (सूत्र 23). भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था.

**8.** उपासकदशांगसूत्र (टीका). (1933). आ. अभयदेव (टीकाकार). राय धनपत सिंह बहादूर.

**9.** जैन, पं. लालारामजी. (1937b). *लाटी संहिता* (सूत्र 26). भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था.

**10.** जैन, पं. लालारामजी. (1937c). *लाटी संहिता* (सूत्र 27). भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था.

**11.** आचार्य जिनसेन. (1941). *आदिपुराण* (16/179). भारतीय ज्ञानपीठ.

***Manuscript Timeline***
***Submitted :*** *August 08, 2025* ***Accepted :*** *August 20, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# मणिपुरी महाकाव्य का आधार : 'मोइराङ् शाइओन'

**डॉ. सिनाम तोन्दोन सिंह[1]**
**डॉ. मयाङ्लम्बम सदानंद सिंह[2]**

**सारांश**

*यह शोध-लेख मणिपुर की समृद्ध लोक-परंपरा में प्रतिष्ठित मोइराङ् शाइओन की कथाओं का सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा आख्यानात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य इन कथाओं को केवल लोक-मनोरंजन की सामग्री के रूप में नहीं, बल्कि मीतै समाज की सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक अस्मिता और नैतिक जीवन-दृष्टि के सशक्त स्रोत के रूप में समझना है। शोध में नवावतार-परंपरा, खंबा-थोइबी गाथा तथा पेना-वादन शैली के माध्यम से विकसित आख्यान-चक्र (Narrative Cycle) की संरचना का विवेचन किया गया है। तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में फ्रांसीसी Chanson de Geste, रूसी Byliny तथा फिनलैंड के कालेवाला जैसे महाकाव्यों के संदर्भ से यह प्रतिपादित किया गया है कि मोइराङ् शाइओन मणिपुरी समाज का एक विकसित 'एपिक ऑफ ग्रोथ' है। लेख यह भी रेखांकित करता है कि आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं के मध्य सांस्कृतिक अस्मिता के संरक्षण हेतु 'इंटीग्रेशन' की नीति आवश्यक है, जिसमें लोक-महाकाव्यात्मक परंपराएँ केंद्रीय भूमिका निभा सकती हैं। निष्कर्षतः, मोइराङ् शाइओन की कथाएँ मणिपुरी समाज के सांस्कृतिक पुनर्जागरण, भाषिक संरक्षण तथा सामाजिक नैतिकता के संवर्धन में आज भी अत्यंत प्रासंगिक और जीवन्त धरोहर सिद्ध होती हैं।*

***मुख्य शब्द -*** *मोइराङ् शाइओन, नवावतार परंपरा, खंबा-थोइबी, पेना-गायन शैली, आख्यान-चक्र, सांस्कृतिक अस्मिता, लोक-महाकाव्य, सांस्कृतिक पुनर्जागरण।*

***मोइराङ् शाइओन*** की कथा मणिपुर के लोक-जीवन में, विशेष रूप से मीतै समाज में सुनाई जाने की परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। इस कारण इसे मणिपुरी लोकसाहित्य (एवं साहित्य को भी) समृद्ध करने वाली अमूल्य संपदा माना जा सकता है। मोइराङ् शाइओन की कथाओं की कथा-भूमि केगे–मोइराङ् नामक स्थान है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते हुए समूचे मणिपुर के बाह्य एवं आंतरिक स्वरूप को दर्शाने वाली सांस्कृतिक संपत्ति बन गई है। इसकी कथाओं में उपस्थित मणिपुरी समाज का इतिहास, रीति-रिवाज, विश्वास, आचार-विचार, व्यवहार, दृष्टि तथा सांस्कृतिक सौंदर्य जीवंत रूप में उपस्थित है। यह

[1] असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, धनमंजुरी विश्वविद्यालय, मणिपुर. ई- मेल- sinamtondon81@gmail.com
[2] असिस्टेंट प्रोफेसर, मणिपुरी विभाग, धनमंजुरी विश्वविद्यालय, मणिपुर. ई-मेल- sadafolk@gmail.com

समग्र समाज की सामूहिक स्मृति और सामूहिक अनुभव का परिणाम है। मणिपुरी समाज को उसकी संपूर्णता में जानने-समझने के लिए मोइराङ् शाइओन एक समर्थ स्रोत माना जा सकता है।

विश्व के अनेक विद्वानों और विचारकों ने महाकाव्य-परंपरा (Epic Tradition) रखने वाले समाज को समृद्ध एवं आख्यानात्मक संस्कृति (Narrative Culture) वाले समाज की श्रेणी में रखा है। अवधारणात्मक रूप में महाकाव्य उस साहित्यिक कृति को माना जाता है, जिसमें किसी एक समाज के विभिन्न सांस्कृतिक स्वरूपों का व्यापक, गरिमामय और कलात्मक रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया हो तथा उस जाति या समुदाय का समग्र प्रतिबिंब दर्शाया गया हो। महाकाव्य में संबंधित समाज की परंपरा, विश्वास, जीवन-मूल्य, विचार-दृष्टि, आदर्श, संघर्ष, सांस्कृतिक स्वप्न तथा मौखिक इतिहास (Oral History) के तत्व उपस्थित होते हैं। साथ ही साथ महाकाव्य की कथा में उस समाज की आध्यात्मिक धारणाएँ, प्राचीन खेल, मुहावरे-कहावतें, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, नैतिक दृष्टि और विचारधाराएँ आदि भी रूपायित होती हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि महाकाव्य किसी समाज की संस्कृति के समस्त तत्वों का संचित कोश होता है।

पूर्वोत्तर भारत में, विशेषकर असम में, रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों पर आधारित महाकाव्य परंपरा तो देखने को मिलती है; किन्तु अपनी ही लोक-भूमि के गर्भ से उदित कथानक को उपजीव्य बना कर रची जाने वाली कृतियों का अभाव है। सन् 1980 के आस-पास बिहुराम बोरो द्वारा लिखित 'बाथोवाद' (बोडो धर्म/दर्शन) और बोडो संस्कृति से जुड़ी 'गिबी बिठाई' (Gibi Bithai) जैसी कृतियाँ असम प्रांत में अवश्य रची गईं, लेकिन विद्वान इन्हें महाकाव्य की श्रेणी में रखने के पक्ष में नहीं हैं। अनेक आलोचकों ने भारतीय काव्य- दृष्टि से इन्हें मात्र खंडकाव्य की श्रेणी में रखा है। अपनी लोक-भूमि और लोक-संस्कृति को उपजीव्य बना कर रचा गया महाकाव्य संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत में मणिपुरी समाज के पास है। वह कृति संपूर्णतः महाकाव्य के गुणों से युक्त 'खंबा-थोईबी' नामक महाकाव्य है। जिस प्रकार यूनानी अपने महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडिसी' पर तथा फिनलैंडवासी अपने महाकाव्य 'कालेवाला' पर गर्व का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार का गर्व मणिपुरी समाज भी करता है। इसका मुख्य कारण मोइराङ् शाइओन है, जिसे संपूर्णता प्रदान करने का श्रेय मणिपुरी लोकगायकों को है।

**मोइराङ् शाइओन** का तात्पर्य मोइराङ् नामक स्थान पर चिङ्उ थाङ्जिङ् (थाङ्जिङ् देवता) की लीला के अनुसरण में विशेष शक्तियुक्त देवताओं द्वारा अवतार लेकर की गई सांसारिक लीलाएँ है। मोइराङ् शाइओन की कथाओं को **मोइराङ् कङ्लैरोल** नाम से भी जाना जाता है। मोइराङ् कङ्लैरोल के अंतर्गत मोइराङ् के देवी-देवताओं की कथाएँ, ऐतिहासिक दंतकथाओं से जुड़े स्थान (place name legends), शौर्य-गाथाएँ तथा इतिहास-संबंधी अन्य सभी प्रकार की कथाएँ समाहित हैं। यहाँ यह ध्यान रखा जाना भी उचित होगा कि मोइराङ् कङ्लैरोल के अंतर्गत मुख्यतः गायकों द्वारा शाइओन की कथाओं का बड़े चाव से गायन किए जाने के कारण, कङ्लैरोल के अंतर्गत प्रायः मोइराङ् शाइओन की कथाओं को ही सम्मिलित किया जाता है।

शाइओन (अवतार) की कथाओं की संख्या के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान अवतारों की संख्या सात मानते हैं, जबकि दूसरे कुछ नौ। इनमें से अधिकांश विद्वान नौ अवतार माने जाने के पक्षधर हैं। नवावतार के कथाक्रम को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। साथ ही, एक अवतार की कथा का दूसरे अवतार की कथा में शामिल न होना भी पाया जाता है। मोइराङ् शाइओन के प्रख्यात गायक स्वर्गीय हैस्नाम मङ्गोलजाओ ने शाइओन का कथा-क्रम इस प्रकार माना है—

- 1. फौओइबी अकोङ्जाम्बा, 2. खम्नुङ् याइथिङ्कोनु, 3. खंबा-थोइबी, 4. शाम्बा लमगानबा, 5. खुयोन हाओबा कोनु, 6. हाओसि नाथोइनु, 7. हैन्जु खोङ्नाङ्, 8. कदेङ्- तोनु, 9. उरा नहा खोङ्जोम्बा पिदोङ्नु (1979:i)

पंडित सराङ्थेम बरमणि सिंह ने अपनी पुस्तक *मोइराङ् शाइओन* में शाइओन कथा-क्रम निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है—

- 1. हैन्जुनहा- थोङ्नाङ् लाइरौलेम्बी, 2. शाम्बा नहा लमगानबा- खम्नुङ् याइदिङ् कोनु, 3. वाङ्लेन पुदिङ्हनबा- चकपा याइनु फिशाहैबी, 4. ङानबा- शङ्लौलेम्बी, 5. खुयोल हाओबा- याइथिङ्कोनु, 6. अकोङ्जाम्बा- लैमा फौओइबी, 7. खंबा- थोइबी, 8. कदेङ् थाङ्जहनबा- तोनु लाइजिङ् लेम्बी, 9. उरा नहा खोङ्जोम्बा- पिदोङ्नु (2004: 3- 4)

इन दो विद्वानों के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के मत भी मिलते हैं। *मोइराङ् निङ्थौरोल पुया* (Royal Chronicle) नामक ग्रंथ को आधार बनाकर अध्ययन करने पर नवावतार के अंतर्गत आने वाली कथाओं के कथाक्रम, इन कथाओं के घटित होने के समय तथा उस काल के राजा के बारे में निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं—

- 1. इवाङ् पुरित् लाइ तेलहैब के काल में— हैन्जुनहा-लाइरौलेम्बी, 2. पुरित् लाइ सनालख्वा के काल में—लाङ्लेनहनबा याइथिङ्कोनु, 3. लैयु पुन्सिबा के काल में— ङानबा शङ्लौरोम्बी, 4. थिङ्क्रि नाचाओब के काल में समय— हाओसि नाथोइनु, 5. पुरित् लाइ नुङ्नाङ् निङ्थौतोनबा के काल में— शाम्बा लमगानबा खम्नुङ् याइदिङ् कोनु, 6. इथाइ काइराम्बा के काल में— याङ्हनबा कुमचरेम्बी, 7.चीङ्खु तेलहैबा के काल में— खंबा- थोइबी, 8. पुन्सिबा के काल में— कदेङ् थाङ्जहनबा- तोनु लाइजिङ् लेम्बी, 9. पुरित् लाइ के काल में— खोङ्जोम्बा- पिदोङ्नु (पं. एन. खेलचंद्र सिंह की पुस्तक *मोइराङ् निङ्थौरोल* पर आधारित, डॉ. ङाङोम एकाशिनी देवी से प्राप्त सूचना)

नवावतार के अंतर्गत आने वाली कथाओं तथा उनके अवतार-क्रम को लेकर विद्वानों के बीच मतभेद होने के साथ-साथ, इस विषय में भी दो मत प्रचलित हैं कि थाङ्जिङ् देवता की लीलानुसार किन-किन देवताओं द्वारा अवतार-लीला की गई। **पहला मत**— अवतार-कथाओं में चित्रित नायक-नायिकाएँ नोंगपोक निङ्थौ और पांथोइबी दोनों ही अवतारी रूप हैं। **दूसरा मत**— गुरू शिदबा (परमेश्वर) ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता को दर्शाने के लिए नर और मादा कबूतर के एक जोड़े का निर्माण किया। केगे शादानबा (केगे नामक स्थान के शिकारी)

के बाण लगने से दोनों कबूतरों की मृत्यु हो गई। दोनों कबूतरों की आत्माओं को गुरू शिदबा ने थाङ्जिङ् देवता को सौंप दिया। थाङ्जिङ् देवता ने उन दोनों आत्माओं को संसार में लीला करने के लिए अवतार रूप में भेजा।

इनमें से पहले मत के अनुसार कथा-गायक पीढ़ी-दर-पीढ़ी कथाएँ सुनाते आ रहे हैं। मणिपुरी लोक-समाज अधिकांशत: इसी मत पर विश्वास भी करता है। दूसरे मत का उल्लेख सराङ्थेम बरमणि ने अपनी पुस्तक *मोइराङ् शाइओन* में किया है।

विद्वानों के बीच मत-वैभिन्य होने पर भी मणिपुरी समाज में इसी विश्वास और आस्था के साथ इनका गायन प्रचलित है कि अवतार की कथाएँ वास्तव में केगे-मोइराङ् नामक स्थान पर घटित हुई थीं। दूसरी ओर, कथाओं की विविधता लोकसाहित्य की प्रमुख और मौलिक विशेषता है। यही विशेषता *रामायण* और *महाभारत* जैसे महाकाव्यों में भी देखने को मिलती है।

मोइराङ् शाइओन की कथाएँ विभिन्न राजाओं के काल में केगे-मोइराङ् नामक स्थान पर घटित घटनाओं पर आधारित हैं, यह धारणा कथा-गायकों और श्रोताओं के विश्वास के कारण पुष्ट हुई है। लोकसाहित्य की विधाओं के प्रचलित विभाजन के अनुसार ये कथाएँ *जनश्रुति (Legend)* के अंतर्गत आती हैं। शाइओन की कथाओं का जो पूर्ण, सुसंगठित और कलात्मक स्वरूप आज उपलब्ध है, उसका मुख्य कारण पेना वादकों (मणिपुर का परंपरागत वाद्य-यंत्र) द्वारा पेना शैली में किया जाने वाला गायन है। शाइओन की कथाओं में लोक-गायकों और जनसमुदाय की सबसे प्रिय कथा 'खंबा-थोइबी की गाथा' है। यह गाथा राजाओं के प्रोत्साहन तथा लोक-गायकों की सतत मेहनत, चतुराई और कुशलता के कारण महाकाव्य के रूप में स्थापित है। दूसरी ओर, मणिपुरी नवावतार की कथाओं को मणिपुरी महाकाव्य के विभिन्न खंडों अथवा चक्रों के रूप में भी देखा जा सकता है। इस संदर्भ में रूसी महाकाव्य 'बायलिनी' (Byliny) का उल्लेख किया जा सकता है। यह अलग-अलग स्वतंत्र कथाओं/विषयों पर आधारित गाथा-गीत-चक्र (Ballad Cycle) वाले महाकाव्य हैं। यहाँ पद्मश्री एलाङ्बम नीलकान्त सिंह द्वारा व्यक्त विचार का उल्लेख प्रासंगिक होगा-

> "महाकाव्य का सच्चा स्वरूप केवल खंबा-थोइबी के अवतार तक सीमित नहीं होना चाहिए… बल्कि नवावतार के समग्र स्वरूप में होना चाहिए, जिसे अंग्रेज़ी में Epic of Growth कहा गया है।" (2008:2)

मोइराङ् शाइओन में आने वाली कथाओं का अध्ययन कथा-चक्र (Narrative Cycle) के ढाँचे में रखकर किया जा सकता है। विश्व के प्रसिद्ध साहित्य में फ्रांस के 'चैनसन डी गेस्टे' (Chanson de Geste) तथा रूस के 'बायलिनी' में अनेक स्वतंत्र कथाएँ शामिल हैं। इन कथाओं की विषय-वस्तु और स्वरूप को ध्यान में रखते हुए, तथा इनमें वर्णित घटनाओं के संभावित ऐतिहासिक स्थलों को आधार बनाकर, शोधकर्ताओं ने इन रचनाओं का अध्ययन किया है और इन्हें अलग-अलग बैलड साइकिल (Ballad Cycle) में वर्गीकृत कर उनकी व्याख्या की है। फ्रांस की *चैनसन डी गेस्टे* (Song of the heroic deeds) को तीन बैलड साइकिलों में विभाजित किया गया है—

1. Cycle of the King
2. Cycle of William of Orange तथा
3. Epic of Revolt

विश्व-प्रसिद्ध *Chanson de Roland* की कथा पहले चक्र *Cycle of the King* के अंतर्गत आती है। दूसरी ओर, रूस की *बायलिनी* के अंतर्गत आने वाली कथाओं को कीवन साइकिल (Kievan Cycle), नोवगोरोद साइकिल (Novgorod Cycle), गेलिसियन-वोलहिनियन साइकिल (Galician-Volhynian Cycle) तथा नोविनी (Noviny) नामक साइकिलों में विभाजित कर अध्ययन किया गया है। इनमें सबसे बड़ा बैलड साइकिल कीवन साइकिल है, जिसकी कथा राजा कीव के पोते व्लादिमीर के इर्द-गिर्द घूमती है। इसमें आइ वान या मुरोमेट्स, डोब्रिन्या निकितिच तथा अल्योशा पोपोविच जैसे वीर नायकों की कथाओं को विशेष सम्मान प्राप्त है। दूसरा बैलड साइकिल नोवगोरोद साइकिल है, जिसका संबंध समृद्ध व्यापारिक नगर नोवगोरोद में घटित घटनाओं से है। तीसरे साइकिल में तरतारों द्वारा विनाश के बाद गेलिसियन क्षेत्रों के पुनः आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने से संबंधित कथाएँ आती हैं। अंतिम साइकिल *नोविनी* लगभग सन् 1930 के दशक के मध्य उभरी वीर-काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत कथा-गीतों को कहा जाता है। नोविनी को 'नोविना' भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है— 'नवीन कथाएँ' (The New Song)। मणिपुर के मोइराङ् शाइओन भी मणिपुरी साहित्य तथा लोकसाहित्य में अपनी स्वतंत्र पहचान रखने वाले, अपने-आप में पूर्ण, सुव्यवस्थित और प्रतिष्ठित *नैरेटिव साइकिल* (Narrative Cycle) के रूप में स्वीकृत हैं। यदि इनमें व्यक्त कथाओं की विषय-वस्तु पर दृष्टि डालें, तो इसे 'रोमांटिक साइकिल' (Romantic Cycle) शीर्षक के अंतर्गत रखा जा सकता है। जिस प्रकार रूस की बायलिनी में नोवगोरोद नगर से संबंधित कथाओं को नोवगोरोद साइकिल कहा जाता है, उसी प्रकार मणिपुरी लोकसाहित्य में मोइराङ् नामक स्थान से जुड़ी अवतार-कथाओं को 'मोइराङ्-शाइओन' शीर्षक देना सर्वथा उचित और न्यायसंगत प्रतीत होता है।

मोइराङ् शाइओन की कथाओं की विषय-वस्तु में एक स्पष्ट आंतरिक समानता दृष्टिगोचर होती है। इन सभी कथाओं का केंद्रीय तत्व प्रेम है। साथ ही, ये कथाएँ मणिपुरियों के लोकमानस में गहराई से जड़ें जमाए हुए अवतारवाद से एक अदृश्य किंतु सुदृढ़ सूत्र द्वारा जुड़ी हुई हैं। यह सूत्र इन प्रेम-कथाओं को ऐसे संयोजित करता है, जैसे विभिन्न फूलों को एक ही धागे में पिरोकर माला का रूप दिया गया हो। इस प्रकार, इन कथाओं में परस्पर अटूट संबंध स्थापित दिखाई देता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर इन कथाओं में कुछ भिन्नताएँ अवश्य दिखाई देती हैं, तथापि तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर अनेक समान प्रासंगिक बिंदु उभरकर सामने आते हैं।

भारतीय कथा-शास्त्र में हिंदू पौराणिक कथाओं के अनुसार जब-जब धर्म का पतन होता है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब अधर्म के नाश तथा धर्म की पुनः स्थापना के लिए श्रीविष्णु मानव शरीर धारण करते हैं। यही अवधारणा दशावतार की कथाओं में क्रमबद्ध रूप में व्यक्त होती है। ऐसे अवतारों की कथाओं में

*रामायण* और *महाभारत* को जोड़ने वाले अनेक प्रसंग मिलते हैं। दूसरी ओर, पाली बौद्ध परंपरा में निहित जातक कथाओं में भी बुद्ध के पूर्व जन्मों को उनके वर्तमान जीवन से जोड़ा गया है। मोइराङ् शाइओन की कथाएँ भी अवतारवाद में आस्था व्यक्त करती हैं और साथ ही जन्म-मरण के चक्र में विश्वास को सुरक्षित एवं जीवित बनाए रखती हैं। इन कथाओं में यह धारणा गहराई से निहित है कि जो जन्म लेता है उसका मरण निश्चित है और जो मरता है उसका पुनर्जन्म भी सुनिश्चित है।

मणिपुरी समाज और संस्कृति में मोइराङ् शाइओन की कथाओं का विशेष एवं प्रतिष्ठित स्थान है। इसका विकास लोक-प्रदर्शन (folk performance) के माध्यम से हुआ है, और यही परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है। मोइराङ् शाइओन के प्रसिद्ध कथा-गायक स्वर्गीय हैस्नाम माङ्गोलजाओ का मत है कि-

> "प्रारंभ में कङ्लैरोल (मोइराङ् शाइओन की कथाएँ) फुङ्नाक (आलाव) के पास बैठकर कहानी के रूप में सुनाई जाती थीं। बाद में यंत्रों के प्रयोग के साथ इन्हें खुनुङ् इशै (लोकगीत, किंतु यहाँ विशेष अर्थ लोकगाथा) के रूप में गाया जाने लगा।" (1979:i)

प्रारंभिक काल में जनश्रुतियाँ (ballads) और महाकाव्य— दोनों ही छोटी-छोटी कथा इकाइयों या गीतात्मक रूपों में लोक में प्रचलित थे। बाद में गायकों की रचनात्मक कुशलता, तात्कालिक सृजन-क्षमता तथा दीर्घकालीन अथक परिश्रम के कारण ये कथाएँ आज की विस्तृत आख्यान संरचना में विकसित हो गईं। पूर्व में उल्लेखित है कि शाइओन की कथाओं का जो पूर्ण, सुसंगठित और कलात्मक स्वरूप आज उपलब्ध है, उसका मुख्य कारण पेना-वादकों द्वारा पेना शैली में किया जाने वाला गायन है। पेना-वादकों की प्रिय कथा तथा श्रोताओं की अत्यंत प्रिय खंबा-थोइबी गाथा में निहित चरित्रों और घटनाओं को जब पेना की विशिष्ट गायन-शैली में प्रसंगानुकूल रूप से प्रस्तुत किया जाता है, तो यह श्रोताओं के मन और आत्मा को अमरत्व का अनुभव कराती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो खंबा-थोइबी की कथा स्वयं श्रोताओं के सम्मुख सजीव होकर उपस्थित हो जाती है। संक्षेप में, पेना और खंबा-थोइबी की कथा को मैतै परंपरा में 'लैबाकशा तिन्नबा' अर्थात एक दूसरे के लिए निर्मित कहा जा सकता है। (2013:40-41)

लोकमान्यता के अनुसार, मोइराङ् शाइओन की कथाओं को पेना के साथ गाने की परंपरा का आरंभ महाराज चंद्रकीर्ति द्वारा सन् 1874 में कछार प्रांत की जिलादरबार यात्रा के दौरान उस समय के पेना-गायक चनम्बमचा बापू हन्जबा के माध्यम से किया गया। किंतु स्वर्गीय पंडित सराङ्थेम बरमणि का मत इससे भिन्न है। उन्होंने अपनी पुस्तक *मोइराङ् शाइओन* की भूमिका में उल्लेख किया है कि महाराज चंद्रकीर्ति के काल से पूर्व भी शाइओन की कथाएँ पेना-वादन के साथ गाई जाती थीं। उनके अनुसार—

> "महाराज पामहैबा के शासनकाल में शांतिदास गोसाईं के षड्यंत्रों के परिणामस्वरूप मैतै समुदाय की अनेक कथाओं का सार्वजनिक वाचन निषिद्ध कर दिया गया। महाराज भाग्यचंद्र के शासनकाल में अवा (तत्कालीन म्यांमार) द्वारा मैत्रबाक (मणिपुर का प्राचीन नाम) पर बार-बार आक्रमण किए जाने

> से राज्य में उथल-पुथल मच गई। आगे चलकर 'चही तरेत खुन्ताकपा' (Seven Years Devastation) के दौरान मैतैयों की कथाओं का वाचन और श्रवण भी लगभग बंद हो गया। महाराज गम्भीर सिंह के शासनकाल में जब बाहरी आक्रमणों का भय समाप्त हुआ और राज्य में पुनः शांति स्थापित हुई, तब उस समय के पेना-गायक ओजा (गुरू) चबुङ्बा ने खंबा-थोइबी की कथा को पुनः मैत्रबाक में गाकर प्रचारित किया।" (2008:9-10)

श्री सराङ्थेम बरमणि के इस मत का समर्थन Major W. MacCulloch द्वारा सन् 1859 में प्रकाशित पुस्तक *Account of the Valley of Manipur and of the Hill Tribes* से भी होता है। उन्होंने लिखा है कि –

> "The tale of Khamba and Thoibi sung by their (Meiteis) eeseisakpa or bards never fails with a popular singer to rivet attention. The scene of this tale and the place where it was originally sung is Moirang. The hero and heroine are persons said to have flourished hundreds of years ago…The singers of the adventures of Khamba and Thoibi accompany their songs with the notes of the pena the solitary musical instrument of Munnipore." (1859:26-27).

इन साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि मोइराङ् शाइओन का पेना-वादन शैली में गायन सन् 1874 में महाराज चंद्रकीर्ति की जिलादरबार यात्रा से प्रारंभ नहीं हुआ था, बल्कि यह परंपरा उससे काफी पहले से प्रचलित थी। यद्यपि 'चही तरेत खुन्ताकपा' से पूर्व के कालखंड का इतिहास पूर्णतः स्पष्ट नहीं है, तथापि उसके पश्चात शाइओन की कथाओं का पेना- शैली में गायन पुनः आरंभ हो चुका था— यह तथ्य प्रमाणित होता है।

सन् 1874 में महाराज चंद्रकीर्ति जब जिलादरबार यात्रा के लिए प्रस्थान कर रहे थे, तब चनम्बम बापू हन्जबा राजकीय सवारी हाथी के पीछे बैठकर याकाइरोल (invocation), निङ्थौरोल तथा लाइरोल-तिल्लोन (देवी-देवताओं से संबंधित गीत) का निरंतर गायन करते हुए महाराज की सेवा कर रहे थे। मार्ग लंबा होने के कारण जब पारंपरिक गीतों के बोल समाप्त हो गए, तब महाराज से अनुमति प्राप्त कर खंबा-थोइबी की कथा प्रस्तुत की गई। इस कथा को सुनकर महाराज अत्यंत प्रसन्न हुए और इसके पूर्ण गायन का आदेश दिया।

जिलादरबार से लौटने के पश्चात बापू हन्जबा ने उस समय के तीन प्रसिद्ध गायकों के साथ मिलकर खंबा-थोइबी की कथा को क्रमबद्ध रूप प्रदान किया। इस प्रक्रिया में पेना-वादन शैली, प्रसंगानुकूल प्रशंसा-गान तथा अलंकारों का समावेश करते हुए इसे एक पूर्ण और समृद्ध गायन-रूप में विकसित किया गया। इस प्रकार, पीढ़ी-दर-पीढ़ी निरंतर विकास की प्रक्रिया से गुजरते हुए खंबा-थोइबी की कथा ने आज महाकाव्यात्मक स्वरूप ग्रहण कर लिया है। इसी क्रम में शाइओन की कथाओं ने पेना-गायन शैली के माध्यम से अपनी विशिष्ट पहचान

और स्थायी स्थान सुनिश्चित किया। वर्तमान परिवर्तित समय के अनुरूप यह परंपरा अन्य प्रदर्शनकारी कलाओं में भी रूपांतरित होकर मणिपुरी समाज में अपना सुदृढ़ स्थान बनाए हुए है।

खोङ्जोम पर्व (सन् 1891 के आंग्ल-मणिपुर युद्ध में खोङ्जोम युद्ध से संबंधित पारंपरिक गायन शैली) की परंपरा में सर्वप्रथम नोङ्थोम्बम कुलिनजाओ द्वारा गायन का आरंभ किया गया। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर बाद के काल में अनेक गायकों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया और इसे व्यापक पहचान दिलाई। परिणामस्वरूप यह विशिष्ट शाइओन-कथा शैली आज भी जीवंत रूप में विद्यमान है। ओजा (गुरु) कुलिनजाओ से प्रारंभ इस गायन शैली को परवर्ती गायकों में विशेष पहचान प्राप्त हुई। उन गायकों में हैस्नाम मङ्गोलजाओ को जनता के बीच विशेष आदर और सम्मान मिला। उनकी स्वर-माधुर्यपूर्ण वाणी से जब शाइओन कथाओं का गायन प्रस्तुत होता, तो उसके सौंदर्य से अभिभूत होकर लोग कहते कि उन्हें शाइओन की कथा-गायन के लिए स्वयं थाङ्जिङ् देवता ने भेजा है। मङ्गोलजाओ ने कङ्लैरोल गायन पद्धति की अनेक रीतियों तथा नियमों का निर्माण कर उन्हें एक सुसंस्कृत परंपरा के रूप में आने वाली पीढ़ियों को सौंपा। ओजा मङ्गोलजाओ के उपरांत अनेक प्रतिष्ठित गायक-गायिकाओं द्वारा खोङ्जोम पर्व की परंपरा में "मोइराङ् कङ्लैरोल" नाम से यह गायन शैली निरंतर विकसित होती चली आ रही है। पेना तथा खोङ्जोम पर्व ने मोइराङ् शाइओन के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके साथ-साथ मोइराङ् पर्व (Romantic Cycle of Moirang) और फम्बाक लीला (Proscenium theatre) आदि विभिन्न कला-रूपों ने भी शाइओन की कथाओं को एक जीवंत परंपरा (Living tradition) के रूप में बनाए रखने में योगदान दिया।

वर्तमान काल में सन् 1957 में ओइनाम शङाई के नेतृत्व में आरंभ की गई सनामही वारी लीबा (मूल मीतै धर्म से संबद्ध कथा-वाचन) की परंपरा के अंतर्गत भी कथावाचकों द्वारा शाइओन की कथाएँ अत्यंत श्रद्धा, रुचि एवं उत्साह के साथ सुनाई जाने लगीं। समकालीन संदर्भ में गोशे मैतै जैसे गायकों द्वारा खुनुङ-इशै की गायन शैली में आधुनिक वाद्य-यंत्रों का प्रयोग करते हुए मोइराङ् शाइओन की कथाओं का प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है। दूसरी ओर, मङका मयाङ्लम्बम आदि अनेक नवयुवा कलाकार मणिपुरी फोकलोरिज्म के नए रूपों का सृजन करते हुए खंबा-थोइबी की कथा को और अधिक सशक्त एवं प्रासंगिक बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

इस प्रकार राजाओं के शासनकाल से निरंतर प्रवाहित होती आई शाइओन की कथाएँ मणिपुरी समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ आज तक जीवित बनी हुई हैं। किंतु समयानुसार उत्पन्न परिवर्तनों और आधुनिक जीवन-प्रणाली के दबावों के बीच ये कथाएँ, जो किसी समय हमारे जीवन का अत्यंत सशक्त और अभिन्न हिस्सा थीं, धीरे-धीरे कमजोर होती हुई भी दिखाई दे रही हैं। दूसरी ओर, आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण की तीव्र प्रक्रियाओं के मध्य हमारी सांस्कृतिक अस्मिता (Cultural Identity) भी एक बड़े संकट और चुनौती का सामना कर रही है।

आधुनिक यातायात के साधनों तथा तकनीकी विकास के कारण आज विस्तृत विश्व तीव्र गति से 'वैश्विक परिवार' के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है। मणिपुर भारत का अभिन्न अंग है, जबकि मणिपुरी समाज

और संस्कृति का हजारों साल से चली आती परंपराओं से निर्मित स्वतंत्र अस्तित्व है। अब देखने में आ रहा है कि "लुक ईस्ट/एक्ट ईस्ट नीति" तथा इसी प्रकार्के अन्य कार्यक्रमों के अंतर्गत बढ़ती गतिविधियों के कारण पूर्व में विद्यमान सीमाएँ धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही हैं। इस परिस्थिति में अपेक्षाकृत अल्प जनसंख्या वाले मणिपुरी समाज की वर्तमान स्थिति का समय रहते सम्यक अध्ययन न किया गया, तो इसके परिणाम क्या होंगे— यह एक गंभीर विचारणीय प्रश्न है। निरंतर बदलते समय में हम सभी पारंपरिक जीवन-शैली को पीछे छोड़कर आधुनिक शिक्षा, आर्थिक अर्जन तथा भौतिक उन्नति की ओर अधिक उन्मुख होते जा रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप अपनी संस्कृति और परंपराओं को पहचानने, समझने और संरक्षित रखने वाले लोगों की संख्या निरंतर घटती जा रही है।

आज विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी का वर्चस्व स्थापित हो गया है, जिसके कारण भारत भर में मातृभाषाओं के महत्व में दिन-प्रतिदिन कमी आती जा रही है। यही स्थिति मणिपुरी भाषा के संदर्भ में भी दिखाई देती है। आज स्पष्ट और शुद्ध मैतैलोन बोलने वाले व्यक्तियों को 'खुनुङ् चङ्बा' अर्थात अशिक्षित कहकर उपहास का विषय बनाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान परिवर्तनों का हमारी जीवन-शैली और विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ने के कारण मणिपुर की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान पर अनेक प्रकार के प्रभाव दिखाई देने लगे हैं।

जब किसी छोटे समाज पर किसी बड़े या प्रभुत्वशाली समाज का प्रभाव पड़ता है, तब उसे अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों के शिकार समाजों का अध्ययन लोकसाहित्य विज्ञानियों (Folklorists) द्वारा चार स्थितियों के आधार पर किया गया है— Assimilation, Separation, Marginalization और Integration (2013:330)।

**एसिमिलेशन-** वह स्थिति और प्रक्रिया है जिसमें कोई छोटा या अल्पसंख्यक समाज अपनी पूर्व अस्मिता को छोड़कर बड़े समाज की अस्मिता को अपना लेता है; परिणामस्वरूप उसकी विशिष्ट पहचान कमजोर पड़ने लगती है या लुप्त हो जाती है।

**सेपरेशन-** वह स्थिति, जिसमें कोई अल्पसंख्यक समाज अपनी सांस्कृतिक अस्मिता पर पड़ने वाले बाहरी प्रभावों से दूरी बनाए रखते हुए अपनी परंपराओं को सुरक्षित रखने का प्रयास करता है।

**मार्जिनलाइजेशन-** वह स्थिति, जिसमें कोई समाज न तो अपनी संस्कृति को सुरक्षित रख पाता है और न ही मुख्यधारा में सम्मिलित हो पाता है; परिणामस्वरूप वह हाशिये पर चला जाता है।

**इंटीग्रेशन-** वह स्थिति, जिसमें कोई समाज अपनी सांस्कृतिक अस्मिता का संरक्षण करते हुए बड़े समाज के साथ सह-अस्तित्व स्थापित करता है।

परिवर्तन की धारा निरंतर प्रवाहित होती रहेगी। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि नवपरिवर्तनों के बीच हमारी संस्कृति को एसिमिलेशन, सेपरेशन या मार्जिनलाइजेशन की दिशा में बहने देने के स्थान पर इंटीग्रेशन के मार्ग पर ले जाया जाए, ताकि इस समाज की सांस्कृतिक अस्मिता संरक्षित रह सके। विचारणीय विषय यह है

कि आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के प्रभावों से क्षीण होती हमारी सांस्कृतिक पहचान को बचाने में मोइराङ् शाइओन की क्या भूमिका हो सकती है। इस जिज्ञासा के अमाधान के लिए हमें समझना होगा कि शाइओन की कथाएँ प्रारंभ से ही न केवल जनसामान्य के मनोरंजन का महत्वपूर्ण साधन रही हैं, बल्कि उन्होंने लोगों को विविध विषयों का ज्ञान प्रदान किया है और जीवन-ववहार की सीख भी दी है। इन सबसे बढ़ कर शाइओन की कथाओं ने जो सांस्कृतिक भूमिका निभाई है, वह हमारे लिए सर्वाधिक महत्व रखती है। इन कठाओं में रीति-नीति, आस्थाओं, पूजा-पाठ, पर्व-त्योहारों, परंपराओं, आदर्शों, जीवन-मूल्यों तथा मानव-स्वभाव का सूक्ष्म वर्णन मिलता है। यह सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन-प्रवाह को काल के थपेड़ों से बचाए रखने में अभी तक सफल रहा है। कहा जा सकता है कि शाइओन की कथाओं का मणिपुरी संस्कृति और समाज के संरक्षण में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। इन कथाओं ने सही-गलत तथा सत्य-असत्य के संबंध में मार्गदर्शन करके मणिपुरी समाज को नैतिक आधार प्रदान भी किया है।

इस अतुलनीय योगदान को देखते हुअ यह मानने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि मोइराङ् शाइओन की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक भूमिका आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी पहले रही है। आवश्यकता मणिपुरी समाज के सांकृतिक पुनर्जागरण की है। सामाजिक-अस्मिता विरोधी सभी प्रकार के दबावों और चुनौतियों का मुकाबला अस्मिता-बोध के सहारे ही किया जाना संभव है। यह कार्य उसी प्रकार होना चाहिए, जैसे खोङ्जोम-युद्ध के तुरंत बाद के काल में उभरे नवजागरण ने कमल, चाओबा, अङाङ्हल आदि के माध्यम से किया था। मणिपुरी समाज के लिए वह पद-दलित हो चुकी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता के उठ कर खड़े होने का काल था।

इस संदर्भ में फिनलैंड के राष्ट्रीय महाकाव्य *कालेवाला* का उदाहरण स्मरणीय है, जिसने फिनिश समाज की खोई हुई अस्मिता को पुनः स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। लंबे समय तक रूस और स्वीडन के प्रभाव में रहने के कारण फिनिश समाज अपनी भाषा, संस्कृति और परंपराओं से दूर हो गया था। अपनी खोई हुई सांस्कृतिक अस्मिता के संरक्षण और पुनर्स्थापना के उद्देश्य से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण में फिनलैंड में एक सशक्त सांस्कृतिक आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इसके अंतर्गत समाज और संस्कृति के अंरक्षण केलिए लोक-साहित्य के संग्रह और प्रकाशन का व्यापक अभियान चलाया गया। अपनी सांस्कृतिक पहचान की पुनर्स्थापना के लिए प्रयत्नरत अग्रदूतों की उद्घोष ध्वनि- "Swedish we are not, Russians we cann't become let us then be finns." (1999:17) को महाकवि लोनरोत ने काव्यात्मक रूप देते हुए फिनिश लोक-महाकाव्य (Folk epic) कालेवाला की रचना की। इस महाकाव्य के माध्यम से फिनिश समाज की भाषा तथा सांस्कृति को पुनः पहचान प्राप्त हुई।

कालेवाला की कथावस्तु फिनिशों की सृष्टि-निर्माण की मिथकीय कथा से शुरू होकर ईसाई धर्म के आगमन पर समाप्त होती है। इसके द्वारा फिनिश समाज में आदिम काल से विद्यमान पारंपरिक विश्वास, जीवन पद्धति, लोक-दृष्टि तथा समाज का सामूहिक स्वप्न लोगों तक पहुँचा। इतना ही नहीं, इस महाकाव्य के माध्यम

से फिनिश भाषा की समृद्ध शब्द-संपदा और विलक्षण अभिव्यक्ति-शक्ति का परिचय भी मिला। इसमें सम्मिलित अधिकांश काव्य-सृष्टि फिनिश लोकगायकों से संकलित सामग्री के आधार पर निर्मित हैं। एक अति महत्वपूर्ण बात यह भी कि इस महाकाव्य के आधार पर विकसित विशिष्ट काव्य-छंद को आज ***कालेवाला मीटर*** के नाम से जाना जाता है। संक्षेप में, दीर्घकाल तक मौखिक परंपरा में गाए और सुनाए जाते रहे लोक-काव्यों को संकलित कर निर्मित कालेवाला फिनिश जाति की भाषा, साहित्य तथा संस्कृति के पुनर्जागरण का सशक्त माध्यम बना और फिनिश समाज नई आभा के साथ अपनी सांस्कृतिक पहचान से जुड़ा। यह फिनिश समाज के नव निर्माण की महान घटना है। इस संदर्भ में टार्टू विश्वविद्यालय, एस्टोनिया के प्रोफेसर एमेरिटस एंट्स ओरास के शब्दों को याद कर सकते हैं—

> "The creation of a national epic was almost equivalent to the creation of a nation." (1982: XI)

जिस प्रकार एक समय, *कालेवाला* फिनिश राष्ट्र की सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक बन गया था, उसी प्रकार मणिपुरी मोइराङ् शाइओन की कथाएँ भी भाषा, साहित्य, संस्कृति और इतिहास का संगम प्रस्तुत करती हैं। उनमें मणिपुरी समाज को एक जीवंत सांस्कृतिक समाज बनाने के साथ ही विश्व भर को समाज-सांस्कृतिक अस्मिता का संदेश देने की क्षमता विद्यमान है। आज जब अनेक देश अपने साहित्य को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास कर रहे हैं, ऐसे समय में मोइराङ् शाइओन की कथाओं को भी विश्व-साहित्य में एक एथनिक जोनड़ा के रूप में विशिष्ट स्थान दिलाने का उपयुक्त अवसर है। इस संदर्भ में अफ्रीकी लेखकों ने आँखें खोल देने वाला कार्य किया, जिसमें वे अपनी रचनाशीलता को लोक-साहित्य से ग्रहीत सामग्री से समृद्ध बनाने और अपने साहित्य को बहुत हद तक विश्व के विशिष्ट साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल रहे। यह कार्य मणिपुरी लेखक भी कर सकते हैं। मणिपुरी साहित्य को भी अपनी विशिष्ट पहचान के साथ प्रतिष्ठित करने में मोइराङ् शाइओन की परंपरा से बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हो सकती है। मोइराङ् शाइओन की कथाएँ मणिपुरी समाज की अनुपम धरोहर हैं। इन्हें समझना, मणिपुरी समाज को समझना है; इसलिए मोइराङ् शाइओन की कथाओं की ओर गंभीर और विशेष ध्यान दिया जाना अनिवार्य है।

**संदर्भ-**


- Amos, Dan Ben (Ed.). (1976). *Folklore Genre*. University of Texas Press.
- Brown, Mary Ellen., & Rosenberg, Bruce A. (1998). *Encyclopedia of Folklore and Literature*. ABC-CLIO.
- Cuddon, J.A. (1998). *Dictionary of Literary Terms and Literary Theory* (Rev. ed.). Penguine Books.
- Hakamis, Pekka. (2013). *Theoretical Milestone*. Academic Scientiarum Fennica.

- Honko, Lauri. (1998). *Texualising the Siri Epic*. Academic Scientiarum Fennica.
- Honko, Lauri. (Ed.). (2002). *The Kalevala and the World's Traditional Epics*. Studia Fennica Folkloristika.
- Honko, Lauri., Handoo, Jawaharlal., & Foley, John Miles. (eds.) (1998). *The Epic : Oral and Written*. Central Institute of Indian Languages (CIIL).
- Kurman, Juri. (Trans.). (2007). *Kalevipog : An Ancient Estonian Tale*. Tartu Ullikool.
- Macmillan, M. (ed). (1962). *Paradise Lost : Book III.* Macmillan & Co. Ltd.
- Mandelbaum, Allen. (Trans.). (2004). *The Aeneid of Virgil.* Bantam Dell.
- Oras, Ants. (1982). Forward: The Epic and Kalevipog. In Juri Kurman (ed.), *Kalevipoeg : An Ancient Estonian tale.* Symposia Press.
- Pentikainen, Juha Y. (1999). *Kalevala Mythology.* Indiana University Press.
- Tillyard, E.N.M. (1966). *The English Epics and Its Background.* Chatto and Windus.
- Valk, Ulo. (2002). Authorship and Textuality : The Kalevipog as Epic Landscape. In Lauri Honko (Ed.), *The Kalevala and the World's Traditional Epics.* Studia Fennica Folkristica.
- लाइश्रम, कामिनीकांत सिंह. (2012). *खंबा- थोइबी शैरेंगलोन येलहौ*. नंबोल.
- सरांगथेम, बरमणि. (2008). *मोइराङ् शाइओन* (पाँचवा संस्करण). इंफाल.
- हिजम, अङाङ्हल सिंह, (2005). *खंबा-थोइबी शैरेंग*. इंफाल.
- हैस्नाम, मङ्गोलजाओ सिंह. (1971). *खंबा थोइबी पुन्सि वारी* (पहला खंड). इंफाल.
- हैस्नाम, मङ्गोलजाओ सिंह. (1981). *खंबा थोइबी पुन्सि वारी* (दूसरा खंड). इंफाल.

***Manuscript Timeline***
***Submitted :*** *August 17, 2025* ***Accepted :*** *August 30, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# पत्रकारिता और भारतीय भाषाओं का संग-साथ

**डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय**[1]

**सारांश**

***भा****रतीय पत्रकारिता का विकास भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी, के साथ गहराई से जुड़ा रहा है। हिंदी पत्रकारिता ने केवल सूचना के प्रसार का कार्य नहीं किया, बल्कि लोकतांत्रिक चेतना, सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय आंदोलन और सांस्कृतिक एकता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय समाज की बहुभाषिक संरचना में हिंदी पत्रकारिता ने अन्य भारतीय भाषाओं के साथ निरंतर संवाद और सहयोग स्थापित करते हुए एक सशक्त बहुभाषिक पत्रकारिता संस्कृति को आकार दिया है। वर्तमान समय में जब पत्रकारिता डिजिटल मीडिया, सोशल मीडिया, कॉर्पोरेट दबाव, राजनीतिक हस्तक्षेप और भाषाई असमानताओं जैसी जटिल परिस्थितियों से गुजर रही है, तब हिंदी और भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के सामने नए अवसरों के साथ-साथ गंभीर चुनौतियाँ भी उपस्थित हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने जहाँ भाषाई लोकतंत्र और व्यापक पहुँच को संभव बनाया है, वहीं फेक न्यूज, टीआरपी की होड़ और भाषा की गुणवत्ता में गिरावट ने पत्रकारिता की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न भी खड़े किए हैं। यह शोध-पत्र हिंदी पत्रकारिता और भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक संबंधों, स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका, स्वतंत्रता के बाद के विकास, वर्तमान डिजिटल युग में उनके स्वरूप, चुनौतियों, संभावनाओं तथा भविष्य की दिशा का समग्र और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।*

***बीज शब्द:*** *हिंदी पत्रकारिता, भारतीय, भाषा, संभावना, सोशल मीडिया, डिजिटल मीडिया।*

**प्रस्तावना-**

भारत एक बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है, जहाँ भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक परंपरा और राजनीतिक चेतना का आधार भी है। भारत में सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों, समुदायों और संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। पत्रकारिता, जिसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है, इन्हीं भाषाओं के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँचती है और उनकी आवाज बनती है। हिंदी पत्रकारिता का इतिहास केवल समाचारों के प्रकाशन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक सुधार आंदोलनों, राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष, लोकतांत्रिक मूल्यों और जनचेतना के निर्माण से गहराई से जुड़ा रहा है। हिंदी पत्रकारिता ने अन्य भारतीय भाषाओं के साथ सहअस्तित्व और संवाद की

[1] पी-एच.डी.(जनसंचार), महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी (बिहार).
मो. +91 9452529555; ई-मेल: drshailendrapandey@gmail.com

परंपरा को बनाए रखा, जिससे एक समावेशी और बहुभाषिक पत्रकारिता संस्कृति विकसित हुई। वर्तमान समय में, जब मीडिया का स्वरूप तेजी से बदल रहा है और डिजिटल तकनीकें पत्रकारिता की दिशा और दशा दोनों को प्रभावित कर रही हैं, यह प्रश्न और अधिक प्रासंगिक हो जाता है कि हिंदी पत्रकारिता और भारतीय भाषाएँ एक-दूसरे के साथ किस प्रकार सहअस्तित्व में हैं और यह संग-साथ भविष्य में किस दिशा में अग्रसर होगा।

**शोध का उद्देश्य-**

इस शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य हिंदी पत्रकारिता की ऐतिहासिक यात्रा और उसके भारतीय भाषाओं के साथ विकसित होते संबंधों का समग्र अध्ययन करना है। इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत और स्वतंत्रता के बाद उसके स्वरूप में आए सामाजिक, वैचारिक और व्यावसायिक परिवर्तनों का अध्ययन करना।
2. हिंदी पत्रकारिता और अन्य भारतीय भाषाओं के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण।
3. स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता की भूमिका का मूल्यांकन करना।
4. वर्तमान डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका, स्वरूप और प्रभाव का विश्लेषण करना।

**शोध प्रविधि-**

यह शोध-पत्र मुख्यतः वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि पर आधारित है। शोध के लिए गुणात्मक पद्धति (Qualitative Approach) को अपनाया गया है, जिससे विषय के ऐतिहासिक, सामाजिक और भाषाई पक्षों का गहन अध्ययन किया जा सके। इसके अलावा इस शोध में निम्नलिखित प्रविधियों का प्रयोग किया गया है-

- ***द्वितीयक स्रोतों पर आधारित अध्ययन-*** इस शोध में प्राथमिक रूप से द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। इनमें हिंदी पत्रकारिता के इतिहास से संबंधित पुस्तकें, शोध-पत्रिकाएँ, जर्नल, समकालीन हिंदी समाचार पत्र, डिजिटल न्यूज़ पोर्टल, मीडिया संबंधी रिपोर्टें तथा प्रसिद्ध पत्रकारों और विचारकों के लेख शामिल हैं।
- ***ऐतिहासिक पद्धति-*** हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत से लेकर वर्तमान समय तक के विकास को समझने के लिए ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसके अंतर्गत औपनिवेशिक काल, स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्रता पश्चात के कालखंडों का क्रमबद्ध विश्लेषण किया गया है।
- ***वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधि-*** शोध-विषय की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वर्णनात्मक शैली के साथ-साथ विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिससे तथ्यों के साथ उनके निहितार्थों को भी स्पष्ट किया जा सके।

- ***तुलनात्मक अध्ययन पद्धति-*** हिंदी पत्रकारिता की तुलना अन्य भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता से की गई है, ताकि उनके आपसी प्रभाव, समानताएँ और भिन्नताएँ स्पष्ट हो सकें तथा बहुभाषिक भारतीय पत्रकारिता परंपरा को समझा जा सके।
- ***आलोचनात्मक दृष्टिकोण-*** वर्तमान समय में हिंदी पत्रकारिता के समक्ष उपस्थित चुनौतियों और संकटों का अध्ययन आलोचनात्मक दृष्टिकोण से किया गया है, ताकि शोध केवल विवरणात्मक न रहकर वैचारिक और विश्लेषणात्मक बन सके।

**हिंदी पत्रकारिता की ऐतिहासिक शुरुआत-**

हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में हुई। वर्ष 1826 में पंडित युगल किशोर शुक्ल द्वारा प्रकाशित उदंत मार्तंड को हिंदी का पहला समाचार पत्र माना जाता है। हालांकि यह पत्र अधिक समय तक नहीं चल सका, फिर भी इसने हिंदी पत्रकारिता की नींव रखी। इस प्रारंभिक दौर में पत्रकारिता का उद्देश्य व्यावसायिक लाभ नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार, जनजागरण और वैचारिक चेतना का प्रसार था। भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र जैसे साहित्यकारों ने न केवल हिंदी पत्रकारिता को साहित्य और समाज से जोड़ा। बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी पत्रकारिता ने जनमानस को जागरूक करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। प्रताप, अभ्युदय, आज और हंस जैसे पत्रों ने राष्ट्रीय चेतना को सशक्त किया। महात्मा गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी और मदन मोहन मालवीय जैसे व्यक्तित्वों ने पत्रकारिता को सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिकता से जोड़ा। स्वतंत्रता के बाद हिंदी पत्रकारिता का व्यापक विस्तार हुआ। यद्यपि इसमें व्यावसायिकता का प्रभाव बढ़ा, फिर भी हिंदी समाचार पत्र ग्रामीण और अर्ध-शहरी भारत की आवाज बने रहे।

**स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता-**

- ***राष्ट्रीय चेतना का निर्माण-*** स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी पत्रकारिता जनजागरण का सबसे प्रभावी माध्यम बनी। इस दौर में पत्रकारिता केवल समाचार देने तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने जनता को संगठित करने, अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने का कार्य किया।
- ***प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी पत्रकार-*** महात्मा गांधी (हरिजन, यंग इंडिया), गणेश शंकर विद्यार्थी (प्रताप), मदन मोहन मालवीय (अभ्युदय) जैसे पत्रकारों ने पत्रकारिता को नैतिकता और सत्य के साथ जोड़ा। हिंदी पत्रकारिता ने अंग्रेजी सत्ता को चुनौती दी और भारतीय भाषाओं की शक्ति को स्थापित किया।
- ***भारतीय भाषाओं का साझा संघर्ष-*** इस काल में हिंदी, उर्दू, बंगाली, मराठी और तमिल पत्रकारिता ने मिलकर औपनिवेशिक सत्ता का विरोध किया। भाषाओं के बीच प्रतिस्पर्धा नहीं, बल्कि सहयोग दिखाई देता है, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक आधार दिया।

**स्वतंत्रता के बाद हिंदी पत्रकारिता का विकास**

- ***राष्ट्र निर्माण और पत्रकारिता-*** स्वतंत्रता के बाद हिंदी पत्रकारिता राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा बनी। योजनाओं, नीतियों और सामाजिक मुद्दों को जनता तक पहुँचाने में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही।
- ***प्रिंट मीडिया का विस्तार-*** 1950 और 1960 के दशक में हिंदी समाचार पत्रों का व्यापक विस्तार हुआ। नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान, दैनिक जागरण और अमर उजाला जैसे पत्रों ने हिंदी पत्रकारिता को व्यावसायिक सफलता दिलाई।
- ***भारतीय भाषाओं के साथ संबंध-*** हिंदी पत्रकारिता ने क्षेत्रीय भाषाओं की पत्रकारिता से निरंतर संवाद बनाए रखा। राज्यों की समस्याएँ हिंदी के माध्यम से राष्ट्रीय विमर्श में शामिल हुईं।

**भारतीय भाषाएँ और पत्रकारिता की बहुभाषिक परंपरा**

भारत की भाषाई विविधता पत्रकारिता के लिए एक बड़ी शक्ति रही है। बंगाली, तमिल, तेलुगु, मराठी, उर्दू, मलयालम, कन्नड़, पंजाबी और असमिया पत्रकारिता ने अपने-अपने क्षेत्रों में सामाजिक और राजनीतिक चेतना को मजबूत किया। हिंदी पत्रकारिता ने इन भाषाओं के अनुभवों से निरंतर संवाद स्थापित किया। बंगाली और मराठी पत्रकारिता की वैचारिक गंभीरता तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं की साहित्यिक परंपरा ने हिंदी पत्रकारिता को वैचारिक रूप से समृद्ध किया। अनुवाद की परंपरा ने भारतीय भाषाओं के बीच सेतु का कार्य किया। हिंदी के माध्यम से क्षेत्रीय भाषाओं की खबरें राष्ट्रीय मंच तक पहुँचीं, वहीं हिंदी की सामग्री अन्य भाषाओं में अनूदित होकर क्षेत्रीय समाज तक पहुँची।

**वर्तमान समय में हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप**

- ***प्रिंट से डिजिटल तक-*** आज हिंदी पत्रकारिता केवल प्रिंट मीडिया तक सीमित नहीं है। डिजिटल न्यूज़ पोर्टल, यूट्यूब चैनल, पॉडकास्ट और सोशल मीडिया ने इसे नए आयाम दिए हैं। हिंदी डिजिटल मीडिया की पहुँच अंग्रेजी मीडिया से भी अधिक व्यापक होती जा रही है।
- ***टीआरपी और कंटेंट का संकट-*** वर्तमान समय में टीआरपी और क्लिकबेट की दौड़ ने पत्रकारिता की गुणवत्ता को प्रभावित किया है। गंभीर सामाजिक और नीतिगत मुद्दों की तुलना में सनसनीखेज खबरें अधिक स्थान पा रही हैं।
- ***ग्रामीण और हाशिए का भारत-*** हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता आज भी ग्रामीण भारत और हाशिए के समुदायों की प्रमुख आवाज बनी हुई है। यह हिंदी पत्रकारिता की सबसे बड़ी शक्ति है।

**डिजिटल युग और भारतीय भाषाएँ-**

इंटरनेट और मोबाइल तकनीक ने भारतीय भाषाओं को नया जीवन दिया है। अब हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में सामग्री का निर्माण और उपभोग सरल हो गया है। सोशल मीडिया ने आम नागरिकों को अपनी भाषा में अभिव्यक्ति का मंच प्रदान किया है, जिससे भाषाई लोकतंत्र को बल मिला है। हालाँकि डिजिटल युग में फेक न्यूज़, ट्रोल संस्कृति और भाषाई अशुद्धियों जैसी समस्याएँ भी बढ़ी हैं, जो पत्रकारिता की विश्वसनीयता के लिए गंभीर चुनौती हैं। डिजिटल क्रांति ने हिंदी पत्रकारिता के स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया है। आज पत्रकार को प्रिंट के साथ-साथ वेब, सोशल मीडिया, पॉडकास्ट और वीडियो प्लेटफॉर्म पर भी दक्ष होना आवश्यक है। यह शोध बताता है कि जिन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में डिजिटल स्किल्स, डेटा जर्नलिज़्म और सोशल मीडिया एथिक्स को शामिल किया गया है, वे हिंदी पत्रकारिता के भविष्य के लिए अधिक प्रभावी सिद्ध हो रहे हैं। हिंदी भाषा में डिजिटल कंटेंट की बढ़ती मांग ने प्रशिक्षित पत्रकारों के लिए नए अवसर खोले हैं।

**हिंदी पत्रकारिता में भाषा का प्रश्न-**

हिंदी पत्रकारिता में मानक हिंदी और क्षेत्रीय बोलियों के बीच संतुलन एक महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। लोकभाषा पाठकों से गहरा जुड़ाव स्थापित करती है, जबकि मानक भाषा पत्रकारिता को औपचारिकता प्रदान करती है। आज की हिंदी पत्रकारिता में उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का व्यापक प्रयोग दिखाई देता है, जिसने भाषा को अधिक समकालीन और जीवंत बनाया है।

**शिक्षा, प्रशिक्षण और हिंदी पत्रकारिता-**

हिंदी पत्रकारिता की गुणवत्ता सुधारने में पत्रकारिता शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। भाषा, नैतिकता और तकनीकी दक्षता तीनों पर समान ध्यान आवश्यक है। आज भी मीडिया शोध का बड़ा हिस्सा अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अकादमिक शोध को बढ़ावा देना समय की आवश्यकता है। हिंदी पत्रकारिता का विकास केवल समाचार–प्रसारण तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह सामाजिक चेतना, लोकतांत्रिक मूल्यों और जनसरोकारों के निर्माण का सशक्त माध्यम रही है। इसके निरंतर विस्तार और गुणवत्ता में सुधार के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। बदलते मीडिया परिदृश्य, डिजिटल तकनीक और बहु-माध्यमीय पत्रकारिता के युग में हिंदी पत्रकारिता की प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिए संगठित, व्यावहारिक और शोध-आधारित प्रशिक्षण अनिवार्य हो गया है।

प्रारंभिक काल में हिंदी पत्रकारिता का विकास मुख्यतः साहित्यिक और वैचारिक पृष्ठभूमि से हुआ। अधिकांश पत्रकार साहित्य, समाजशास्त्र या राजनीति से जुड़े होते थे और पत्रकारिता को सामाजिक सेवा के रूप में देखते थे। स्वतंत्रता के बाद विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में पत्रकारिता एवं जनसंचार के पाठ्यक्रम आरंभ हुए। इससे पत्रकारिता एक संगठित अकादमिक अनुशासन के रूप में विकसित हुई। हिंदी माध्यम में पत्रकारिता शिक्षा ने ग्रामीण और मध्यमवर्गीय युवाओं को इस क्षेत्र में प्रवेश का अवसर प्रदान किया। हिंदी पत्रकारिता की शिक्षा आज स्नातक, स्नातकोत्तर, डिप्लोमा और प्रमाणपत्र स्तर पर उपलब्ध है।

पाठ्यक्रमों में सामान्यतः निम्नलिखित विषय शामिल होते हैं:-

समाचार लेखन और संपादन (हिंदी)
रिपोर्टिंग और फीचर लेखन
मीडिया कानून और आचार-संहिता
भारतीय संविधान और लोकतंत्र
जनसंचार सिद्धांत
डिजिटल मीडिया और न्यू मीडिया

**भविष्य की संभावनाएँ-**

पत्रकारिता और भारतीय भाषाएँ ऐतिहासिक रूप से एक-दूसरे की पूरक रही हैं। स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर लोकतांत्रिक संस्थाओं के सशक्तिकरण तक, भारतीय भाषाओं विशेषकर हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं ने जनसंचार, जनचेतना और जनभागीदारी को व्यापक आधार दिया है। बदलते तकनीकी, सामाजिक और वैश्विक परिदृश्य में यह संग-साथ भविष्य में और अधिक सशक्त, विविध और प्रभावशाली होने की अपार संभावनाएँ रखता है। भविष्य की पत्रकारिता डिजिटल प्लेटफॉर्म पर केंद्रित होती जा रही है। इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया की व्यापक पहुँच ने भारतीय भाषाओं को नई ताकत दी है। अब समाचार वेबसाइटें, यूट्यूब चैनल, पॉडकास्ट और सोशल मीडिया हैंडल हिंदी, मराठी, तमिल, बंगाली, तेलुगु, उर्दू आदि भाषाओं में बड़ी संख्या में पाठक–दर्शक जुटा रहे हैं।

आने वाले समय में स्थानीय पत्रकारिता भारतीय भाषाओं में और मजबूत होगी, जहाँ गाँव, कस्बे और ज़िला स्तर की खबरें स्थानीय भाषा में तुरंत उपलब्ध होंगी। इससे लोकतंत्र की जड़ें और गहरी होंगी।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मशीन ट्रांसलेशन और वॉयस-टू-टेक्स्ट तकनीकें भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के भविष्य को नई दिशा देंगी। एक ही समाचार सामग्री का कई भारतीय भाषाओं में त्वरित अनुवाद संभव होगा। वॉयस असिस्टेंट और ऑडियो न्यूज़ प्लेटफॉर्म (जैसे पॉडकास्ट, ऑडियो बुलेटिन) क्षेत्रीय भाषाओं में लोकप्रिय होंगे। डेटा जर्नलिज़्म और फैक्ट-चेकिंग को भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत करने से सूचना की विश्वसनीयता बढ़ेगी। यह तकनीकी समावेशन भारतीय भाषाओं को मुख्यधारा मीडिया में और अधिक प्रभावी बनाएगा।

भविष्य में भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता लोकतांत्रिक विमर्श का सबसे सशक्त मंच बनेगी। अंग्रेज़ी-केन्द्रित सूचना व्यवस्था से बाहर रह गए बड़े वर्ग तक भारतीय भाषाएँ पहुँच बनाएँगी।स्थानीय मुद्दे जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, कृषि, महिला सशक्तिकरण—भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनेंगे। इससे नीति-निर्माण में जनभागीदारी और जवाबदेही दोनों बढ़ेंगी। वैश्वीकरण के दौर में भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने का माध्यम बनेगी। लोक-संस्कृति, साहित्य, परंपराएँ और क्षेत्रीय अस्मिताएँ पत्रकारिता के जरिए नई पीढ़ी तक पहुँचेंगी। भविष्य में बहुभाषी और अनुवाद-आधारित पत्रकारिता विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच संवाद को बढ़ाएगी, जिससे "भाषायी एकता में

विविधता" का विचार मजबूत होगा। आने वाले समय में पत्रकारिता शिक्षा में भारतीय भाषाओं का महत्व और बढ़ेगा। क्षेत्रीय भाषाओं में प्रशिक्षित पत्रकार डिजिटल कौशल, डेटा एनालिटिक्स और मल्टीमीडिया स्टोरीटेलिंग से लैस होंगे। स्थानीय भाषा में प्रशिक्षित पत्रकार न केवल सूचना देंगे, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के संवाहक भी बनेंगे।

भविष्य में चुनौतियाँ भी होंगी—जैसे भाषायी मानकीकरण, फेक न्यूज़, आर्थिक संसाधनों की कमी और कॉर्पोरेट दबाव। लेकिन तकनीक, पाठक सहभागिता और स्वतंत्र डिजिटल प्लेटफॉर्म इन चुनौतियों को अवसरों में बदल सकते हैं। भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता यदि गुणवत्ता, नैतिकता और विश्वसनीयता को प्राथमिकता दे, तो उसका भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है। पत्रकारिता और भारतीय भाषाओं का संग-साथ भविष्य में लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक चेतना को नई ऊँचाइयों तक ले जाएगा। डिजिटल युग में भारतीय भाषाएँ केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं रहेंगी, बल्कि लोकतांत्रिक सशक्तिकरण और सामाजिक बदलाव की सबसे प्रभावी आवाज़ बनेंगी। यह संग-साथ भारतीय पत्रकारिता को अधिक समावेशी, जनोन्मुखी और सशक्त बनाने की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाएगा।

**निष्कर्ष-**

हिंदी पत्रकारिता और भारतीय भाषाओं का संग-साथ केवल भाषाई प्रश्न नहीं है, बल्कि यह लोकतंत्र, संस्कृति और सामाजिक न्याय से गहराई से जुड़ा हुआ विषय है। वर्तमान समय में जब मीडिया अनेक दबावों और चुनौतियों से गुजर रहा है, तब हिंदी और भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता ही आम जनता की सच्ची और प्रभावी आवाज बन सकती है। यदि तकनीक, नैतिकता और भाषाई समावेशन के साथ आगे बढ़ा जाए, तो हिंदी पत्रकारिता न केवल भारत में बल्कि वैश्विक स्तर पर भी अपनी सशक्त और विश्वसनीय पहचान बना सकती है। इस शोध-पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी पत्रकारिता और भारतीय भाषाओं का संग-साथ केवल ऐतिहासिक या भाषाई परिघटना नहीं है, बल्कि यह भारतीय लोकतंत्र, समाज और संस्कृति की आत्मा से गहराई से जुड़ा हुआ विषय है। हिंदी पत्रकारिता की यात्रा 19वीं शताब्दी में सामाजिक जागरण और सुधार के उद्देश्य से आरंभ हुई और स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान यह जनचेतना का सशक्त माध्यम बनी। इस दौर में हिंदी पत्रकारिता ने न केवल औपनिवेशिक सत्ता को चुनौती दी, बल्कि भारतीय भाषाओं के साथ मिलकर राष्ट्रीय एकता और साझा संघर्ष की भावना को भी मजबूत किया।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी पत्रकारिता ने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। योजनाओं, नीतियों और सामाजिक मुद्दों को आम जनता तक पहुँचाने में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता एक सेतु के रूप में कार्य करती रही। यद्यपि इस काल में पत्रकारिता में व्यावसायिकता का प्रभाव बढ़ा, फिर भी हिंदी पत्रकारिता ग्रामीण, अर्ध-शहरी और हाशिए पर खड़े समुदायों की आवाज बनी रही। यह तथ्य इसे अंग्रेजी पत्रकारिता से अलग और अधिक जनपक्षधर बनाता है।

इस शोध से यह भी स्पष्ट होता है कि भारतीय भाषाओं की बहुभाषिक परंपरा हिंदी पत्रकारिता की सबसे बड़ी शक्ति रही है। बंगाली, मराठी, तमिल, तेलुगु, उर्दू और अन्य भाषाओं की पत्रकारिता ने अपने-अपने क्षेत्रों में सामाजिक और राजनीतिक चेतना को सुदृढ़ किया, जिसका प्रभाव हिंदी पत्रकारिता पर भी पड़ा। अनुवाद और वैचारिक संवाद के माध्यम से भारतीय भाषाओं ने एक-दूसरे को समृद्ध किया और राष्ट्रीय विमर्श को व्यापक आधार प्रदान किया। वर्तमान डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता एक निर्णायक मोड़ पर खड़ी है। एक ओर डिजिटल मीडिया, सोशल मीडिया और मोबाइल तकनीक ने हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को अभूतपूर्व विस्तार और पहुँच प्रदान की है। आज बड़ी संख्या में लोग अपनी मातृभाषा में समाचार पढ़ते, देखते और साझा करते हैं, जिससे भाषाई लोकतंत्र को बल मिला है। दूसरी ओर टीआरपी की होड़, क्लिकबेट संस्कृति, फेक न्यूज़, कॉर्पोरेट और राजनीतिक दबाव जैसी चुनौतियाँ पत्रकारिता की विश्वसनीयता और नैतिकता के लिए गंभीर संकट बनकर उभरी हैं। (अंजू, 2021).

भाषा के स्तर पर भी हिंदी पत्रकारिता के सामने संतुलन की चुनौती है। मानक हिंदी और लोकभाषा के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है, ताकि पत्रकारिता न तो आम जनता से कटे और न ही अपनी गंभीरता खोए। उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का समावेश हिंदी पत्रकारिता को समकालीन बनाता है, किंतु भाषा की शुद्धता और संवेदनशीलता बनाए रखना भी उतना ही आवश्यक है। शोध के निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी पत्रकारिता और भारतीय भाषाओं का संग-साथ भविष्य में और अधिक महत्वपूर्ण होने वाला है। भारत की विशाल जनसंख्या भारतीय भाषाओं में सोचती और संवाद करती है, इसलिए पत्रकारिता की वास्तविक शक्ति इन्हीं भाषाओं में निहित है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, अनुवाद तकनीक और वॉइस टूल्स जैसी नई तकनीकें भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता को और सशक्त बना सकती हैं, बशर्ते उनका उपयोग नैतिक और जनहित के दृष्टिकोण से किया जाए।

अंततः यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि हिंदी पत्रकारिता तकनीकी नवाचार, भाषाई समावेशन, नैतिक मूल्यों और सामाजिक सरोकारों के साथ आगे बढ़ती है, तो वह न केवल भारतीय लोकतंत्र को मजबूत करेगी, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी भारतीय भाषाओं की सशक्त और विश्वसनीय पहचान स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

**संदर्भ सूची-**


- मिश्र, के. बी. (1979). *हिन्दी पत्रकारिता (प्रारम्भिक इतिहास एवं विकास).* भारतीय ज्ञानपीठ.
- कुमार, अ. (2018). *भाषा, समाज और मीडिया.* राजकमल प्रकाशन.
- यादव, राजेंद्र. (2013). भाषा और पत्रकारिता पर चयनित लेख. *हंस पत्रिका.*
- रंजन, प्रभात. (2018). भाषा, पत्रकारिता और हिंदी. *सहचर पत्रिका.*

- दास, अभिषेक. (2025). *हिंदी पत्रकारिता के समक्ष चुनौतियां और संभावनाएं.* http://mediamorcha.com/entries/%E0%A4%AE%E0%A5%81%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A4%BE
- हुन्नरगी, सु. रा. (2025). मीडिया और हिंदी भाषा. *Akshara Surya Journal.*
- अग्रवाल, अंजू. (जनवरी-फरवरी, 2021). हिंदी पत्रकारिता : डिजिटल युग में चुनौतियाँ और अवसर. *IJAER, 10*(4).

***Manuscript Timeline***
***Submitted :*** *September 08, 2025* ***Accepted :*** *September 20, 2025* ***Published :*** *September 30, 2025*

# राजेशखर कृत बालरामायण का समीक्षात्मक अध्ययन

**रबीन्द्र सोरेन**[1]

**सारांश**

***रा****जशेखर कृत बालरामायण भारतीय संस्कृत नाट्य परंपरा की एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें रामकथा को दस अंकों में नाटकीय रूप से प्रस्तुत किया गया है। यह नाटक वाल्मीकीय परंपरा का अनुसरण करते हुए भी अपनी मौलिकता, काव्यात्मक भाषा और मनोवैज्ञानिक गहराई के कारण स्वतंत्र पहचान स्थापित करता है। इसमें मुख्यतः वीर रस की प्रधानता है, किंतु करुण, शृंगार, अद्भुत तथा हास्य रसों का संतुलित समन्वय भी दृष्टिगत होता है। नाटक में राम की मर्यादा, सीता का पतिव्रत धर्म, रावण का दर्प और कामासक्ति, तथा परशुराम का उग्र तेज प्रभावशाली ढंग से चित्रित किए गए हैं। राजशेखर ने संवादों के माध्यम से शक्ति-संघर्ष, धर्म-संरक्षण और सामाजिक संतुलन जैसे विषयों को गहराई से उभारा है। सेतु-निर्माण, युद्ध-दृश्य, सीता-स्वयंवर और रावण-वध जैसे प्रसंगों का सजीव वर्णन नाटक की नाटकीयता को सशक्त बनाता है। 22 छंदों के प्रयोग और शास्त्रीय नाट्य-नियमों के पालन से यह कृति साहित्यिक एवं मंचीय दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट सिद्ध होती है। अंततः राजाभिषेक के साथ धर्म और न्याय की पुनर्स्थापना का संदेश प्रस्तुत किया गया है।*

***मुख्य शब्द*** *– बालरामायण, संस्कृत नाटक, रामकथा, नाट्य परंपरा, काव्यात्मकता।*

राजशेखर के बालरामायण का विस्तृत अध्ययन भारतीय संस्कृत नाट्य परंपरा में एक महत्वपूर्ण अध्याय प्रस्तुत करता है। यह नाटक रामकथा की समग्रता को नाटकीय रूप में जीवंत करने का एक उत्कृष्ट प्रयास है, जिसमें कवि ने महर्षि वाल्मीकि की मूल भावना को बनाए रखते हुए अपनी मौलिक प्रतिभा से इसे समृद्ध किया है। बालरामायण दस अंकों में विभक्त है और इसमें वीर रस की प्रधानता के साथ करुण, शृंगार तथा अद्भुत रसों का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। राजशेखर ने इस नाटक के माध्यम से राम की वीरता, सीता की पातिव्रत्य, रावण की कामुकता, परशुराम की क्रोधाग्नि तथा अन्य पात्रों के चरित्रों को इतनी गहराई से चित्रित किया है कि नाटक पाठक या दर्शक को प्राचीन युग की महिमा से सीधे जोड़ देता है। यह रचना न केवल कथानक की निरंतरता के लिए प्रसिद्ध है बल्कि अपनी काव्यात्मक भाषा, विविध छंदों के प्रयोग तथा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण के कारण संस्कृत नाट्य साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

नाटक का आरंभ नांदी के अंत में सूत्रधार के प्रवेश से होता है, जिसमें वीर और अद्भुत रस से युक्त नायक राम का सीता के साथ विवाह का संकेत दिया जाता है। प्रथम अंक 'प्रतिज्ञापौलस्त्य' नामक है। इसमें

[1] शोधार्थी, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, सि.का.मु.वि., दुमका (झारखंड).

विश्वामित्र राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के लिए राम को अयोध्या से मिथिला ले जाते हैं। शुनःशेप को अपना प्रतिनिधि बनाकर वे जनक के यज्ञ में भेजते हैं। रावण का चर राक्षस आता है और सीता-स्वयंवर में धनुष भंग की चर्चा सुनकर रावण भी धनुष प्राप्त करने की इच्छा से मिथिला पहुंचता है। रावण द्वारा धनुष उठाने का प्रयास असफल होता है और वह क्रोध में धनुष फेंक देता है। जनक क्रोधित होते हैं किंतु शतानंद उन्हें शांत करते हैं। रावण प्रतिज्ञा करता है कि जो सीता का वरण करेगा, उसके कंठ को काटकर उसका रक्त चंद्रहास तलवार से पिएगा। इस अंक में रावण की घमंडी प्रवृत्ति, जनक की धार्मिकता तथा राम की आने वाली भूमिका का सूक्ष्म संकेत मिलता है। संवादों की तीक्ष्णता और घटनाओं का तनावपूर्ण वातावरण नाटक को प्रारंभ से ही आकर्षक बनाता है।

द्वितीय अंक 'परशुरामरावणीय' है। इसमें नारद और शिव के गण भृंगी के वार्तालाप से पता चलता है कि परशुराम रावण से युद्ध करने आ रहे हैं। रावण सीता का स्मरण कर रहा होता है। मायामय राक्षस सूचना देता है कि परशुराम ने परशु नहीं दिया। परशुराम अपने शिष्य मातर के साथ आ पहुंचते हैं। दोनों के बीच आत्मप्रशंसा और आक्षेपों से भरा वाद-विवाद होता है। दोनों युद्ध के लिए उद्यत होते हैं किंतु शिवादेश से भृंगी उन्हें रोकता है। इस अंक में क्षत्रिय और ब्राह्मण शक्ति के द्वंद्व को दर्शाया गया है। परशुराम की उग्रता और रावण की दर्पपूर्णता के माध्यम से नाटककार ने सामाजिक और धार्मिक संतुलन की चर्चा की है। संवादों में संस्कृत की शास्त्रीय गहराई झलकती है। तृतीय अंक 'विलक्षलंकेश्वर' नाम से जाना जाता है। गृध्र मिथुन के कथन से पता चलता है कि राम ने ताड़का आदि का वध कर यज्ञ रक्षा की है। रावण के सम्मुख 'सीता स्वयंवर' नामक नाटक का अभिनय होता है। विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण इसमें सम्मिलित होते हैं। विभिन्न देशों के राजा आते हैं। धरा घोषणा करती है कि शिवधनुष भंग करने वाला ही सीता का वरण करेगा। राजाओं के असफल प्रयासों का सूक्ष्म वर्णन है। रावण उनका उपहास करता है। अंत में राम धनुष भंग करते हैं और सीता का पाणिग्रहण होता है। रावण उत्तेजित होता है किंतु प्रतिहारी उसे समझाती है कि यह नाटक है। रावण शांत होता है। वेतालिक संध्या की सूचना देता है।

इस अंक में स्वयंवर का भव्य दृश्य, राजाओं के चरित्र चित्रण तथा राम की विनम्र वीरता का सुंदर चित्रण है। रावण का विलक्ष भाव, अर्थात् लज्जित होना, अंक का केंद्र है। चतुर्थ अंक 'भर्गवभंग' है। मिथिला पहुंचने पर दशरथ को विवाह सम्पन्न होने की सूचना मिलती है। गुरुजन सीता को स्त्रियों के धर्म का उपदेश देते हैं। तभी जमदग्नि और राम उपस्थित होते हैं। परशुराम राम पर क्रोधित होकर आक्षेप करते हैं। राम विनम्रता से उनका सत्कार करते हैं। विश्वामित्र समझाते हैं किंतु परशुराम शांत नहीं होते। वे वैष्णव धनुष देते हैं जिसे लक्ष्मण भंग करते हैं। फिर युद्ध के लिए दोनों निकल जाते हैं। इस अंक में गुरु-शिष्य परंपरा, विनम्रता की महिमा तथा परशुराम की पराजय का संकेत है। भावनात्मक गहराई और संवादों की शिष्टता नाटक को गरिमामय बनाती है। पंचम अंक 'उन्मत्तदशानन' है।

मायामय और माल्यवान के वार्तालाप से पता चलता है कि राम-परशुराम विवाद में राम विजयी हुए। रावण सीता पर आसक्त है और हरण करना चाहता है। यंत्र-जानकी बनाई जाती है। यंत्र-जानकी और उसकी

सखी सिंदूरिका रावण के सामने आती है। रावण प्रणयालाप करता है। आलिंगन के समय उसे ज्ञात होता है कि कंठ में सारिका बैठी है। रावण प्रमोद वन जाता है जहां षड्-ऋतु के अवतार उसे कामशांति के लिए सेवा करते हैं। नदियां, अप्सराएं, गंधर्व, लक्ष्मी, सरस्वती आदि उसका उपचार करती हैं किंतु शांति नहीं मिलती। शूर्पणखा नाक कटवाकर लौटती है। रावण क्रोध से प्रज्वलित हो उठता है। इस अंक में रावण की कामवेदना का मनोवैज्ञानिक चित्रण अत्यंत प्रभावशाली है। प्रकृति वर्णन और दिव्य सौंदर्य का चित्रण कवि की कल्पना शक्ति को दर्शाता है। षष्ठ अंक 'निर्दोषदशरथ' नामक है। शूर्पणखा के अपमान से क्रोधित रावण प्रतिशोध लेना चाहता है किंतु मायामय उसे आश्वस्त करता है कि सीता ने प्रेम परीक्षा के लिए यंत्र-जानकी भेजी है। शूर्पणखा और मायामय केकई और दशरथ का वेश बनाकर अयोध्या जाते हैं। छद्म केकई राम से वनवास की याचना करती है। राम आज्ञा शिरोधार्य कर वन जाते हैं। दशरथ लौटकर स्तब्ध रह जाते हैं। वायुदेव बताते हैं कि राम ने कहा था कि चाहे यक्ष, राक्षस या कोई छद्म वेश में हो, पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर वन जाऊंगा। सुमंत्र नर्मदा तक पहुंचाने की सूचना देते हैं। चित्रशिखंडी जटायु का दूत आकर सीता-हरण और जटायु की मृत्यु की सूचना देता है। दशरथ गंगा-यमुना संगम पर प्राण त्याग देते हैं।

नाटककार ने दशरथ को निर्दोष सिद्ध किया है। यह अंक पितृभक्ति, छल और करुण रस का सुंदर मिश्रण है। सप्तम अंक 'असमपराक्रम' है। वेतालिकों द्वारा राम का यशोगान होता है। दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर राम ने विरुदावली न गाने का निर्देश दिया है जब तक रावण का वध नहीं हो जाता। सागर से मार्ग की याचना, सेतु निर्माण, राक्षस सेना का आक्रमण और भीम युद्ध का वर्णन है। रावण सीता का शिर काटकर फेंकता है किंतु वह यंत्र-जानकी का सिर होता है। सारिका राम को सत्य बताती है। मंदोदरी पुत्र सिंहनाद विशाल शरीर वाला योद्धा युद्ध के लिए आता है। राम नगर सीमा से हटकर युद्ध करने का प्रस्ताव देते हैं। राम का अप्रतिद्वंद्व पराक्रम वर्णित है। यह अंक वीरता और दिव्य शक्तियों का चरमोत्कर्ष है। अष्टम अंक 'वीरविलास' है। दुष्मुख और सुमुख राक्षसों के संवाद से पता चलता है कि सिंहनाद मारा गया। रावण तुला युद्ध का प्रस्ताव भेजता है। अंगद और नरांतक युद्ध करते हैं। नरांतक मारा जाता है। रावण शर्त नहीं मानता। त्रिजटा सीता को युद्ध का समाचार बताती है। मेघनाद और कुंभकर्ण का वध होता है। युद्ध का साहसिक वर्णन है। वीरों के चरित्र का पूर्ण विकास हुआ है। नवम अंक 'रावणवध' है। यम का पुरुष आता है। यमराज लंका का लेखापत्र मांगते हैं। चित्रगुप्त थक गए हैं। राम-रावण का युद्ध होता है। राम रावण से कहते हैं कि जानकी लौटा दो। घोर युद्ध में राम मायाहर अस्त्र से रावण का वध करते हैं। देवता पुष्प वर्षा करते हैं। यह अंक नाटक का चरम बिंदु है जहां न्याय की विजय होती है। दशम अंक 'राघवानंद' है। राम पुष्पक विमान से अयोध्या आते हैं। राज्याभिषेक होता है। यात्रा पथ में हिमालय, कैलास आदि का वर्णन है। भरत, शत्रुघ्न आदि से मिलन होता है। कुबेर पुष्पक याचना करते हैं। भरत के वाक्य से नाटक समाप्त होता है। यह अंक आनंद और विजय का है।

बालरामायण की भाषा अत्यंत समृद्ध है। राजशेखर ने 22 छंदों का प्रयोग किया है जिनमें शार्दूलविक्रीड़ित उनका अपना विशेष छंद है। सूर्योदय का वर्णन, शिरोष पुष्प जैसी कोमल आंखों वाली सीता का चित्रण, राम के वनगमन का करुण दृश्य आदि काव्य की उत्कृष्ट मिसाल हैं। पात्रों का चरित्र विकास क्रमिक

है। रावण घमंडी से क्रोधी और अंत में पराजित योद्धा बनता है। राम विनम्र, धार्मिक और विजयी नायक हैं। सीता पतिव्रता की आदर्श हैं। नाटक में प्रकृति, दिव्य लोकों और युद्ध दृश्यों का वर्णन इतना जीवंत है कि दर्शक स्वयं घटनाओं में खो जाता है। इस नाटक की लोकप्रियता का कारण इसकी कथावस्तु की पूर्णता और नाटकीय कौशल है। राजशेखर ने रामकथा को दस अंकों में समेटकर भी कोई महत्वपूर्ण घटना छोड़ी नहीं। प्रत्येक अंक का नाम घटना के केंद्र बिंदु पर आधारित है। संवादों में कूटनीति, भावुकता और शास्त्रीय ज्ञान का मिश्रण है। उदाहरणस्वरूप, परशुराम और रावण का संवाद शक्ति के द्वंद्व को दर्शाता है। रावण की कामपीड़ा का चित्रण मानवीय दुर्बलता को उजागर करता है। सेतु निर्माण का काव्यात्मक वर्णन दिव्यता का प्रतीक है। बालरामायण में रसों का संतुलन अद्भुत है। वीर रस युद्ध दृश्यों में प्रधान है किंतु शृंगार सीता-राम के मिलन और रावण की कामना में है। करुण रस दशरथ की मृत्यु और जटायु के बलिदान में। अद्भुत रस दिव्य अस्त्रों और विमान यात्रा में। हास्य रस कुछ संवादों में झलकता है। नाटक की गति कभी मंद नहीं होती।

प्रत्येक अंक पिछले अंक की घटनाओं से जुड़ा है। राजशेखर की सूक्ष्म दृष्टि पात्रों के आंतरिक संघर्ष को भी उजागर करती है। रावण बाहरी रूप से शक्तिशाली है किंतु आंतरिक रूप से काम से व्याकुल। राम बाहरी रूप से शांत हैं किंतु आंतरिक रूप से कर्तव्यनिष्ठ। सीता की पीड़ा और धैर्य नारी चरित्र की महिमा को बढ़ाते हैं। परशुराम का क्रोध और शांति ब्राह्मण शक्ति की सीमा दिखाते हैं। नाटक का अंत राज्याभिषेक से होता है जो धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था की पुनर्स्थापना का प्रतीक है। पुष्पक विमान द्वारा सम्पूर्ण भारतवर्ष का वर्णन राजशेखर की भूगोल ज्ञान और काव्य प्रतिभा को प्रमाणित करता है। यह यात्रा न केवल भौगोलिक है बल्कि सांस्कृतिक एकता का भी संदेश देती है। बालरामायण का महत्व इस बात में है कि यह रामकथा को नाट्य रूप में प्रस्तुत कर संस्कृत नाट्य को लोकप्रिय बनाता है। राजशेखर ने इसमें शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए मौलिकता भी जोड़ी है। भाषा की मधुरता, छंदों की विविधता और दृश्यों की जीवंतता इसे अमर बनाती है। यह नाटक आज भी मंचन योग्य है और पाठकों को नैतिक शिक्षा के साथ-साथ सौंदर्यानुभूति प्रदान करता है।

इस प्रकार बालरामायण राजशेखर की सर्वोत्तम रचनाओं में से एक है। इसमें कवि की समस्त विद्वता, काव्य प्रतिभा और नाटकीय कौशल पूर्ण रूप से प्रकट हुआ है। यह रचना भारतीय साहित्य की धरोहर है जो पीढ़ी दर पीढ़ी प्रेरणा देती रहेगी।

**संदर्भ-**


- राय, गंगासागर. (1994). *बालरामायण (भूमिका)*. वाराणसी: चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन.
- शर्मा, रामेश्वर प्रसाद. (2000). *राजशेखर और उनका युग*. बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.
- कीथ, ए. बी. (1965). *संस्कृत नाटक* (उदयभानु सिंह, अनुवादक). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
- पाठक, मूलचन्द्र. (2018). *संस्कृत नाटक के अति प्राकृत तत्व*. देवनागर प्रकाशन.

**NOTES FOR AUTHORS**,

The Equanimist…A peer reviewed Journal

**1. Submissions**

Authors should send all submissions and resubmissions to **theequanimist@gmail.com**

Some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within three months. As a general rule, **The Equanimist** operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5 or double), an

abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list,

and a word count on the front page (include all elements in the word count).

Regular articles are restricted to an absolute maximum of 10,000 words, including all elements (title

page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

**2. Types of articles**

In addition to Regular Articles, **The Equanimist** publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

**3. The manuscript**

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation

(b) abstract

(c) main text

(d) list of references

(e) biographical statement(s)

(f) tables and figures in separate documents

(g) notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts. against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5 or double.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

**4. Language**

The Equanimist is a Bilingual Journal,i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.For UK spelling we use -ize [standardize, normalize] but -yse [analyse, paralyse]. For US spelling,-ize/-yze are the standard [civilize/analyze]. Note also that with US standard we use the serial comma (red, white, and blue). We encourage gender-neutral language wherever possible. Numbers higher than ten should be expressed as figures (e.g. five, eight, ten, but 21, 99, 100); the % sign is used rather than the word 'percent' (0.3%, 3%, 30%).Underlining (for italics) should be used sparingly. Commonly used non-English expressions, like ad hoc and raison d'être, should not be italicized.

**5. The abstract**

The abstract should be in the range of 200–300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the

actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be

written in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order to increase the visibility of the abstract in electronic searches.

**6. Title and headings**

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

**7. Notes**

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

**8. Tables**

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table.Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

**9. Figures**

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure.Example: Figure 1.

**10. References**

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference

**11. Biographical statement**

The biosketch in **The Equanimist** appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

**12. Proofs and reprints**

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

**13. Copyright**

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.

THE Equanimist
A peer reviewed refereed journal

## SUBSCRIPTION ORDER FORM

1. NAME……..……...
2. ADDRESS……..
   ……....……
   ……..……
   TEL…..…..……..…..MOB……..……..…EMAIL……..
3. TYPE OF SUBSRIPTION: TICK ONE INDIVIDUAL/INSTITUTION
4. PERIOD OF SUBSCRIPTION: ANNUAL/FIVE YEARS
5. DD…….…….....….DATE…….……..……..
   BANK……..……..
   AMOUNT (IN WORD)…….....….AMOUNT (IN NUMBERS)……..……

DEAR CHIEF EDITOR,

KINDLY ACNOWLEDGE THE RECIPT OF MY SUBSCIPTION AND START SENDING THE ISSUE(S) AT FOLLOWING ADDRESS:

……
……..……
……...…….

THE SUBSRIPTION RATES ARE AS FOLLOWS W.E.F. 01.04.2015

INDIA (RS.)

| TYPE | INDIVIDUAL | INSTITUTION |
|---|---|---|
| **ANNUAL** | RS. 1000 | RS. 1400 |
| **FIVE YEARS** | RS. 4500 | RS. 6500 |
| **LIFETIME** | Rs. 18,000 | Rs. 20,000 |

YOURS SINCERELY
SIGNATURE
NAME:
PLACE:
DATE:

Please Fill This Form and deposit the money through net banking. Details are BANK- STATE BANK OF INDIA Name SHREE KANT JAISWAL A/C – 32172975280.IFSC –SBIN0003717 Branch: SINDHORA BAZAR VARANASI. After depositing the money please e-mail the form and receipt at theequanimist@gmail.com

**Published By**
Oriental Human Development Institute
121/3B1 Mahaveerpuri, Shivkuti Road.
Allahabad-211004